ISSN-0971-8397

योजना

जुलाई 2013 | विकास को समर्पित मासिक | ₹ 10

लोक सेवा प्रसारण

चौराहे पर प्रसार भारती
जवाहर सरकार

पीएसबी : हितकारी शिक्षाप्रद-मनोरंजक परामीडिया कथाकथन
अरविंद सिंहल

लोक सेवा प्रसारण - संतुलन की चुनौती
मार्क टली

लोक प्रसारण क्यों ?
विनोद पवराला

भारत में सामुदायिक रेडियो की चुनौतियां एवं अवसर
राम भट्ट
सविता बैलूर

विशेष लेख

राष्ट्र की प्रतिभा पूंजी का विकास
के.पी. मोहनन

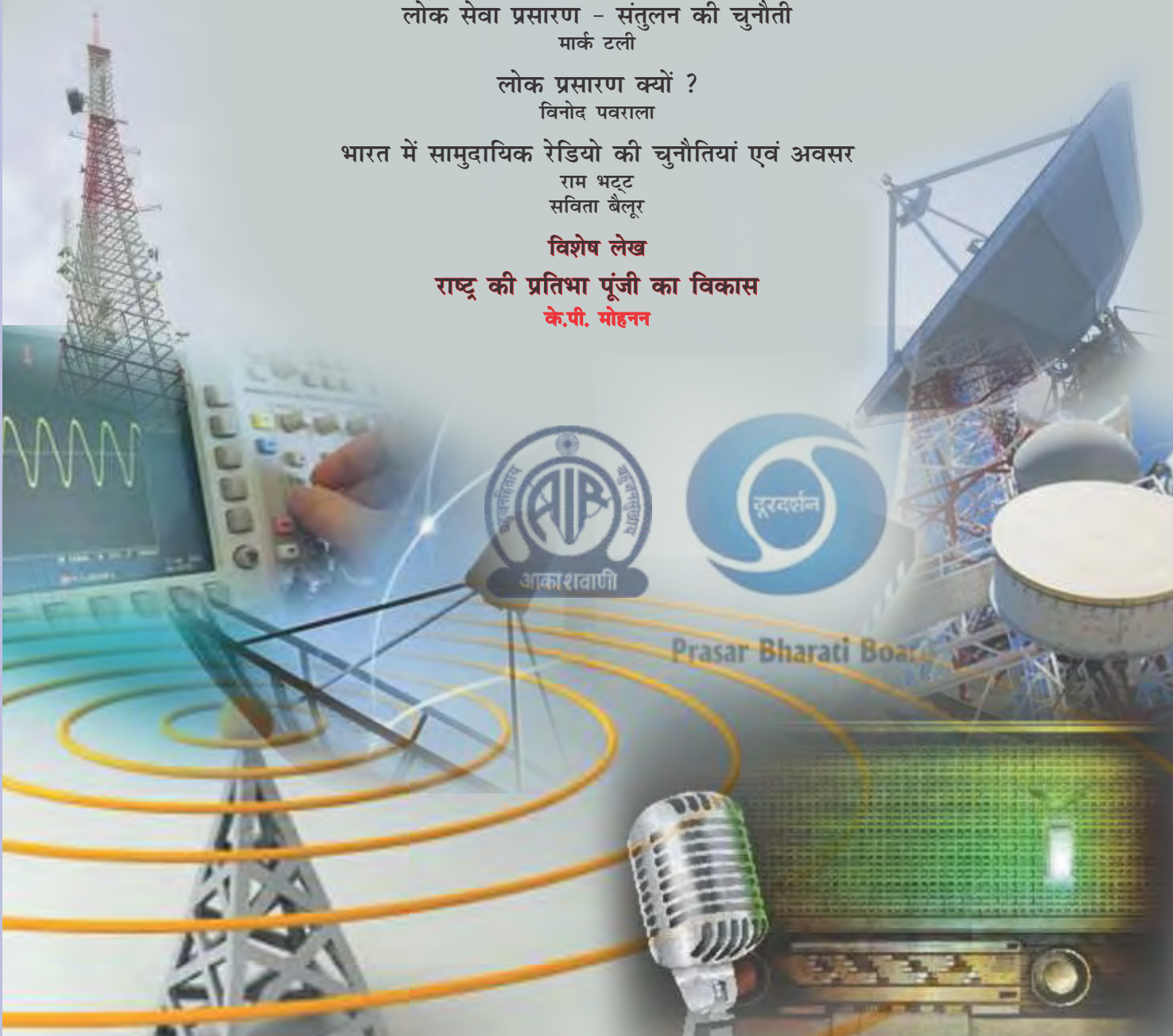

आकाशवाणी–महत्वपूर्ण तथ्य

भारत में प्रसारण की शुरुआत वास्तव में आकाशवाणी की स्थापना से करीब 13 साल पहले ही शुरू हो गई थी। जून, 1923 में बंबई के रेडियो क्लब ने देश में पहला प्रसारण किया। इसके पांच महीने बाद कलकत्ता रेडियो क्लब की स्थापना हुई। द इंडिया ब्रॉडकास्टिंग कंपनी (आईबीसी) की स्थापना 23 जुलाई, 1927 को हुई थी जिसे 3 वर्ष से भी कम समय में परिसमापन (दिवाला) का सामना करना पड़ा।

अप्रैल, 1960 में उद्योग एवं श्रम विभाग के अंतर्गत भारतीय प्रसारण सेवा ने प्रायोगिकतौर पर काम करना शुरू किया। अगस्त, 1935 में लिओनेल फील्डेन को प्रथम प्रसारण नियंत्रक नियुक्त किया गया। इसके अगले महीने एक प्राइवेट रेडियो स्टेशन के रूप में आकाशवाणी मैसूर की स्थापना हुई। 8 जून, 1936 को इंडियन स्टेट ब्रॉडकास्टिंग सर्विस ने ऑल इंडिया रेडियो का रूप लिया।

सेंट्रल न्यूज ऑर्गेनाइजेशन (सीएनओ) की स्थापना अगस्त, 1937 में हुई। इसी वर्ष ऑल इंडिया रेडियो को संचार विभाग के अंतर्गत लाया गया और उसके चार साल बाद इसे सूचना और प्रसारण विभाग को हस्तांतरित किया गया। भारत के स्वतंत्र होने के बाद देश में छह रेडियो केंद्र दिल्ली, बंबई, कलकता, मद्रास, तिरूचिरापल्ली और लखनऊ थे। तीन केंद्र पाकिस्तान (पेशावर, लाहौर और ढाका) में थे। उस समय ऑल इंडिया रेडियो का कवरेष मात्र 2.5 प्रतिशत क्षेत्र में था और इसके कार्यक्रम 11 प्रतिशत आबादी तक पहुंचते थे। इसके अगले वर्ष सेंट्रल न्यूज आर्गेनाइजेशन (सीएनओ) को दो भागों में बांटा गया। समाचार सेवा प्रभाग (न्यूज सर्विसेज डिवीजन) और विदेश सेवा प्रभाग (ईएसडी)। 1956 में राष्ट्रीय प्रसारणकर्ता को 'आकाशवाणी' नाम दिया गया। विविधभारती सेवा की शुरुआत 1957 में हुई, जिसका मुख्य घटक लोकप्रिय फिल्म संगीत था।

आकाशवाणी आज

भारत के राष्ट्रीय प्रसारणकर्ता और प्रमुख लोक सेवा प्रसारणकर्ता के रूप में आकाशवाणी अपनी स्थापना के समय से ही 'बहुजन हिताय : बहुजन सुखाय' के आदर्श का अनुपालन करते हुए जन-जन को सूचना, शिक्षा और मनोरंजन प्रदान कर रहा है। प्रसारण में भाषाओं की संख्या और सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक विविधता के स्पैक्ट्रम के साथ आकाशवाणी विश्व के सबसे बड़े प्रसारण संगठनों में से एक है। आकाशवाणी की घरेलू सेवा के अंतर्गत आज देशभर में 385 केंद्र हैं जो देश के 92 प्रतिशत क्षेत्र और 99.2 प्रतिशत आबादी को कवरेज प्रदान करते हैं। आकाशवाणी 23 भाषाओं और 146 बोलियों में अपने कार्यक्रम प्रसारित करता है। आकाशवाणी के समूचे नेटवर्क के अंतर्गत 277 स्टेशन और 432 ट्रांसमीटर (148 मीडियम वेव, 236 एफएम यानी फ्रीक्वेंसी मॉड्यूलेशन) और 48 एसडब्ल्यू (शॉर्ट वेव) ट्रांसमीटर (31.3.2012 की स्थिति के अनुसार) शामिल हैं, जो देशभर में फैली 99 प्रतिशत आबादी को कवरेज उपलब्ध कराते हैं।

समाचार डेस्क

आकाशवाणी का समाचार सेवा प्रभाग हर रोज 647 बुलेटिन प्रसारित करता है, जिनकी कुल प्रसारण अवधि करीब 56 घंटे है और जो करीब 90 भाषाओं/बोलियों में प्रसारित किए जाते हैं। ये बुलेटिन आकाशवाणी की घरेलू, क्षेत्रीय, विदेश और डीटीएच सेवाओं के माध्यम से प्रसारित किए जाते हैं। आकाशवाणी के 41 केंद्रों से एफएम मोड पर प्रति घंटे के आधार पर 344 न्यूज हेडलाइंस (मुख्य समाचार) प्रसारित की जाती हैं। 44 क्षेत्रीय समाचार इकाइयां हर रोज 75 भाषाओं में 469 समाचार बुलेटिन प्रसारित करती हैं। दैनिक समाचार बुलेटिनों के अलावा समाचार सेवा प्रभाग दिल्ली और क्षेत्रीय समाचार इकाइयों से सम-सामयिक विषयों पर अनेक समाचार आधारित कार्यक्रम भी प्रसारित करता है।

बाहरी जगत से जुड़ाव

विदेश सेवा प्रभाग के कार्यक्रम 11 भारतीय और 16 विदेशी भाषाओं में प्रसारित किए जाते हैं जो 100 से अधिक देशों में पहुंचते हैं।

मनोरंजन क्षेत्र

आकाशवाणी वर्तमान में 18 एफएम स्टीरियो चैनल संचालित करता है, जिन्हें एआईआर एफएम रेनबो कहा जाता है। इनका उद्देश्य एक नये अंदाज में शहरी श्रोताओं को लक्षित कार्यक्रम प्रसारित करना है। 4 अन्य एफएम चैनल एआईआर एफएम गोल्ड के नाम से संचालित हैं जो दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई और मुंबई से समाचार और मनोरंजनप्रद कार्यक्रम प्रसारित करते हैं।

लिप्यंतरण और कार्यक्रम आदान-प्रदान सेवा

लिप्यंतरण सेवा की शुरुआत 3 अप्रैल, 1954 को हुई और इसे सभी गणमान्य व्यक्तियों के भाषणों का लिप्यंतरण करने का मुख्य कार्य सौंपा गया। इसमें मुख्य रूप से देश के प्रधानमंत्रियों और राष्ट्रपतियों के भाषणों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है।

सौजन्य : प्रसार भारती

योजना

वर्ष : 58 • अंक : 7 • जुलाई 2013 • आषाढ़-श्रावण, शक संवत 1935 • कुल पृष्ठ : 64

प्रधान संपादक
राजेश कुमार झा

वरिष्ठ संपादक
रेमी कुमारी

संपादक
ऋतेश पाठक

संपादकीय कार्यालय
538, योजना भवन, संसद मार्ग,
नयी दिल्ली-110 001
दूरभाष : 23717910, 23096738
टेलीफैक्स : 23359578
ई-मेल : yojanahindi@gmail.com
वेबसाइट : www.yojana.gov.in
www.publicationsdivision.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
वी.के. मीणा

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन)
सूर्यकांत शर्मा

दूरभाष : 26100207
फैक्स : 26175516
ई-मेल : pdjucir@gmail.com

आवरण : **जी. पी. धोपे**

इस अंक में

संपादकीय	–	3
चौराहे पर प्रसार भारती	जवाहर सरकार	5
हितकारी शिक्षाप्रद-मनोरंजक परामीडिया कथाकथन	अरविंद सिंहल	9
सिनेमा के लिए रेडियो	लीलाधर मंडलोई	15
लोक प्रसारण क्यों?	विनोद पवराला	18
भारत में सामुदायिक रेडियो की स्थिति और चुनौतियां	राम भट्ट सविता बैलूर	21
सार्वजनिक प्रसारण के पुनरुत्थान से जुड़े अंतर्राष्ट्रीय सबक	दया किशन थुस्सु	25
लोक सेवा प्रसारण - संतुलन की चुनौती	मार्क टली	29
भारत को एक स्वतंत्र लोक-प्रसारक की आवश्यकता क्यों है?	रॉबिन जेफ्रे	32
राष्ट्र की प्रतिभा पूंजी का विकास	के.पी. मोहनन	35
भारत में लोक सेवा प्रसारण की चुनौतियां	आनंद प्रधान	39
जिस तरह तू बोलता है उस तरह तू पढ़	क्षमा शर्मा	43
लोक सेवा प्रसारण और जनभागीदारी	राजीव कुमार शुक्ला	46
भारत में सामुदायिक रेडियो का भविष्य	विनोद सी. अग्रवाल	49
ग्रामीण विकास की धुरी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया	कुलदीप शर्मा डी.डी. बंसवाल	52
भारत में लोक सेवा प्रसारण और विज्ञापन	विकास चंद्र	55
आकाशवाणी के सामाजिक सरोकार	करुणा शंकर दूबे	57
किवदंती से करिश्मे तक आकाशवाणी	रमेश चंद्र शुक्ल	59

योजना **हिंदी के अतिरिक्त असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, तमिल, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु तथा उर्दू भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मंगवाने हेतु, नयी सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें : व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन), प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड IV, तल VII, आर.के.पुरम, नयी दिल्ली-66 दूरभाष :** 26100207, 26105590 तार : सूचनाप्रकाशन।

सदस्य बनने अथवा पत्रिका मंगाने के लिए आप हमारे निम्नलिखित बिक्री केंद्रों पर भी संपर्क कर सकते हैं : सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष : 24367260, 5610), हाल सं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (दूरभाष : 23890205) * 701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष : 27570686) * 8, एसप्लानेड ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष : 22488030) * 'ए' विंग, राजाजी भवन, बंसल नगर, चेन्नई-600090 (दूरभाष : 24917673) * प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुवनंतपुरम-695001 (दूरभाष : 2330650) * ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष : 24605383) * फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलुरु-560034 (दूरभाष : 25537244) * बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष : 2683407) * हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-H, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष : 2225455) * अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर, पालडी, अहमदाबाद-380007 (दूरभाष : 26588669) * के.के.बी. रोड, नयी कॉलोनी, मकान संख्या-7, चेनीकुटी, गुवाहाटी-781003 (दूरभाष : 2665090)

चंदे की दरें : वार्षिक : ₹ 100 **द्विवार्षिक :** ₹ 180; **त्रैवार्षिक :** ₹ 250; **विदेशों में वार्षिक दरें : पड़ोसी देश:** ₹ 530; **यूरोपीय एवं अन्य देश :** ₹ 730।

योजना में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। ज़रूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए *योजना* उत्तरदायी नहीं है।

आपकी राय

प्रेरणादायी लेख

योजना का अप्रैल 2013 अंक जोकि विकलांगता पर केंद्रित था, पढ़ा। अंक में 'जहां चाह वहां राह के अंतर्गत लिखा गया मधुश्री चटर्जी का लेख 'हौसले ने दी ज़िंदगी' बहुत ही प्रेरणादायी है। गुमला (झारखंड) के बकसपुर गांव के 45 वर्षीय आस्कर मिंज़ की कहानी ने वास्तव में यह दिखा दिया कि यदि हौसले बुलंद हों तो कोई भी कार्य मुश्किल तो हो सकता है पर नामुमकिन नहीं। उनके हौसले के लिए ये पंक्तियां सार्थक होंगी :

यदि इरादे बुलंद हों तो सफलता चलकर आती है,
समुद्र राह देते हैं चट्टानें भी थर्राती हैं।

राजीव गुप्ता
दिल्ली

कमियां सामने लाते

योजना का मई 2013 अंक जो सोशल मीडिया पर केंद्रित है, अच्छा लगा। हर क्षेत्र में सोशल मीडिया की भूमिका की अच्छी जानकारी दी गई है। लेकिन और भी अच्छा होता यदि हम इस माध्यम के दुरुपयोग, कमियों और चुनौतियों को भी उतनी ही शिद्दत से सामने लातें तो अधिक उपयोगी होता। रिपोर्ट की शक्ल में एक स्टोरी होती तो बहुत ही अच्छा होता।

श्रवण गुप्ता
दिल्ली

सोशल मीडिया की भूमिका असीम

सोशल मीडिया पर केंद्रित मई 2013 अंक पढ़ा जो काफी ज्ञानोपयोगी और जानकारियों से भरा है। अंक में संपादकीय, कवर के अंतिम पृष्ठ पर छपा लेख 'तकनीक़ी दुनिया का बादशाह बनने की तैयारी में है सोशल मीडिया', प्रधानमंत्री के सलाहकार सैम पित्रोदा का आलेख 'सूचना का लोकतंत्रीकरण', अतुल पंत जी का लेख 'शिक्षा में सोशल मीडिया : मदद अथवा बाधा', डब्ल्यू.पी.एस. सिद्धू का लेख 'भारत और ग्लोबल साउथ का प्रभुत्व', सुशील कुमार झा का आलेख 'पत्रकारिता में सोशल मीडिया का योगदान' एवं कुछ अन्य लेखकों के लेख जानकारियों से भरे हैं।

सोशल मीडिया की भूमिका असीम है। सोशल मीडिया के कंधे पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है और वह बखूबी इसे निभा भी रही है।

इसके विभिन्न माध्यमों ने सरकार और जनता को नज़दीक लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सोशल मीडिया को अपनी जिम्मेदारी ढंग से निभानी चाहिए। सरकार के इस चौथे स्तंभ की बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। आज सोशल मीडिया सामाजिक व्यवहार के अंदाज में भी बदलाव ला रहा है।

सोशल मीडिया समाज में दो तरह की भूमिकाएं निभाती है- 1) सकारात्मक और 2) नकारात्मक। मीडिया को हमेशा सकारात्मक भूमिका ही निभानी चाहिए और जनता तथा सरकार को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। मीडिया लोकतंत्र की आधारशिला के रूप में भी विख्यात है। प्राचीन काल में मीडिया का काम आम आदमी दौड़कर कहता था उसके बाद थोड़ा विकास हुआ और इसमें जानवरों (जैसे घोड़ा) को शामिल किया गया और आज इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट मीडिया के माध्यम से घर पर ही आम जनता को सभी जानकारियां उपलब्ध हो जाती हैं और सरकारी योजनाओं पर निगरानी रखी जाती है। सरकार द्वारा काफी प्रयत्न और मीडिया के सशक्त योगदान के बावजूद सरकार की योजनाएं सफल नहीं हो पा रही हैं। मैं आशा करूंगा कि सोशल मीडिया अपनी जिम्मेदारी सकारात्मक ढंग से निभाये।

शशि शेखर श्रीवास्तव
भरहौरा, छपरा, बिहार

संपादकीय

सार्वजनिक यानी ... ?

भारत में प्राय: लोकसेवा प्रसारण पर बहुत तीक्ष्ण और उग्र बहस होती रहती है। उच्चतम न्यायालय ने 1995 में एक महत्वपूर्ण निर्णय में वायुतरंगों को सार्वजनिक संपत्ति घोषित कर दिया था, जिसमें सरकार को वायुतरंगों को जनता के हित में विनियमित करने का निर्देश दिया गया था। वायुतरंगों के नियंत्रण पर सरकार के एकाधिकार के विरुद्ध निर्णय सुनाते हुए न्यायालय ने तर्क़ दिया कि लोकतंत्र में विचारों और दृष्टिकोणों की विविधता सुनिश्चित करने के लिए ऐसा अनिवार्य है क्योंकि इसी से लोकतंत्र की रगों में रक्त का संचार होता है। इस निर्णय का सरकार की रेडियो और टेलीविजन संबंधी नीति पर दूरगामी और उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा। जहां तक प्रसारण का प्रश्न है सरकार और जनता के संबंधों को परिभाषित करने में इस निर्णय को एक निर्णायक बिंदु माना जाता है। इसने भारतीय संदर्भ में सार्वजनिक क्षेत्र की अवधारणा और उसे जीवंत प्रतिनिधिमूलक और वास्तविक लोकतांत्रिक रूप देने के बारे में एक नयी बहस भी शुरू कर दी।

लोकसेवा प्रसारण के प्रश्न को जर्मन समाजशास्त्री और आलोचनात्मक सिद्धांतवादी जर्गेन हबरमास द्वारा दी गई सार्वजनिक क्षेत्र (पब्लिक स्फीयर) की परिभाषा के व्यापक संदर्भ में देखा जाना चाहिए। उनके विचारों में 'सार्वजनिक क्षेत्र सामाजिक क्षेत्र के भीतर ही वह दायरा है जिसमें जनमत का निर्माण किया जा सके और जो सबके लिए सुलभ हो।' सार्वजनिक क्षेत्र की नींव का पत्थर वह 'तार्क़िक आलोचनात्मक' माहौल है जो सार्वजनिक विमर्श में जीवंतता और गतिशीलता का संचार करती है। सार्वजनिक क्षेत्र को ख़तरा सरकार से भी हो सकता है और व्यावसायिक मास मीडिया से भी जो विज्ञापनों और जन-संपर्कों के बलबूते जीता है और जो एक अतार्क़िक विचारहीन प्रकार की आम सहमति के निर्माण के लिए दर्शकों/श्रोताओं को विवश कर देता है।

परंतु, लोकसेवा प्रसारण के विशिष्ट मूल्यों का गठन किन बातों से होता है, इस पर आम सहमति बन पाना सरल नहीं है। सरकार और लोकसेवा प्रसारण से जुड़े संगठनों के बीच संबंधों को परिभाषित करना भी एक विवादास्पद विषय है। परंतु इस बात में कोई संदेह नहीं हो सकता कि सरकार अथवा गिने-चुने कारपोरेट घरानों के एकाधिकारी प्रभुत्व से मुक्त प्रसारण क्षेत्र के पोषण और संरक्षण के लिए एक पारदर्शी तंत्र स्थापित करने में सरकार की एक निर्णायक भूमिका होती है। निश्चय ही, व्यावसायिक प्रसारण के दबाव से मुक्त और सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक नागरिकता में विस्तार के लिए लोकसेवा प्रसारक का लोक वित्तपोषण और उसकी विविधता सुनिश्चित करना लोकसेवा प्रसारण के मुख्य मूल्य बने हुए हैं।

लोकसेवा प्रसारण सामग्री, प्रौद्योगिकी, प्रशासकीय संरचना और समाज में उसकी भूमिका नीति निर्माताओं के सामने अनेक कठिन प्रश्न खड़े करता है। तड़क-भड़क और भोंडे मनोरंजन को परोसने वाली मीडिया की बाढ़ में लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए विकासोन्मुखी समाचार, सम-सामयिक कार्यक्रम और स्थानीय रुचि एवं महत्व की सामग्री को लोगों के सामने रोचक ढंग से कैसे प्रस्तुत किया जाए? क्या लोकसेवा प्रसारक को दशकों से निर्मित अपने विशाल नेटवर्क में निवेश कर डिजिटल टेरिस्टेरियल ट्रॉसमिशन को बढ़ावा देना चाहिए अथवा डीटीएच या आईपीटीवी आधारित ट्रांसमिशन प्रणाली अपनानी चाहिए? यह कौन तय करेगा कि लोकसेवा प्रसारक केवल सरकार की सेवा कर रहा है, जनता की नहीं? वित्तपोषण के लिए कौन-सी प्रणाली अपनानी चाहिए- विज्ञापन आधारित, लाइसेंस शुल्क आधारित अथवा सीधे सरकार से मिलने वाला धन? ये सभी महत्वपूर्ण प्रश्न हैं, जिन पर चर्चा करने की आवश्यकता है और देश में लोकतंत्र की जड़ें गहरी करने वाले, जनता के हाथों में अधिकार सौंपने वाले और स्वतंत्रता का अहसास कराने वाले लोकसेवा प्रसारण पर व्यापक सहमति ज़रूरी है।

भारत में लोकसेवा प्रसारण के क्षेत्र में एक युगांतरकारी घटना के रूप में 1975 में शुरू हुए प्रथम साइट प्रयोग (शिक्षा और प्रशिक्षण हेतु उपग्रह प्रयोग) के बाद गंगा में काफी पानी बह चुका है। टीवी, रेडियो, इंटरनेट और सूचना प्रौद्योगिकी के अन्य अवयवों के आपसी मेल ने लोकसेवा प्रसारक की पहुंच और प्रभावोत्पादकता में विस्तार की अनंत संभावनाएं खोल दी हैं। लोक सेवा प्रसारण का पारंपरिक टीवी अथवा रेडियो ट्रांसमिशन तकनीक वाले मॉडल तक सीमित रहना आवश्यक नहीं। मांगजनित (ऑन डिमांड) संप्रेषण और संप्रेषण के विभिन्न चैनलों के जरिये लोगों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर डिजिटल कॉमन्स के सृजन और पोषण की भारी संभावना है। इस प्रकार की अन्य अनेक संभावनाएं हो सकती हैं जिनकी खोज उस नयी संरचना के लिये की जानी चाहिए जो लोकसेवा प्रसारक के मौजूदा टीवी-रेडियो के प्रतिमानों से शायद परे है। संभवत: नवीन संचार प्रौद्योगिकियों की संभावनाओं का उपयोग कर हम सही अर्थों में जनता के एक लोकसेवा प्रसारक का निर्माण कर सकते हैं। ❑

IAS **IGNITED MINDS** PCS

दर्शनशास्त्र, ETHICS, G.S., CSAT एवं निबंध के प्रशिक्षण का प्रामाणिक एवं विश्वसनीय संस्थान

एकमात्र विषय (दर्शनशास्त्र) जो पिछले पाँच वर्षों के सभी टॉपर्स का विषय (दर्शनशास्त्र) रहा है, एकमात्र शिक्षक (अमित कुमार सिंह) जिन्होने दर्शनशास्त्र (हिन्दी माध्यम) के सभी टॉपर्स को पढ़ाया है।

2012-13

प्रियंका निरंजन
RANK 20th

धर्मेन्द्र कुमार
Rank-25

2010-11

RANK- 34th
शिव सहाय अवस्थी
IAS - (U.P.)

RANK- 46th
मिथिलेश मिश्रा
IAS - (Bihar)

इन सभी के हस्तलिखित वक्तव्य केवल हमारे पास उपलब्ध हैं। इन सभी अभ्यर्थियों ने प्रतियोगिता दर्पण एवं क्रॉनिकल को दिये अपने साक्षात्कार में दर्शनशास्त्र के लिए केवल हमारे संस्थान एवं शिक्षक (अमित कुमार सिंह) को ही अपनी सफलता का श्रेय दिया है। देखें शिवसहाय एवं मिथिलेश का साक्षात्कार (जुलाई-अगस्त-2011) तथा प्रियंका निरंजन का साक्षात्कार जून-जुलाई-2013 उपर्युक्त दोनों पत्रिकाओं में। जुगाड़ कर जुटाई गयी फोटो छापने वाले संस्थानों से सावधान।

दर्शनशास्त्र

द्वारा **अमित कुमार सिंह**

दर्शनशास्त्र विषय एवं इग्नाइटेड मांइण्ड्स क्यों चुने?

एक दो वर्ष के परीक्षा परिणाम पर नहीं बल्कि समग्रता में पिछले पाँच वर्षों के परीक्षा परिणाम पर ध्यान दें। हिन्दी माध्यम से पिछले पाँच वर्षों के टॉपर दर्शन शास्त्र विषय से

वर्ष	हिन्दी माध्यम	टॉपर	विषय	दर्शनशास्त्र के लिए संस्थान
2008	किरण कौशल	(रैंक 3)	दर्शनशास्त्र	दृष्टि
2009	कर्मवीर शर्मा	(रैंक 24)	दर्शनशास्त्र	इग्नाइटेड माइण्ड्स
2010	शिव सहाय	(रैंक 34)	दर्शनशास्त्र	इग्नाइटेड माइण्ड्स
2010	मिथिलेश मिश्रा	(रैंक 46)	दर्शनशास्त्र	इग्नाइटेड माइण्ड्स
	2011 हिन्दी माध्यम से कोई भी विद्यार्थी प्रथम 50 में नहीं।			
2012	प्रियंका निरंजन	(रैंक 20)	दर्शनशास्त्र	इग्नाइटेड माइण्ड्स
2012	धर्मेन्द्र कुमार	(रैंक 25)	दर्शनशास्त्र	इग्नाइटेड माइण्ड्स

दिल्ली केन्द्र **30 JUNE 6:15 PM** | निःशुल्क कार्यशाला | इलाहाबाद केन्द्र **4 JULY 5:30 PM**

सामान्य अध्ययन

परिवर्तित पाठ्यक्रम के आलोक में जे.एन.यू., दिल्ली विश्वविद्यालय एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के युवा ऊर्जावान शिक्षकों के टीम द्वारा सामान्य अध्ययन का तर्कसंगत मार्गदर्शन कार्यक्रम

दिल्ली केन्द्र **1 JULY 4 PM** | निःशुल्क कार्यशाला | इलाहाबाद केन्द्र **1 JULY 9 am.**

A-2, 1st Floor, Comm. Comp., Near Mukherjee Nagar, Delhi-09
PH. 9540131314, 011-27654704

ETHICS

G.S. Paper-IV

द्वारा **अमित कुमार सिंह**

एथिक्स क्या है ?

- एथिक्स या नीतिशास्त्र मूलतः दर्शनशास्त्र की एक शाखा है, जिसमें व्यक्ति के चरित्र, व्यक्तित्व तथा कार्यों का मूल्यांकन किया जाता है। एथिक्स को मोरल फिलॉसफी भी कहते हैं। यदि आप गूगल सर्च-इंजन पर जाकर एथिक्स टाइप करके देखेंगें, तो पायेंगे कि जो पहला ही विकीपीडिया पेज खुलता है उसमें स्पष्ट एवं साफ तौर पर लिखा है- "Ethics also known as moral philosophy which refers to the reflections upon moral actions, it is a branch of Philosophy."
- जेएनयू में दर्शनशास्त्र के एक प्रश्न पत्र का नाम ही एथिक्स एवं इंटीग्रटी है। जो सिविल सेवा में सामान्य अध्ययन पेपर-4 का भी नाम है।

हमारा संस्थान क्यों चुनें ?

- पूरे कोचिंग जगत (दिल्ली, इलाहाबाद) में एक मात्र हमारे संस्थान के शिक्षक ही ऐसे शिक्षक हैं जिन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय में एथिक्स पढ़ाया है और साथ ही जिनका शोध (एम.फिल एवं पीएचडी) एथिक्स पर ही है।

निःशुल्क कार्यशाला | **ETHICS** G.S. Paper-IV | दिल्ली केन्द्र **29 JUNE 9 am.** | इलाहाबाद केन्द्र **4 JULY 9 am.**

निबन्ध

द्वारा **अमित कुमार सिंह**

निःशुल्क कार्यशाला | दिल्ली केन्द्र **8 JULY 11:30 am.** | इलाहाबाद केन्द्र **4 JULY 11:30 am.**

H-1, First Floor, Madho Kunj, Katra, Allahabad
Ph. 9389376518, 9793022444

YH-86/2013

चौराहे पर प्रसार भारती

● जवाहर सरकार

प्रसार भारती की स्थापना 28 नवंबर, 1997 को उस समय हुई जब सरकार ने प्रसार भारती अधिनियम, 1990 को अंततः लागू करने का निर्णय किया। आकाशवाणी और दूरदर्शन को सूचना और प्रसारण मंत्रालय से अलग करते हुए एक 'स्वायत्त निकाय' के अंतर्गत रखा गया। यह एक ऐतिहासिक निर्णय था जो संसद द्वारा लोक सेवा प्रसारक की स्थापना के लिए अधिनियम बनाए जाने के 7 वर्ष बाद किया गया, जिसके स्वरूप को उसके लक्ष्यों और कारणों के कथन में व्यापक स्पष्ट किया गया है :

"आकाशवाणी और दूरदर्शन को स्वायत्तता प्रदान करने के लिए एक स्वायत्त निगम की स्थापना करने और उसे आकाशवाणी तथा दूरदर्शन द्वारा निष्पादित किए जाने वाले कार्य सौंपने का प्रस्ताव किया गया ताकि वे निष्पक्ष, विषयपरक और रचनात्मक ढंग से काम कर सकें। प्रस्तावित निगम नवीनता, गतिशीलता और उच्चस्तरीय विश्वसनीयता एवं लचीलेपन के साथ समुचित स्वायत्त निकाय के रूप में काम करेगा। यह ऐसे लोकतांत्रिक ढंग से काम करेगा जिससे हमारी लोकतांत्रिक परंपराएं और संस्थान समृद्ध होंगे, निगम लोगों और संसद के प्रति जवाबदेह होगा, और देश की बहुरंगी परंपराओं, भाषाओं और संस्कृतियों को ध्यान में रख कर काम करेगा। तदनुरूप प्रसार भारती (ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया) विधेयक संसद में पेश किया गया।"

संसदीय अधिनियम के कार्यान्वयन के 16 वर्ष बाद कोई भी भारतीय नागरिक निम्नांकित प्रश्न पूछ सकता है :

- क्या प्रसार भारती वास्तव में स्वायत्त है।
- क्या यह समुचित स्वायत्त निकाय के रूप में नवीनता, गतिशीलता और विश्वसनीयता के साथ कार्य कर रहा है?

इस प्रश्न का सीधे-सीधे 'हां' या 'नहीं' में उत्तर देना कठिन होगा, हालांकि अनेक लोग इसका उत्तर 'नहीं' के रूप में देने के लिए तत्पर होंगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि अधिक आकर्षक, अधिक गतिशील, अधिक रंग-बिरंगे, और अधिक मनोरंजन प्रदान करने वाले तथा सशक्त चैनलों और रेडियो स्टेशनों ने आकाशवाणी और दूरदर्शन को एक कोने में धकेल दिया है। घोषणाओं और विरोध प्रदर्शनों द्वारा इतिहास का मार्ग नहीं बदला जा सकता, और इसलिए हमें इस पर शुरू से विचार करना होगा कि तथ्यपरक दृष्टि से सही क्या है।

1997 में जब प्रसार भारती अस्तित्व में आया तो दूरदर्शन के केवल दो चैनल थे : डीडी-1 और डीडी-2, जिनमें से डीडी-2 मैट्रो शहरों में शुरू किया गया और बाद में टेरिस्ट्रियल यानी प्रादेशिक मोड में भारत के अन्य शहरों तक प्रसारित किया गया। इसका अर्थ यह था कि टॉवरों के साथ लगाए गए टेरिस्ट्रियल ट्रांसमीटरों के माध्यम से एक-दूसरे तक प्रदर्शन रिले किया गया। प्राइवेट 'चैनलों' की जो फ़सल आज दिखाई दे रही है इनमें से अनेक उन दिनों दूरदर्शन पर 'कार्यक्रमों' के रूप में पनप रहे थे, जैसे एनडीटीवी और आजतक। हालांकि कुछ 'टीवी चैनलों' की शुरुआत भी हो रही थी। अंततः वे अपने खुद के उपग्रह चैनलों के साथ अलग हो गए। आकाश मुक्त होने के बाद उनको ऐसा होना ही था।

इसी प्रकार रेडियो के संदर्भ में विचार करें, 1997 में एफएम रेडियो प्रयोगात्मक चरण में था और केवल आकाशवाणी के गिने-चुने चैनल थे और इक्का-दुक्का निजी ऑपरेटर इस क्षेत्र में दिखाई देता था। यह सामान्य बात थी कि वायुतरंगें निजी क्षेत्र के लिए खुलने के बाद यह उम्मीद की गई कि सशक्त लोकतंत्र में यथासंभव प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिलेगा। यह सब ऐसे समय में हो रहा था जब भारत 'पूर्ण निजीकरण' की ओर बढ़ रहा था और उसका सार्वजनिक क्षेत्र अत्यंत अकर्मण्य हो गया था।

यहां एक मामूली संशोधन ज़रूरी है : प्रसार भारती, वास्तव में उस अर्थ में कोई 'निगम' अथवा सार्वजनिक क्षेत्र का प्रतिष्ठान नहीं है, जैसा कि इन शब्दों का अर्थ होता है। यह एक 'स्वायत्त प्राधिकरण' अधिक है जो भारत के लोगों की ओर से दो बड़े सार्वजनिक संस्थानों का प्रबंधन करता है, और सूचना और प्रसारण मंत्रालय के माध्यम से संसद के प्रति जवाबदेह है। फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रसार भारती, दूरदर्शन और आकाशवाणी की सरकार और उसकी शासन प्रणाली के साथ सुसंबद्धता है : इसे अत्यंत 'सरकारी' के रूप में देखा जाता है।

और क्यों न हो? आखिर इसके अधिकारी और कर्मचारियों की भर्ती सरकार द्वारा या उसके अधिकृत अधिकारियों द्वारा संघ लोक सेवा आयोग या कर्मचारी चयन आयोग के माध्यम से की जाती है, और वे वेतनमानों तथा 'सुरक्षित कार्यावधि' की दृष्टि से सरकारी

नियमों और विनियमों के तहत पूरी तरह संरक्षित हैं। दशकों तक विशुद्ध सरकारी वातावरण में काम करने को देखते हुए इन अधिकारियों से सिर्फ़ यही उम्मीद की जा सकती है कि वे 'सरकारी मानसिकता' के साथ पेश आएंगे, जो खुले बाज़ार में प्रतिस्पर्धा के अनुकूल नहीं है। आकाशवाणी और दूरदर्शन के प्रत्येक विभाग में ऐसे ही कर्मचारी हैं। इसके अलावा अधिनियम में विशेष धाराएं हैं जो सुनिश्चित करती हैं कि निगम के भर्ती नियम और अन्य महत्वपूर्ण विनियम सरकार के नियमों के अनुरूप होंगे और इसीलिए 'मानसिकता' में बदलाव न होने या उसे चुनौती न देने की प्रवृत्ति बरक़रार रहती है। निश्चय ही, सरकारी विरासत का अर्थ हमेशा ठहराव नहीं होता या उसमें सब कुछ पश्चगामी नहीं है, और यह कि उसमें कोई व्यावसायिकता नहीं है। यदि ऐसा होता तो गौरवशाली दिल्ली मैट्रो और भारतीय सशस्त्र बल अथवा भारतीय रेलवे प्रणाली (जो कड़ी सरकारी प्रणाली के अंतर्गत संचालित विश्व का सबसे बड़ा नेटवर्क है) हमारे गर्व का विषय नहीं होते और उन्हें 'गैर-व्यावसायिक' कहा जाता, जो वे नहीं हैं।

मैं कहना चाहता हूं कि इस दोहरे सोच को जारी रखना निष्पक्ष या उचित नहीं है क्योंकि यदि आप वास्तविक शासन का दृष्टिकोण रखते हैं, और हताश नौकरशाही के चिड़चिड़ेपन से दुखी नहीं होते हैं, जिसका सामना प्रत्येक नागरिक को करना पड़ता है, तो आप एक ख़ास तरह की व्यावसायिकता और समर्पण (और पूर्ण ईमानदारी) देखेंगे, जिसे हम शासन का 'इंजन रूम' कह सकते हैं। अन्यथा चीज़ें बहुत पहले रुक गई होतीं।

अत: आपको तथ्यों पर निष्पक्ष रूप से, नैदानिक रूप से और जहां आवश्यक हो, बेरुखी से विचार करना होगा। तथ्य यह है कि दूरदर्शन ने 6 अखिल भारतीय चैनलों (डीडी नेशनल, डीडी न्यूज, डीडी भारती, डीडी उर्दू, डीडी स्पोर्ट्स और डीडी इंडिया), 11 क्षेत्रीय चैनलों, चार उभरते हुए हिंदी भाषी क्षेत्रीय चैनलों (जिनके लिए अभी कार्य प्रगति पर है) और कुछ 'दिन में सीमित घंटों के चैनलों' के साथ न केवल अपना अस्तित्व बनाए रखा है बल्कि अपनी स्थिति सुदृढ़ की है। यह बहुराष्ट्रीय और बड़े स्वतंत्र व्यापारिक घरानों से कड़ी प्रतिस्पर्धा के ख़िलाफ़ है। इसमें भर्ती में कोई लचीलापन या कर्मचारियों को न्यूनतम प्रोत्साहन देने की कोई संभावना नहीं है क्योंकि सरकारी प्रक्रियाएं इस पर रोक लगाती हैं और सभी जगह अपना समय लेती हैं। सीमित संख्या में कनिष्ठ तक़नीकी कर्मचारियों, जिनकी भर्ती क़रीब 20 वर्ष पहले की गई थी को छोड़ कर कोई नयी भर्ती नहीं की गई है, फिर भी संगठन बढ़ रहा है, अपनी सीमाओं में छलांग लगा रहा है। 1997 में 236 रेडियो और टीवी स्टेशन थे जिनकी संख्या आज बढ़ कर 455 हो गई है। मणिपुर जैसे छोटे से राज्य में आकाशवाणी मणिपुरी और छह प्रमुख बोलियों तथा 23 छोटी बोलियों सहित 30 भाषाओं में हर रोज़ कार्यक्रम प्रसारित कर रहा है। ऐसा करना एक लोक सेवा प्रसारक के लिए अनिवार्य है ताकि 'भारत के विचार' को एक समान प्रतिबद्धता के साथ बनाए रखा जा सके। यह प्रसार भारती की दृढ़ता का परिमाण है और सौंपे गए कार्यों को करने की इसकी क्षमता है, जो यह बिना किसी शोर-शराबे के अपने राष्ट्रीय दायित्व को पूरा करता है।

रेटिंग उपलब्धियों का एकमात्र पैमाना नहीं होती हैं और इसमें कोई संदेह नहीं कि दूरदर्शन और आकाशवाणी को अत्यंत शक्तिशाली प्रतिस्पर्धियों के ख़िलाफ़ संघर्ष करना पड़ता है, जिनमें से कुछ विदेशी स्वामित्व वाली कंपनियां हैं जिनके पास व्यापक धन और दशकों का अनुभव है, जो विकासशील देशों में परंपरागत प्रसारणकर्ताओं को क्षति पहुंचाती हैं।

भारत में कोई पूर्ण रेटिंग सिस्टम या टीआरपी (टेलीविजन रेटिंग प्वाइंट्स) प्रणाली नहीं है और जो एक मात्र प्रणाली है उसे मैसर्स टैम-इंडिया द्वारा संचालित किया जाता है। यह प्रणाली 75 करोड़ से अधिक टीवी दर्शकों पर रिपोर्ट करती है। यह रिपोर्टिंग क़रीब 8 हज़ार 'लोगों के पैमाने' के नमूने के आधार पर की जाती है। इसे भलीभांति समझा जा सकता है कि दर्शकों के इतने छोटे हिस्से के आधार पर निश्चितता के साथ कोई मूल्यांकन नहीं किया जा सकता और उसमें भी शहरी आबादी के पक्ष में झुकाव रहता है। 'टेरिस्ट्रियल टीवी' जो अभी तक भारत की टीवी आबादी का क़रीब 10 प्रतिशत (कुछ लोगों के अनुसार केवल 8 प्रतिशत, जबकि कुछ अन्य 13 प्रतिशत का दावा करते हैं) कवर करता है, को टैम द्वारा कवर नहीं किया जाता। इतनी उत्तेजनापूर्ण दर्शक मूल्यांकन स्थिति में प्रसार भारती को शिकायतों के निपटारे के लिए टैम को एक अर्द्धन्यायिक निकाय के रूप में लेना होता है। पिछले कुछ हफ्तों में अख़बारों से पता चलता है कि टैम ने अपने 'लोगों के पैमाने' का विस्तार एलसी-1 कस्बों, अर्थात एक लाख या उससे कम आबादी वाले छोटे कस्बों, तक करना शुरू कर दिया है। संभवत: इसके परिणामस्वरूप, अथवा संभवत: 'विषयवस्तु और स्वरूप' में पूर्ण बदलाव लाने के प्रसार भारती के कड़े उपायों के फलस्वरूप यह तथ्य है कि दूरदर्शन अपनी वर्तमान रेटिंग अन्य चैनलों की तुलना में प्रतिस्पर्धात्मक बनाए रखने में सफल रहा है।

रात 9 बजे और 10 बजे के बीच प्राइम टाइम न्यूज सेग्मेंट के अंतर्गत दूरदर्शन समाचार अन्य अंग्रेजी समाचार चैनलों की तुलना में व्यापक अंतर के साथ पहले नंबर पर है और यहां तक कि टैम ने भी कई महीनों तक इस रुझान को रिपोर्ट किया है। इसी अवधि के दौरान, टैम ने संकेत दिया है कि डीडी न्यूज का हिंदी समाचार सेग्मेंट प्राइम टाइम (यानी रात 8 बजे से 9 बजे के बीच) पर दूसरे और तीसरे स्थान पर है, जो बड़ी संख्या में हिंदी समाचार चैनलों से आगे है। सामान्य मनोरंजन की दृष्टि से देखें तो दूरदर्शन या प्रसार भारती के पास इतना धन और लचीलापन नहीं है कि वे टीवी कार्यक्रमों के ख़र्चीले निर्माण की ऊंची लागत अदा कर सकें फिर भी, इस दृष्टि से दूरदर्शन तीसरे स्थान पर रहा है। इस क्षेत्र में दूरदर्शन ने क़रीब 300 या अधिक प्रतिस्पर्धियों को पीछे छोड़ा है जिनमें विश्व स्तरीय विदेशी स्वामित्व वाले टीवी चैनल और बड़े भारतीय व्यापारिक घरानों के स्वामित्व वाले अन्य चैनल शामिल हैं। अत: दूरदर्शन ने मनोरंजन के 'बड़े भारतीय माध्यम' अर्थात् एक ऐसे माधयम, जिसे भारतीय समाज के व्यापक वर्गों, शहरी से लेकर दूर-दराज के देहाती इलाक़ों तक, देखा जा सकता है, के रूप में अपने को प्रस्तुत किया है। दूरदर्शन ने इस कार्य को अंजाम देने में अत्यधिक चकाचौंध, अत्यधिक शोर शराबे या विवादास्सपद रुचियों का सहारा नहीं

लिया है, जिनसे अक्सर भारतीय दर्शकों के व्यापक वर्गों की भावनाओं को क्षति पहुंचती है। किंतु, इस तरह की रेटिंग उपलब्धियों का एकमात्र पैमाना नहीं होती हैं और इसमें कोई संदेह नहीं कि दूरदर्शन और आकाशवाणी को अत्यंत शक्तिशाली प्रतिस्पर्धियों के ख़िलाफ़ संघर्ष करना पड़ता है, जिनमें से कुछ विदेशी स्वामित्व वाली कंपनियां हैं जिनके पास व्यापक धन और दशकों का अनुभव है, जो विकासशील देशों में परंपरागत प्रसारणकर्ताओं को क्षति पहुंचाती हैं।

तथ्य यह है कि यदि कोई संगठन लचीला नहीं हो सकता और अद्यतन तक़नीकों और व्यावसायिकता को नहीं अपना सकता, तो टीआरपी अथवा दर्शकों की व्यापक संख्या का कोई अर्थ है। इस मुद्दे पर निस्संदेह प्रसारभारती और इसके दो निकायों को ख़ामियों का सामना करना पड़ा है। इसका कुछ दोष निश्चित रूप से इसके नेतृत्व (अथवा इसके अभाव, जैसा कि कुछ लोग मुखर होकर दावा करते हैं) का है लेकिन वे दबाव भी इसके लिए जिम्मेदार हैं, जिनमें इन संगठनों को काम करना पड़ता है। प्रसार भारती अधिनियम के अंतर्गत भर्तियों (व्यवसायियों सहित) और सभी सेवा शर्तों आदि से संबंधित सभी विनियमों के लिए केंद्र सरकार की पूर्व मंजूरी की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे में मौजूदा पदों, जिनका निर्धारण दशकों पहले हुआ था (और जो कई वर्षों से खाली पड़े हैं) को अधिक गतिशील, तक़नीकी या अधिक व्यवसायी के रूप में परिवर्तित करना अत्यंत कठिन है। ऐसा सिर्फ सूचना और प्रसारण मंत्रालय की वज़ह से नहीं है, बल्कि इसलिए है कि इस मंत्रालय को सरकारी कार्य प्रणाली के अंतर्गत प्रत्येक प्रस्ताव को अन्य अलग-अलग मंत्रालयों और विशेषज्ञ निकायों को भेजना पड़ता है। हम कोई अन्य रास्ता नहीं अपना सकते और सरकारी प्रक्रियाओं के कायदे-कानूनों को उद्धृत नहीं कर सकते। पिछले दो दशकों में इसकी विशाल कार्मिक क्षमता को बड़ी निराशा का सामना करना पड़ा है क्योंकि प्राइवेट चैनलों ने आकर्षक प्रस्तावों के ज़रिये कम वेतन पर भर्ती सरकारी प्रतिभाओं को अपने यहां खींच लिया और जो बचे रहे वे प्रसार भारती में पदोन्नतियों के लिए कुढ़ते रहे और इस दौरान नयी भर्तियां भी नहीं हुईं।

किसी भी बड़े मुद्दे पर निर्णय करने संबंधी समूची प्रक्रिया में समय लगता है : जिसमें वर्षों लग जाते हैं। इस प्रकार प्रसार भारती, डीडी या आकाशवाणी के नेतृत्व को समूची प्रणाली के समक्ष परास्त होना पड़ता है अथवा ठेठ सरकारी तरीक़े से लौटाए गए प्रस्तावों को छोड़ना पड़ता है, जो चौथी अथवा पांचवीं बार लगी आपत्तियों के साथ वापस आए होते हैं, जिनमें ज्यादातर प्रश्न प्रासंगिक नहीं होते हैं, फिर भी पूछे जाते हैं। फाइलों और अभिलेखागारों के परीक्षण से पता चलता है कि अनेक प्रश्न ऐसे भी होते हैं, जिनके समाधान का प्रयास ईमानदारी से नहीं किया जाता। कोई भी व्यक्ति इस बात का सहज अनुमान लगा सकता है कि दूरदर्शन तथा आकाशवाणी के 455 केंद्रों और देशभर में फैले 1900 से अधिक ट्रांसमीटरों की ज़रूरतें कितनी व्यापक होंगी और यह भी कि 'मौजूदा प्रणाली' में किसी संवेदनशील संगठन प्रमुख के समक्ष कितनी व्यापक समस्याएं उत्पन्न होती हैं और किसी प्रकार के नये या साहसिक क़दम उठाने में उसे कितनी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। कुछ संगठनों का साफ-साफ कहना है कि प्रसार भारती का नेतृत्व समुचित रचनात्मक अथवा संगत नहीं रहा है। मंत्रालय हमेशा यह कहता है कि जब तक प्रसार भारती के प्रस्तावों पर विभिन्न मंत्रालयों के बीच आम सहमति कायम नहीं हो जाती तब तक क्या किया जा सकता है या वे क्या कर सकते हैं।

प्रसार भारती अधिनियम में काफी प्रचालनगत स्वायत्तता प्रदान की गई है किंतु अधिनियम की धारा 32 या 33 उस स्वायत्तता को निरर्थक बना देती है, जिसमें शर्त लगाई गई है कि महत्वपूर्ण मुद्दों पर सरकार की मंजूरी ज़रूरी है। अतः इससे रुकावट पेश होती है। तथ्य तो तथ्य ही रहेंगे किंतु प्रसार भारती बोर्ड भी इस बात पर एकमत है कि अधिनियम में यदि संशोधन किया जाए, तो भी एक समुचित निगरानी तंत्र अनिवार्य है।

प्रसार भारती में शासन की वर्तमान व्यवस्था क्या है? इसमें एक 'प्रचालनगत स्वायत्तता' शामिल है, जिसके भीतर प्रसार भारती कार्य करती है, ताकि उन उच्च स्तरों तक पहुंचा जा सके, जिनका उल्लेख शुरू के अनुच्छेदों में किया गया है। सामान्यतः किसी भी सार्थक सरकार के पास इतना समय या इतनी ऊर्जा नहीं है अथवा प्रवृत्ति नहीं है कि सूक्ष्म ब्यौरों में जा कर देखे। प्रसार भारती बोर्ड में एक अध्यक्ष, 6 जाने-माने व्यवसायी जो अंशकालिक सदस्य हैं, और 5 पूर्णकालिक सदस्य, अर्थात् सीईओ, 2 सदस्य प्रभारी कार्मिक और वित्त, 2 आकाशवाणी और दूरदर्शन महानिदेशक तथा एक मंत्रालय द्वारा नामित सदस्य हैं। इस बोर्ड की 2 महीने या इससे कुछ अधिक समय में एक बार बैठक होती है और यह प्रसार भारती सचिवालय के निर्णयों का अनुमोदन करता है अथवा स्वयं निर्णय करता है, जो आमतौर पर बृहत् या नीति स्तर के होते हैं। बोर्ड संगठन के लिए दिशा निर्धारित करता है और अपनी सलाह को कार्य रूप दिए जाने के बारे में कार्यकारी सदस्यों का मार्ग दर्शन करता है। सूचना और प्रसारण मंत्रालय की सलाह पर 2011 में संसद द्वारा संशोधन किए जाने के बाद बोर्ड को कर्मचारियों के संदर्भ में कुछ अनुशासनात्मक अधिकार भी प्राप्त हैं। इसके अंतर्गत आकाशवाणी और दूरदर्शन के अधिकारी और सरकारी कर्मचारी प्रसार भारती में 'स्थायी प्रतिनियुक्ति' पर रखे गए हैं। सरकार ने 300 करोड़ रुपये तक के अपने वित्तीय अधिकार प्रसार भारती को प्रत्यायोजित किए हैं, किंतु सरकारी वित्त पोषण की प्रत्येक खेप निराशाजनक देरी, टेढ़े-मेढ़े ढंग से और वह भी दृढ़तापूर्वक अनुनय विनय के बाद पहुंचती है। महीनों के प्रयास के बावजूद एक भी वित्तीय मूल्यांकन अधिकारी पदासीन नहीं है, ऐसे में वित्तीय स्वायत्तता का क्या अर्थ है? प्रसार भारती अधिनियम में काफी प्रचालनगत स्वायत्तता प्रदान की गई है किंतु अधिनियम की धारा 32 या 33 उस स्वायत्तता को निरर्थक बना देती है, जिसमें शर्त लगाई गई है कि महत्वपूर्ण मुद्दों पर सरकार की मंजूरी ज़रूरी है। अतः इससे रुकावट पेश होती है। तथ्य तो तथ्य ही रहेंगे किंतु प्रसार भारती बोर्ड भी इस बात पर एकमत है कि अधिनियम में यदि संशोधन किया जाए, तो भी एक समुचित निगरानी तंत्र अनिवार्य है क्योंकि जवाबदेही अनिवार्य है।

दूरदर्शन अपने विशाल ट्रांसमिशन नेटवर्क के समयबद्ध डिजिटीकरण के जरिये क्रांतिकारी

बदलाव ला सकता है, बशर्ते प्रारंभिक प्रयोग सफल हों और यह सुनिश्चित किया जा सके कि धन का प्रवाह उपलब्ध होगा। सरकार ने हाल ही में श्री सैम पित्रोदा की अध्यक्षता में प्रसार भारती के बारे में एक विशेषज्ञता समिति का गठन किया है ताकि प्रत्येक मुद्दे पर उपलब्ध सर्वोत्कृष्ट विकल्पों का परीक्षण किया जा सके। समिति ने अपने कामकाज के अंतर्गत आम लोगों और संगठन के भीतर काफी वैचारिक आदान प्रदान किया है जिससे नए क्षितिजों और संभावनाओं का पता चला है। एक विचार यह सामने आया है (जो अभी तक एक विचार मात्र है) कि प्रसार भारती भावी प्राप्तियों के मौद्रिकरण की अग्रिम आयोजना बनाने पर विचार कर सकता है। इसके अंतर्गत यह सुझाव दिया गया है कि हमें उन ट्रांसमीटरों और परिसंपत्तियों के नक़दीकरण की तात्कालिक या व्यवस्थित योजना बनानी चाहिए, जो डिजिटीकरण के बाद फालतू या बंद होने हैं। प्रसार भारती इन परिसंपत्तियों के नक़दीकरण से उन चुने हुए 350-400 अथवा

भारत में एक प्रमुख मंत्रालय ने बहुमूल्य स्पैक्ट्रम खाली करने के लिए कई हज़ार करोड़ रुपये प्राप्त किए हैं। ऐसे में, सूचना और प्रसारण मंत्रालय का प्रसार भारती व्यापक राष्ट्रीय हित में ऐसा क्यों न करे।

यहां तक कि 630 ट्रांसमीटरों के डिजिटल आधुनिकीकरण के लिए धन जुटा सकता है। यह एक प्रारंभिक विचार मात्र है और इस बारे में पूर्ण पारदर्शिता रखते हुए बहुत ध्यानपूर्वक गणना करने की आवश्यकता है ताकि किसी संभावित विवाद से बचा जा सके। इसके लिए संगठन के सभी वर्गों को पूरी तरह शामिल करने की आवश्यकता होगी, लेकिन यह संभावना तभी बनती है जब सरकार इस पर गंभीरता से विचार करने की इच्छुक हो क्योंकि ज़्यादातर संपत्तियां भारत सरकार से संबद्ध हैं। इसके लिए सभी पक्षों को सोच विचार करते हुए आगे बढ़ना होगा।

एक और संभावना यह भी है, जिस पर अमरीका और कुछ अन्य विकसित देशों ने विचार किया है, और जो विश्व के सबसे मूल्यवान संसाधनों 'स्पैक्ट्रम' के उपयोग संबंधी राष्ट्रीय नीति के साथ जुड़ी हुई है। स्पैक्ट्रम का आवंटन विश्व फ्रीक्वेंसी प्लान द्वारा किया जाता है, जिसका निर्धारण अंतर्राष्ट्रीय दूरसंचार संघ (जिनेवा) द्वारा अपने रेडियो विनियमों के ज़रिये किया जाता है। इसमें प्रत्येक देश का यह कर्तव्य है कि वह 40 से अधिक प्रकार के इस्तेमालकर्ताओं और प्रतिद्वंद्वी दावेकर्ताओं के लिए स्पैक्ट्रम का अनुकूलतम इस्तेमाल करे। रक्षा से लेकर अंतरिक्ष तक (टेलीफोनी और मोबाइलों से लेकर पुलिस एवं सुरक्षा बलों के लिए वायरलेस सेवाओं तक, श्रव्य ट्रांसमिशन से एफएम रेडियो तक, टेलीविजन से वॉकी टॉकी तक) स्पैक्ट्रम की मांग अधिकाधिक बढ़ती जा रही है। डिजिटल तक़नीक अपना कर भारत स्पैक्ट्रम का बड़ा हिस्सा बचा सकता है। किंतु, इसे कार्यान्वित कैसे किया जाए। समस्या मौजूदा ढांचे में निहित है जो आवंटित रेंज पर विभिन्न बैंड-विड्थ के स्पैक्ट्रम के प्रति स्थित और नियत है। उन्हें एक परिभाषित कम्पैक्ट बैंड-विड्थ में री-फार्म और कम्प्रैस करना संभव नहीं है। यह एक विशाल कार्य है और इसके लिए अत्यधिक धन की भी आवश्यकता होगी। भारत में एक प्रमुख मंत्रालय ने बहुमूल्य स्पैक्ट्रम खाली करने के लिए कई हज़ार करोड़ रुपये प्राप्त किए हैं। ऐसे में, सूचना और प्रसारण मंत्रालय का प्रसार भारती व्यापक राष्ट्रीय हित में ऐसा क्यों न करे।

उपरोक्त सभी विकल्पों पर रचनात्मक ढंग से सोचते हुए समाधान निकाला जा सकता है। अमरीका अपने नागरिकों को वाउचर वितरित करने में क़रीब 2 अरब डॉलर (11 हज़ार करोड़ रुपये से अधिक) ख़र्च करता है ताकि स्पैक्ट्रम बचाया जा सके और अधिक ऊंचे दामों पर बेचा जा सके। कई अन्य देशों ने भी व्यापक हित में ऐसे प्रमुख वित्तीय मार्ग का अनुसरण किया है। प्रसार भारती के बारे में सैम पित्रोदा समिति द्वारा किया जा रहा विचार विमर्श भी लगता है इस दिशा में बढ़ रहा है, हालांकि इस दिशा में अंतिम सुझाव अभी तैयार किए जाने हैं। यह पहला 'महत्वपूर्ण मोड़' या 'चौराहा' है जहां आज हम खड़े हैं, और यदि यह एक सकारात्मक दिशा है, तो प्रसार भारती एक राष्ट्रीय एफएम नेटवर्क के लिए उपलब्ध समाधानों में से इसकी तरफ बढ़ सकता है। शॉर्ट वेव को कोई नहीं सुनता और मीडियम वेव को कुछ लोग सुनते हैं यहां तक कि रिसीवर सेट भी इनके लिए उपलब्ध नहीं हैं। ऐसे में हम शॉर्ट वेव या मीडियम वेव का विस्तार या स्थानापन्न क्यों करें? एफएम मोबाइल और कार रेडियो के ज़रिये लाखों लोगों तक पहुंच रहा है लेकिन ऐसे प्रत्येक चैनल की रेंज सीमित होती है और इसके लिए बड़ी संख्या में चैनलों, सह-चैनलों, नेटवर्क और ट्रांसमीटरों की आवश्यकता पड़ती है ताकि आकाशवाणी की सभी रेडियो सेवाएं जैसे प्राइमरी चैनल और विविध भारती (जो ज़्यादातर मीडियम वेव पर हैं) एक साथ ट्रांसमीशन के लिए एफएम पर भी उपलब्ध कराई जा सकें ताकि लाखों लोग उन्हें सुन सकें। और भी चौराहे हैं जहां भारत के लोक सेवा प्रसारणकर्ता और इसके बुनियादी मुद्दों और बड़े अवसरों का संबंध है। लेकिन पहले हमें टीवी सेवाओं के टेरेस्ट्रियल ट्रांसमिशन

एफएम मोबाइल और कार रेडियो के ज़रिये लाखों लोगों तक पहुंच रहा है लेकिन ऐसे प्रत्येक चैनल की रेंज सीमित होती है और इसके लिए बड़ी संख्या में चैनलों, सह-चैनलों, नेटवर्क और ट्रांसमीटरों की आवश्यकता पड़ती है ताकि आकाशवाणी की सभी रेडियो सेवाएं जैसे प्राइमरी चैनल और विविध भारती (जो ज़्यादातर मीडियम वेव पर हैं) एक साथ ट्रांसमीशन के लिए एफएम पर भी उपलब्ध कराई जा सकें।

के डिजिटीकरण के तात्कालिक प्रश्न का समाधान करना होगा।

प्रत्येक चौराहा आगे का मार्ग प्रस्तावित करता है। यह परिवर्तन के समर्थकों को व्यापक छलांग यानी लीप फ्रागिंग की अनुमति देता है और इसमें अंतर्निहित आकर्षण अथवा खतरे भी हैं जो दाएं बाएं मुड़ने अथवा सिर झुकाने मात्र से पैदा हो सकते हैं या फिर हम पीछे जा सकते हैं, जो हमने कई बार किया है। अत: 'स्वायत्तता की विचारधारा' (सैम पित्रोदा) के अनुपालन में सभी कार्ड टेबल पर रखते हुए अब देखना यह है कि भारत अंतत: किस दिशा में आगे बढ़ता है। ❑

(लेखक प्रसार भारती के मुख्य कार्यकारी अधिकारी हैं।

ई-मेल : sircar.j@gmail.com)

जटिल विश्व में लोक प्रसारक का आकाशदीप
हितकारी शिक्षाप्रद-मनोरंजक परामीडिया कथाकथन

● अरविंद सिंहल

समस्त विश्व में लोक प्रसारक प्रणालियां अस्तित्व के संकट का सामना कर रही हैं। उनके सामने सबसे बड़ी दुविधा इस बात को लेकर है कि प्रसारण की आधुनिक प्रौद्योगिकी के चलते उनकी भूमिका क्या एक एजेंडा निर्धारक और लोकतंत्र के पोषक की रह गई है अथवा बोलियों के झंझावात से परे सार्वजनिक और वैयक्तिक रूप से उपयोगी प्रसारक की। उन्हें ऐसे कार्यक्रम तैयार करने पड़ते हैं जो मनोरंजक भी है और शिक्षाप्रद भी। चाहे वह ब्रिटेन का बीबीसी हो या जापान में एनएचके, अमरीका में पब्लिक ब्रॉडकास्टिंग कार्पोरेशन अथवा भारत का प्रसार भारती लोक प्रसारकों को शनैः शनैः आपा खो रही दुनिया में अपने अर्थ और उद्देश्य के बारे में सोचना पड़ रहा है। तकनीकी प्रगति के फलस्वरूप टेलीविजन का पर्दा जहां एक ओर बड़े परदे से होड़ कर रहा है, वहीं वह हथेली में समा जाने वाले मोबाइल फोन के हैंडसेट में भी समाहित हो गया है। प्रसारण के संदर्भ में लोक प्रसारकों को डिजिटीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण, निर्दिष्ट प्रस्तुतिकरण, लोकतंत्रीकरण जैसे दबावों से जूझना होता है।

एकाकार होती प्रौद्योगिकी, फैलती कनेक्टिविटी और उपभोक्ता की अलग-अलग पसंद से आकार लेने वाले परस्पर विरोधी उद्देश्यों और हितों की इस बेसुरी दुनिया में लोक प्रसारकों के अनुसरण के लिए कोई आदर्श रास्ता नहीं रहा है। वर्तमान 21वीं सदी में मीडिया और दर्शक (श्रोता) की पसंद लोक प्रसारकों के लिए इतनी जटिल हो चुकी है कि न तो उसको सही-सही समझा जा सकता है और न ही उसे ठीक से अभिव्यक्त किया जा सकता है। प्रौद्योगिकी, नीति और वैश्विक एवं स्थानीय आवश्यकताओं के ढेरों ऐसे रूप हैं जो आपस में मज़बूती से जुड़े भी हैं और ढीले भी हैं, व्यवस्थित हैं और अराजक भी तथा उदासीन भी हैं और संवेदनशील भी। इसके साथ ही ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक ताक़तें भी परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से अपना प्रभाव दिखाने का प्रयास करती हैं।

मेरा विचार है कि 21वीं शताब्दी में लोक प्रसारकों को केवल कुछ चुनिंदा मार्गदर्शक संकेतों पर ही ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। प्रस्तुत आलेख में मैं इसी प्रकार के एक मार्गदर्शी आकाशदीप की चर्चा करना चाहूंगा। इसे हितकारी शिक्षाप्रद मनोरंजक परा मीडिया कथाकथन कहा जा सकता है। लोक प्रसारण प्रणालियों को समय के अनुसार अपने आपको बदलने और सुधार के लिए आगे आकर नेतृत्व करना होगा। हितकारी मनोरंजक शिक्षा शिक्षाप्रद मनोरंजन से मेरा क्या तात्पर्य है इसे मैं कुछ उदाहरणों से स्पष्ट करने का प्रयास करूंगा।

मनोरंजन और शिक्षा की घुली-मिली किस्सागोई की परंपरा तब से चली आ रही है, जब से मानव इतिहास का उल्लेख मिलता है। हज़ारों वर्षों से संगीत, नाटक, नृत्य और लोक प्रचार माध्यम का उपयोग सभी समाजों में मनोरंजन, भक्ति, सुधार और शिक्षा के लिए होता रहा है।

हितकारी मनोरंजक शिक्षा रणनीति

मनोरंजन और शिक्षा की घुली-मिली किस्सागोई की परंपरा तब से चली आ रही है, जब से मानव इतिहास का उल्लेख मिलता है। हज़ारों वर्षों से संगीत, नाटक, नृत्य और लोक प्रचार माध्यम का उपयोग सभी समाजों में मनोरंजन, भक्ति, सुधार और शिक्षा के लिए होता रहा है। परंतु उद्देश्यपूर्ण संप्रेषण रणनीति के रूप में शिक्षाप्रद मनोरंजन अपेक्षाकृत एक नया विचार है, क्योंकि रेडियो, टेलीविजन, लोकप्रिय संगीत, फ़िल्मों और इंटरऐक्टिव डिजिटल मीडिया में इसके उपयोग के बारे में पिछले कुछ दशकों में ही ध्यान दिया गया है।

प्रारंभिक दशकों में मनोरंजन-शिक्षा अथवा शिक्षाप्रद मनोरंजन (ईई) को मोटे तौर पर इस प्रकार परिभाषित किया गया था कि ''यह वह प्रक्रिया है जो शैक्षणिक मुद्दा के बारे में दर्शकों की ज्ञानवृद्धि, अनुकूल दृष्टिकोण अपनाने, सामाजिक मानक बदलने और लोगों के प्रकट व्यवहार में परिवर्तन के लिए शिक्षा और मनोरंजन को मिलाकर दर्शकों/श्रोताओं को संदेश दिया जाता है और उस पर अमल किया जाता है। परंतु हाल के वर्षों में डिजिटल इंटरऐक्टिव मनोरंजन के विस्तार और लोकप्रियता में हुई भारी वृद्धि को देखते हुए इसकी परिभाषा में एक नया रूप देने की पेशकश की है (वेग और सिंहल 2009) उनके अनुसार यह मीडिया का उपयोग करने वाली जनसंख्या के बीच इच्छित वैयक्तिक, सामुदायिक, संस्थागत और सामाजिक परिवर्तनों के लिए मनोरंजन कार्यक्रम में शैक्षिक और सामाजिक विषयों को आपस में पिरो कर परोसने वाली सिद्धांत आधारित संप्रेषण रणनीति का उद्देश्य पूर्ण समावेशन है।

रेडियो में शिक्षा और मनोरंजन के मेल का सबसे पहला प्रयास 1951 में हुआ, जब बीबीसी ने 'दि आर्चर्स' नामक ब्रिटिश रेडियो सोप ओपेरा का प्रसारण शुरू किया जिसमें कृषि विकास के बारे में शिक्षाप्रद संदेश दिए जा रहे थे। पूरे विश्व में सबसे अधिक लंबे समय से प्रसारित हो रहा 'दि आर्चर्स' सोप ओपेरा आज भी लोकप्रिय है और इस समय इसमें एचआईवी/एड्स की रोकथाम और बचाव तथा पर्यावरण संरक्षण जैसे सम-सामयिक विषयों

पर केंद्रित कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं।

टेलीविज़न में शिक्षाप्रद मनोरंजन (ईई) की खोज एक प्रकार से संयोगवश 1969 में पेरू में हुई, जब सिम्प्ल मारिया नामक सोप ओपेरा का प्रसारण हुआ (सिंहल, आब्रेगॉन एंड रॉजर्स 1994)। मुख्य चरित्र, मारिया, राजधानी में बाहर से आई एक लड़की है जो दिन में नौकरानी की तरह काम करती थी और शाम को प्रौढ़ शिक्षा की कक्षा में पढ़ने जाती थी। अपने कड़े परिश्रम और दृढ़ मनोबल के दम पर आगे चलकर उसने सिंगर सिलाई मशीन के सहारे उच्चस्तरीय सिलाई कौशल हासिल किया।

सिम्पल मारिया को जिसे पेरू की भाषा में सिम्पलमेंटे मारिया कहा जाता था, दर्शकों का अपार स्नेह मिला और रिकॉर्ड रेटिंग भी। साथ ही पेरू में सिंगर सिलाई मशीन की बिक्री में भी भारी उछाल आया। और यही हाल रहा प्रौढ़ शिक्षा (साक्षरता) तथा सिलाई कक्षाओं में लड़कियों की भर्ती का। सिम्पलमेंटे मारिया का प्रसारण जब दूसरे लैटिन अमरीकी देशों में शुरू हुआ तो वहां भी वही प्रभाव

सिंपलमेंटे मारिया की लोकप्रियता और उनके शिक्षाप्रद प्रभाव से प्रेरित होकर शिक्षाप्रद मनोरंजन की रणनीति को व्यवस्थित रूप दिया गया और उसे लंबे समय तक चलने वाले धारावाहिक नाटकों के वर्ग में रखा गया।

देखने को मिला। मारिया के साथ दर्शकों का तादाम्य, विशेषकर ग़रीब कामकाजी महिलाओं में अभूतपूर्ण था। वे उच्चवर्गीय समाज में उठने-बैठने के लिए मारिया को 'सिंड्रेला' जैसी आदर्श पात्र के रूप में देखती थी। इस प्रकार के सिंड्रेला जैसे चरित्रों ने दशकों से विश्व के अनेक देशों में दर्शकों को प्रेरित किया है। इनमें 'बेटी ला फिया' जिसे अंग्रेज़ी में अगली बेटी कहा जाता है। जैसे लंबे समय तक चलने वाले धारावाहिक नाटक प्रमुख है भारत में इसे 'जस्सी जैसी कोई नहीं' के रूप में दर्शकों की भरपूर सराहना मिली।

सिंपलमेंटे मारिया की लोकप्रियता और उनके शिक्षाप्रद प्रभाव से प्रेरित होकर शिक्षाप्रद मनोरंजन की रणनीति को व्यवस्थित रूप दिया गया और उसे लंबे समय तक चलने वाले धारावाहिक नाटकों के वर्ग में रखा गया। इस वर्गीकरण में प्रमुख भूमिका मेक्सिको के टेलीविज़न प्रस्तोता लेखक निर्माता, निर्देशक मिगुएल सैबिडो की रही, जिन्होंने प्रौढ़ साक्षरता की कक्षाओं में भर्ती, परिवार नियोजन और लैंगिक (स्त्री-पुरुष) समानता को प्रेरित और प्रोत्साहित करने के लिए शिक्षाप्रद मनोरंजक धारावाहिक (सोप ओपेरा) की लंबी शृंखलाओं का निर्माण और प्रसारण किया। ये कार्यक्रम मेक्सिको के टेलीविज़न नेटवर्क टेलीविज़ा के लिए व्यावसायिक रूप से बहुत सफल रहे। इससे यह पता चलता है कि यह ज़रूरी नहीं कि सार्वजनिक और निजी तथा सामाजिक एवं व्यावसायिक हित हमेशा एक-दूसरे के विरुद्ध काम करें (नरीमन 1993)।

सोप ओपेरा के निर्माण की सैबिडो की शैली धीरे-धीरे पूरे विश्व में लोकप्रिय होती गई। भारत में भी इसने 'हमलोग' जैसे धारावाहिकों के निर्माण को प्रेरित किया। तंजानिया में 'ट्वेन्डे ना वकाती' (आओ समय के साथ-साथ चलें) जैसे सोप ओपेरा रेडियो के लिए तैयार किए गए। मेक्सिको और नाइजीरिया में रॉक संगीत का उपयोग किया गया। पिछली सदी में अस्सी के दशक के मध्य से शिक्षाप्रद मनोरंजन या मनोरंजक शिक्षा कार्यक्रमों का विस्तार तेज़ी से हो रहा है। पिछले तीन दशकों में इसी रणनीति पर आधारित दुनियाभर में हज़ारों कार्यक्रम तैयार किए गए हैं।

शुद्ध रूप से मनोरंजन कार्यक्रमों की तुलना में शिक्षाप्रद मनोरंजक कार्यक्रमों की एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि उनमें प्रारंभ से लेकर अंत तक अनुसंधान और शोध पर पूरा ध्यान दिया जाता है। अस्सी के दशक के मध्य से लेकर 2000 के दशक के प्रारंभ तक अधिकतर शिक्षाप्रद मनोरंजक कार्यक्रमों में इस प्रकार के संदेश पिरोए जाते रहे जो व्यक्ति और समुदाय के व्यवहार में अपेक्षित बदलाव के लिए केएपी (ज्ञान, व्यवहार और आदत) की खाइयों को दूर करने के इरादे से तैयार किए गए थे। इस सबके लिए परा सामाजिक संवाद, लोगों के लिए आदर्श खड़ा करने, जानी-मानी शख़्सियतों के साथ तादाम्य स्थापित करने और पारस्परिक संवाद की व्यवस्था का सहारा लिया गया।

आमतौर पर ईई (शिक्षाप्रद मनोरंजन) दर्शकों/श्रोताओं को काफी सुखद और आकर्षक लगता है। तमाम साहित्य में भी इस बात का पर्याप्त उल्लेख मिलता है कि लोगों के व्यवहार में परिवर्तन और जागरुकता फैलाने में शिक्षाप्रद मनोरंजक कार्यक्रमों की भूमिका उल्लेखनीय रही है। सामाजिक बदलाव और उच्च सांस्कृतिक मानदंड स्थापित करने में भी इस प्रकार के कार्यक्रमों की भूमिका प्रमुख रही है।

सोल सिटी : दक्षिण अफ्रीका में चल रहा मल्टीमीडिया शिक्षाप्रद मनोरंजक कार्यक्रम

राष्ट्रीय स्तर के संप्रेषण अभियानों में बड़े पैमाने पर शिक्षाप्रद मनोरंजन कार्यक्रमों की भूमिका को बेहतर रूप से समझने के लिए दक्षिण अफ्रीका के सोल सिटी इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ एंड डेवलपमेंट कम्युनिकेशन के प्रकरण पर विचार करना उचित होगा। इसे शिक्षाप्रद मनोरंजक कार्यक्रम के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मार्गदर्शक/कार्यक्रम माना जाता है। एक करोड़ 60 लाख दक्षिण अफ्रीकी नियमित रूप से सोल सिटी मल्टीमीडिया कार्यक्रम देखते हैं और यह कार्यक्रम स्वास्थ्य और सामाजिक विषयों से संबंधित लोगों के व्यवहारों और मान्यताओं को बखूबी प्रभावित कर रहा है।

पिछली सदी में अस्सी के दशक के मध्य से शिक्षाप्रद मनोरंजन या मनोरंजक शिक्षा कार्यक्रमों का विस्तार तेज़ी से हो रहा है। पिछले तीन दशकों में इसी रणनीति पर आधारित दुनियाभर में हज़ारों कार्यक्रम तैयार किए गए हैं

इसकी दो प्रमुख शृंखलाएं हैं सोल सिटी और सोल बडीज़ और प्रत्येक में एक टेलीविज़न धारावाहिक और उसके अनुरूप रेडियो नाटक शामिल है, जो दक्षिण अफ्रीका की 11 भाषाओं में प्रसारित होने के साथ-साथ पत्र-पत्रिकाओं, कॉमिक पुस्तकों और अभ्यास पुस्तिकाओं में भी इस्तेमाल किए जाते हैं।

सोलसिटी अपनी सशक्त कहानियों के लिए एक विशद और विस्तृत शोध प्रक्रिया को अपनाता है। सोलसिटी की प्रत्येक शृंखला में स्वास्थ्य और विकास संबंधी विषयों में से तीन-चार मुद्दों को प्राथमिकता दी जाती है। चिकित्सकों, विशेषज्ञों, विद्वानों और सिविल सोसाइटी समूहों से परामर्श लेकर कार्यक्रम तैयार किए जाते हैं। कार्यक्रम के निर्माण और प्रसारण के पूर्ण उसकी पटकथाओं के मनोरंजक और शैक्षणिक मूल्यों का पूर्व परीक्षण किया जाता है।

यहां पर सोल सिटी की चौथी टेलीविज़न श्रृंखला का उदाहरण ध्यान में आता है, जिसका एक अति सम्मानित चरित्र थंबग जो एक स्कूल शिक्षक है और जो नियमित रूप से अपनी पत्नी मटलाकाला पर शारीरिक, मौखिक और भावनात्मक हिंसा (अत्याचार) करता रहता है। मटलाकाला की मां उसे बेके जेला अर्थात अत्याचार सहन करने की सलाह देती है। क्योंकि विवाह को सफल बनाने के लिए यह स्त्री का प्रथम और प्रमुख कर्तव्य है। थबंग का पिता भी इससे सहमत है और इस बात पर ज़ोर देता है कि पति द्वारा पत्नी को अनुशासन में रखना यही रिवाज है। मटलाकाला पर अत्याचार जब ज्यादा बढ़ने लगे तो उसे दक्षिण अफ्रीका के नये घरेलू हिंसा कानून के बारे में पता चला और उसमें थबंग पर एक संरक्षण आदेश जारी करवाया। मटलाकाला के पिता ने अपनी बेटी की ओर से बोलते हुए और एक नये अभिमानकीय व्यवहार का नमूना प्रस्तुत करते हुए पड़ोसियों से अनुरोध किया कि उन्हें मूकदर्शक बनकर इस अत्याचार में साथ न देकर बल्कि हस्तक्षेप करना चाहिए। जैसे-जैसे कहानी आगे बढ़ती है और जब एक अंक में थबंग मटलाकाला को मारने-पीटने लगता है, तो उसके पड़ोसी, सामूहिक रूप से थबंग के घर के बाहर बर्तन-भाड़े बजाने लगते हैं। दर्जनों बर्तनों और भांड़ों की ज़ोरदार आवाज़ थबंग को एक स्पष्ट संदेश देती है कि समाज उसकी कारगुज़ारियों को पसंद नहीं करता। साथ ही मटलाकाला को भी यह संदेश पहुंचता है कि पड़ोसी उसकी परवाह/चिंता करते हैं।

बर्तन पीटने वाला अंक, जिसे 1999 में दक्षिण अफ्रीका में दर्शकों की सबसे अधिक लोकप्रियता मिली, पड़ोसियों को सक्रिय बनाने के लिए सामूहिक प्रभावोत्पादकता को आदर्श के रूप में प्रस्तुत करने के महत्व को दर्शाता है। ऐसे पड़ोसी, सामाजिक सांस्कृतिक कारणों से प्राय: पहले अपना दबाव नहीं बना पाते थे। पर्दे पर अत्याचारी के विरुद्ध पड़ोसियों को सामूहिक रूप से काम करते हुए देखकर दर्शकों को पति-पत्नी के बीच हिंसा के क्रम को समाप्त करने के लिए नये-नये तरीक़ों का पता चला और उन्हें आजमाया भी गया। जीवनसाथी पर अत्याचार को रोकने के लिए बर्तन पीटने की घटना दक्षिण अफ्रीका के अनेक समुदायों में अपनाए जाने की ख़बरें मिली हैं। एकाध प्रकरणों में जब पुरुषों ने मयखाने में अपनी महिला मित्रों के साथ शारीरिक दुर्व्यवहार किया तो वहां उपस्थित अन्य लोगों ने खाली बोतलें पीट-पीट कर अपना विरोध प्रकट किया।

संक्षेप में, मैं लोक प्रसारकों से कहना चाहता हूं कि उन्हें सोल सिटी जैसे सामाजिक रूप से प्रासंगिक, हितकर, मनोरंजक और शिक्षाप्रद कार्यक्रमों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। ऐसे कार्यक्रम यदा-कदा नहीं बल्कि सोल सिटी जैसे ही निरंतर चलते रहने चाहिए। सोल सिटी पिछले दो दशकों से लगातार प्रसारित हो रहा है। ऐसे कार्यक्रमों को शोध आधारित होना चाहिए और उनमें नये-नये और ज़रूरी सामाजिक मुद्दों को उठाया जाना चाहिए और हितकारी कार्यक्रमों की एक स्वस्थ पहचान बनानी चाहिए।

भारतीय टेलीविज़न के संदर्भ में कलर्स टीवी चैनल पर 2008 से एक अति लोकप्रिय धारावाहिक 'बालिका वधू' प्रसारित हो रहा है, जिसके अब तक 1,300 से अधिक अंक प्रसारित हो चुके हैं। यह धारावाहिक उपर्युक्त संकल्प का एक भोंडा और भड़कीला उदाहरण है। जरा सोचिए कि बालिका वधू जैसा कार्यक्रम गंभीर शोध और परामीडिया किस्सागोई के लिए सावधानीपूर्वक बनाया जाता तो जनता के भले के लिए कितना उपयोगी हो सकता था।

चित्र 1 : दक्षिण अफ्रीकी शिक्षाप्रद मनोरंजन नाटक सोलसिटी में घरेलू हिंसा रोकने के लिए सामूहिक रूप से बर्तन पीटन।

भारतीय टेलीविज़न के संदर्भ में कलर्स टीवी चैनल पर 2008 से एक अति लोकप्रिय धारावाहिक 'बालिका वधू' प्रसारित हो रहा है, जिसके अब तक 1,300 से अधिक अंक प्रसारित हो चुके हैं। यह धारावाहिक उपर्युक्त संकल्प का एक भोंडा और भड़कीला उदाहरण है। जरा सोचिए कि बालिका वधू जैसा कार्यक्रम गंभीर शोध और परामीडिया किस्सागोई के लिए सावधानीपूर्वक बनाया जाता तो जनता के भले के लिए कितना उपयोगी हो सकता था।

सकारात्मक विपधन अनुसंधान से शिक्षाप्रद मनोरंजन को ऊर्जावान बनाना

शिक्षाप्रद मनोरंजन के साथ एकीकरण के संदर्भ में एक नया नज़रिया उभर कर आया है, जिसमें काफी संभावनाएं बताई जा रही हैं। सामाजिक परिवर्तन का यह नया दृष्टिकोण पॉजिटिव डेवियांस अर्थात सकारात्मक विपथन गुण और विशेषता पर आधारित होता है जो समुदायों को यह पता लगाने में मदद करता है कि उनके सर्वोत्तम दस्तूर और रिवाज़ कौन-से हैं, जिन पर और काम करने की आवश्यकता है। यह एक ऐसा दृष्टिकोण है जो समुदाय की अच्छी बातों पर ध्यान केंद्रित करता है ताकि उनको और अधिक लोग अपना सकें। समाज की कमज़ोरियों और बुराइयों को सुधारने के प्रयास पर इसमें अधिक बल नहीं दिया जाता।

2012 की गर्मियों में एक दर्जन मैदानी शोधकर्ताओं को साथ लेकर मैंने सकारात्मक विपथन (पीडी) दृष्टिकोण से प्रेरित एक प्रारंभिक अनुसंधान टीम बनाई। हमारा उद्देश्य छोटा परिवार, प्रथम शिशु के जन्म में विलंब, दो बच्चों के जन्मों में पर्याप्त अंतर, बेटे के जन्म को प्राथमिकता देने की इच्छा को हतोत्साहित और गर्भ निरोधक उपायों को प्रोत्साहित करने के लिए शिक्षाप्रद मनोरंजन कार्यक्रम की रूपरेखा में योगदान के लिए आंकड़े आधारित सामग्री उपलब्ध कराना था। खामियों के आंकड़ों पर ध्यान देने के बजाय हम उन संवेदनाओं पर ध्यान केंद्रित कर रहे थे जो गुण और विशेषताओं पर आधारित थे : क्या ऐसे लोग, दंपत्ति अथवा स्वास्थ्य कार्यकर्ता हैं, जिन्होंने बिना किसी अतिरिक्त संसाधनों के परिवार नियोजन की ऐसी कोई विधि का पता लगाया है जो अन्य लोगों को नहीं पता? यदि ऐसा है तो वे क्या विधि अपनाते थे? पुराने आंकड़ों के विश्लेषण और कुछ महत्वपूर्ण साक्षात्कारों के जरिये हमने कुछ सकारात्मक विपथन बिंदुओं

का पता लगाया। वे कौन-से तरीक़े अपना रहे थे जिसके इतने अच्छे नतीज़े मिल रहे थे?

एक विवाहित महिला प्रत्याशी ने अपने मासिक धर्म चक्र पर बहुत सावधानी पूर्वक ध्यान केंद्रित कर उन दिनों में पति से संसर्ग नहीं किया, जब गर्भधारण की संभावना हो सकती थी। इससे उसके गर्भवती होने के जोखिम में कमी आई। मनाही के इन दिनों में उसने संभोग से बचने के लिए पति से तमाम तरह के बहाने बनाए। वह कहती कि उसके पति के स्वास्थ्य को लेकर कुछ दिनों का व्रत रखा है। उसने शर्माते हुए बताया कि हामी के दिनों में वह अपने पति को प्रसन्न करने के लिए हर तरह के प्रयास करती है।

इस वातावरण में रहने वाली अधिकतर विवाहित महिलाएं जहां सेक्स के बारे में ज्यादा टाल-मटोल नहीं कर पातीं वही इस महिला ने गर्भधारण के जोखिम को कम करने की दिशा में एक रचनात्मक और सांस्कृतिक रूप से उपयुक्त रास्ता निकाल लिया था। कोई पति अपने ही स्वास्थ्य के हित में रखे गए व्रत के नियम को कैसे तोड़ सकता था।

साधारण के बीच असाधारण और संभावित के बीच असंभावित की खोज करने वाले अनुसंधानकर्ता, जो शिक्षाप्रद मनोरंजक कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार करने में मदद करते हैं, ऐसे समाधान ढूंढ सकते हैं, जिन पर अधिक ख़र्च नहीं होता और जो अधिक समावेशी, अपनाने योग्य और सांस्कृतिक रूप से उपयुक्त होते हैं।

हम एक ऐसे स्वास्थ्यकर्ता से भी मिले जिसने कुछ अप्रचलित तरीक़े अपनाए जिससे पुरुषों की नसबंदी की संख्या में काफी वृद्धि हुई। वह जब ग्रामीण क्षेत्रों में नसबंदी शिविर आयोजित करता था तो अनेक पुरुष जो पहले नसबंदी के लिए हामी भर लेते थे, निर्धारित तिथि को या तो आते ही नहीं या पहल करने से झिझकते थे। उनकी इस टाल-मटोली से अन्य लोगों के मनोबल पर असर पड़ता था और आए हुए लोग तितर-बितर हो जाते थे। और दूसरे शिविर आयोजकों को काफी शर्मिंदगी उठानी पड़ती थी।

इस समस्या से निपटने के लिए हमारे स्वास्थ्य कार्यकर्ता ने ऐसे कुछ पुरुषों को ऑपरेशन के लिए राजी किया जो नसबंदी में काफी यकीन करते थे। उन लोगों ने सब लोगों के सामने मांग रखी कि सबसे पहले वे ही ऑपरेशन कराएंगे। ऑपरेशन के बाद उनसे इस प्रकार की मुद्रा अपनाने का आग्रह किया जिससे लोगों को लगे कि नसबंदी बहुत सरल प्रक्रिया है और इसमें कोई दर्द नहीं होता। इस प्रकार की सोद्देश्य योजना और स्वास्थ्य कार्यकर्ता द्वारा नसबंदी के लाभों का बखान करना काफी लाभप्रद रहा। अन्य कार्यकर्ताओं की तुलना में उसके नसबंदी के लक्ष्य सरलता से पूरे हुए। नसबंदी कराने के इच्छुक लोगों के भाग जाने पर जहां अधिकांश स्वास्थ्य कार्यकर्ता अपने कंधे उचका दिया करते थे, पीडी (सकारात्मक विपथन) स्वास्थ्य कार्यकर्ता ने एक प्रभावी तरीक़ा खोज निकाला था कि सामाजिक प्रमाण के तौर पर कुछ पुरुषों को अन्य पुरुषों की नज़रों के सामने पेश करो।

यहां महत्वपूर्ण बिंदु यह है कि विवाहित महिला की उपवास की नीति और स्वास्थ्य कार्यकर्ता का सोद्देश्य सामाजिक प्रमाण अपवाद स्वरूप असामान्य तरीक़ों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये विधियां उस समय सामने आईं जब हमने सांख्यिकीय रूप से सर्वथानिक परिणाम खोजने का प्रयास किया। जिसे सकारात्मक विपथन (पीडी) कहा जाता है। साधारण के बीच असाधारण और संभावित के बीच असंभावित की खोज करने वाले अनुसंधानकर्ता, जो शिक्षाप्रद मनोरंजक कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार करने में मदद करते हैं, ऐसे समाधान ढूंढ सकते हैं, जिन पर अधिक ख़र्च नहीं होता और जो अधिक समावेशी, अपनाने योग्य और सांस्कृतिक रूप से उपयुक्त होते हैं। अत: कह सकते हैं कि पीडी की संवेदनशीलता को अपनाने से ईई की पद्धति को दमदार बनाने में मदद मिलती है।

आगे, मैं इस बात पर चर्चा करूंगा कि किस प्रकार लोक प्रसारक परामीडिया (ट्रांसमीडिया) कथाकथन को अपनी रणनीति में शामिल कर हितकारी शिक्षाप्रद मनोरंजन कार्यक्रमों की विश्वसनीयता में और वृद्धि कर सकते हैं।

परामीडिया कथाकथन

डिजिटीकरण में वृद्धि, बढ़ती हुई मोबाइल और वेब कनेक्टिविटी और फेसबुक एवं ट्विटर जैसे सोशल मीडिया के प्रसार से शिक्षाप्रद मनोरंजक कार्यक्रमों की पहुंच और प्रभावशीलता में, परामीडिया कथाकथन प्रणाली के ज़रिये और भी वृद्धि की जा सकती है।

ट्रांसमीडिया अथवा क्रॉस मीडिया कथाकथन, सोच-विचारकर तैयार की गई एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें वाचन के तत्वों को विभिन्न संप्रेषण मंचों पर इस प्रकार इस्तेमाल किया जाता है कि जिससे सुसंगत मनोरंजन का अनुभव हो। प्रत्येक संप्रेषण मंच पर कहानी स्वतंत्र रूप से चलती है परंतु उनका ताना-बाना इस प्रकार आपस में गुंथा होता है कि उसका संदेश अधिक असरकारी होता है। दर्शकों/श्रोताओं का कहानियों, मुद्दों और चरित्रों से जुड़ाव गहरा हो जाता है। परामीडिया कथाकथन डिजिटीकरण, संक्षिप्तीकरण और विभिन्न मीडिया प्रौद्योगिकियों के मेल और दर्शकों/श्रोताओं की सहभागी संस्कृति के बिना संभव नहीं हो सकता था (जेकिंस, 2006)।

परामीडिया कथाकथन के पीछे के सोच, प्रयोग, सह-सृजन और सामूहिक कार्रवाई पर केंद्रित है। एकल मीडिया अभियानों की तुलना में परामीडिया कथाकथन एक निस्सीम, खोजपूर्ण उत्तम उदाहरण है। 'दि मेड्रिक्स फ्रैंचाइज़', जहां एक लंबी कहानी को तीन फ़िल्मों, एनीमेटेड लघु फ़िल्मों की एक शृंखला, दो कॉमिक पुस्तकों के समूह और वीडियो गेम्स के साथ जोड़कर पेश किया गया था। इस प्रकार के बहुमंचीय कथाकथन की शैली दर्शकों/श्रोताओं को कहानी को कहीं से भी देखने और हटने का विकल्प प्रदान करती है।

परामीडिया कथाकथन के पीछे के सोच, प्रयोग, सह-सृजन और सामूहिक कार्रवाई पर केंद्रित है। एकल मीडिया अभियानों की तुलना में परामीडिया कथाकथन एक निस्सीम, खोजपूर्ण उत्तम उदाहरण है। इस प्रकार के बहुमंचीय कथाकथन की शैली दर्शकों/श्रोताओं को कहानी को कहीं से भी देखने और हटने का विकल्प प्रदान करती है।

हाल के वर्षों में परामीडिया कथाकथन के अनेक उदाहरण सामने आए हैं। इनमें, विश्व को परिवर्तित करने वाला 10 सप्ताह का ताबड़तोड़ (क्रैश) पाठ्यक्रम 'इवोक' (urqentevoke.com) शामिल है, जिसमें साप्ताहिक वैश्विक संकट को प्रस्तुत करने के लिए एक चित्रात्मक उपन्यास को एंकरिंग टेक्स्ट के रूप में

इस्तेमाल किया जाता है। इसमें भाग लेने वाले खिलाड़ी भूख, निर्धनता, जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता और स्वच्छ जल की सुलभता जैसी जटिल सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए रचनात्मकता, सहयोग, उद्यमिता और धारणीयता जैसे कौशल सीखने का प्रयस करते हैं। ईवोक ने 2010 में प्रारंभ होने के पहले सप्ताह में ही 120 देशों के 8,000 विद्यार्थियों को आकर्षित किया। प्रत्याशियों से महत्वपूर्ण समस्याओं के निराकरण के लिए नवाचारी (नयी सोच वाले) समाधान मांगे जाते हैं, ब्लॉग और वीडियों के ज़रिये अपनी गतिविधियों की रिपोर्ट देने को कहा जाता है और पाठ्यक्रमों के अंत में वास्तविक दुनिया में किसी कार्रवाई योग्य प्रोजेक्ट में दूसरों के साथ मिलकर काम करने की तैयार किया जाता है। 'ईवोक' को 2010 में 'गेम्स फॉर चेंज' का पहला सोशल इम्पैक्ट गेम का पुरस्कार प्रदान किया गया था।

'ईस्ट लॉस हाई : हितकारी शिक्षाप्रद मनोरंजक परामीडिया कथाकथन परियोजना

'ईस्ट लॉस हाई (ईएलएच) एक हितकारी शिक्षाप्रद मनोरंजक परामीडिया कथाकथन परियोजना है (eastloshigh.com) जो 24 कड़ियों वाली इंटरनेट वेब श्रृंखला (धारावाहिक) के रूप में लैटिन अमरीकी युवाओं को लक्ष्य कर तैयार किया गया है। अमरीका की जनसंख्या में यह तबका काफी तेज़ी से बढ़ रहा है। ईएलएच जून, 2013 के प्रथम सप्ताह से, अमरीका में उपलब्ध वेब आधारित मंच 'हुलू' पर दिखाई दे रहा है। यह मंच लोगों की मांग पर लोकप्रिय टेलीविज़न कार्यक्रमों, फिल्मों, ट्रेलर और पर्दे के पीछे के दृश्यों को दिखाता है और इस पर उसको विज्ञापनदाताओं का सहयोग भी मिलता है। ईएलएच के सभी पात्र लैटिन अमरीकी युवक और युवतियां ही होती हैं। इसकी रूपरेखा सकाराम्क विपथन (पीडी) संवेदनशलता सहित विस्तृत अनुसंधान प्रक्रिया से गुज़रकर तैयार की गई हैं। लैटिन अमरीकी लेखकों की पटकथा वाली ईएलएच की संपूर्ण शूटिंग ईस्ट लॉस एंजेलिस में हुई, जहां कल्पित कहानी की शुरुआत ईस्ट लॉस हाई स्कूल में होती है। तीन वर्ष से तैयार हो रही ईएलएच कैटी एल्मोर मोटा के मस्तिष्क की उपज है। कार्यक्रम की कार्यकारी निर्माता कैटी ने इसके लिए वर्मोंट स्थित अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त संस्था पॉपुलेशन मीडिया सेंटर सहित अमरीका की अनेक ऐसी लब्ध प्रतिष्ठ संस्थाओं और संगठनों के साथ विशिष्ट गठजोड़ बनाया जो युवाओं के क्षेत्र में काम कर रहे हैं। ईएलएच का उद्देश्य प्रजनन संबंधी स्वास्थ्य, कामभावना और जीवन संबंधी निर्णयों पर लैटिन अमरीकी युवाओं को जागरूक, शिक्षित और प्रेरित करने के साथ-साथ उन्हें सकारात्मक व्यावहारिक परिवर्तनों के लिए तैयार करना है। eastloghigh.com का पर्दे का एक दृश्य (शॉट) ईएलएच के परामीडिया विस्तारों, साधनों और उसकी प्रशाखाओं की समृद्धि और विविधताओं की झांकी प्रस्तुत करता है (चित्र-2)।

चित्र 2 : ईस्ट लॉस हाई के परामीडिया कथाकथन विस्तारों की समृद्ध झांकी। दर्शकों की सुविधा के लिए क्लिक करने योग्य 25 लिंक पर्दे पर दिखाई दे रहे हैं।

ईएलएच के 30 मिनट के अंक को देखने के बाद दर्शक का ध्यान ईएलएच की वेबसाइट की ओर ले जाया जाता है जहां वे कार्यक्रम से संबंधित फेसबुक और ट्विटर पर और भी जानकारी ले सकते हैं तथा उसकी टम्बलर साइट पर जाकर ब्लॉग भी लिख सकते हैं। इंस्टाग्राम के ज़रिये चित्र देख सकते हैं और भेज सकते हैं। सबसे निचली पंक्ति में दर्शक ईएलएच के पिछले अंक, शूटिंग के चित्र, ईएलएच का 'साइरन' समाचार-पत्र आदि देख सकते हैं। ईएलएच का एक कलाकार दर्शकों के व्यक्तिगत प्रश्नों का उत्तर भी देता है। अन्य तमाम सुविधाएं भी मौजूद हैं।

इस आलेख के लिखे जाते समय ईएलएच का प्रसारण लगभग एक सप्ताह से चल रहा है। *हाफिंगटन पोस्ट* के अनुसार यह हुलू का सबसे अधिक देखा जाने वाला कार्यक्रम बन गया है। सोशल मीडिया पर दर्शकों की जो चर्चाएं हो रही हैं, उन पर सरसरी नज़र डालने से पता चलता है कि ईएलएच के दर्शक उसके पात्रों को पसंद करते हैं और उनकी समस्याओं, परिस्थितियों आदि के साथ तादाम्य स्थापित करने का प्रयास करते हैं।

ईएलएच परियोजना का कुल मिलाकर मूल्यांकन कैसा रहा, इसकी जानकारी तो कुछ समय बाद ही मिल सकेगी (इस लेख का लेखक बफैलो विश्वविद्यालय की डॉ. हुआ (हेलन) वैंग के साथ मिलकर इसका अध्ययन कर रहे हैं)। परंतु एक बात तो स्पष्ट है कि ईएलएच स्थापित करने में सफल रहा है कि 21वीं शताब्दी में किस प्रकार के कार्यक्रम लोकप्रिय हो सकते हैं एवं कार्यक्रम में और क्या-क्या संभावनाएं हो सकती हैं। इसने सामाजिक एवं व्यावसायिक, सरकारी और निजी और डिजिटल एवं वास्तविक, सभी को एक साथ पिरो दिया है। सरल शब्दों में, 'ईएलएच' ने विषय की व्यापकता और लोकप्रियता, दोनों के लिहाज़ से परामीडिया कथाकथन की रणनीतिक धारणा को एक नयी शुरुआत दी है। यह विभिन्न मंचों पर दर्शकों की सुविधा के अनुसार उनसे मिलने का अवसर देता है। यह अनुसंधान आधारित हितकारी शिक्षाप्रद मनोरंजक कार्यक्रम को ज़मीनी स्तर पर लोगों से जोड़कर एक ऐसा सामाजिक आंदोलन तैयार कर रहा है जहां विचार, हित और अपेक्षाएं एकाकार होती हैं।

ईस्ट लॉस हाई जैसे ज़ोरदार हितकारी शिक्षाप्रद मनोरंजक कार्यक्रम विश्व के लोक प्रसारकों को एक नया रास्ता दिखाते हैं। तेज़ी से बदल रही गतिशीलता और जटिल लोक-प्रसारकों की दुनिया में किसी को केवल इतना पूछने की आवश्यकता है : उत्तर (दिशा) किधर है? ❑

(लेखक टेक्सास विश्वविद्यालय के संप्रेषण विभाग में सामाजिक न्याय पहल के निदेशक हैं और शिक्षाप्रद मनोरंजक संप्रेषण रणनीति में अनुसंधान के मार्गदर्शक हैं।

ई-मेल : arvindsinghal@gmail.com)

Career Launcher News www.careerlauncher.com/civils

CL **Civil Services Aspirants**

CL Civil Services Notice No. 18/2013-14 Dated 07.06.2013

मिथकः सिविल सेवा (प्रारम्भिक) परीक्षा में CSAT एवं सामान्य अध्ययन का महत्त्व बराबर (50-50) है।

वास्तविकताः प्रारम्भिक परीक्षा में CSAT का महत्त्व कम से कम 60 से 65 प्रतिशत है।

कक्षा कार्यक्रम में 200 से अधिक घंटों की तैयारी सम्मिलित है।

124	60	22
से अधिक घंटों का कक्षा कार्यक्रम	से अधिक घंटों की प्रारंभिक परीक्षा टेस्ट सीरीज और विश्लेषण	से अधिक घंटों के मॉड्यूल टेस्ट और पुनरीक्षण अभ्यास

CL के 155 छात्र प्रारम्भिक परीक्षा 2012 में चयनित हुए

CSAT '14 बैच के लिए अपने नजदीकी CL (सिविल सेवा) सेंटर से संपर्क करें।

CL | Civil Services Test Prep

www.careerlauncher.com/civils

CL Civils Centers: Mukheriee Nagar: 204 & 216, 2nd Floor, Virat Bhawan, Opp Post Office, Mukherjee Nagar **Ph:** 41415241/6 | **Old Raiendra Nagar:**18/1,1st Floor, Above Muthoot Finance **Ph:**42375128/9 | **Ber Sarai:** 61B, opp to old JNU campus and Behind Jawahar Book Shop, **Ph:**26566616/17 | **Allahabad:** 09956130010

/CLRocks

YH-87/2013

संस्मरण

सिनेमा के लिए रेडियो

● लीलाधर मंडलोई

मुझे याद है कि सुबह दस बजे शार्टवेव 19 और 25 मीटर बैंड पर उद्घोषणा होती थी– 'ये विविध भारती है– आकाशवाणी का पंचरंगी कार्यक्रम' और समय जैसे थम जाता था।

मेरी मां लोकगीत और भजन गाती थीं। और जीजी को ये दोनों गायन विधाएं विरासत में मिलीं। पिता कबीरपंथी होने की वज़ह से कबीर के भजन विशेष रूप से गाते थे, साथ में अन्य भक्त कवियों में तुलसी, सूर, दादूदयाल और लोककवि ईसुरी उनके प्रिय थे। मैंने भी बचपन से लोकगीत गुनगुनाना शुरू कर दिया था और अनेक धुनें अब भी मन के कोनों से गाहे-बगाहे फूट पड़ती हैं। कह सकते हैं उस ज़माने में गांव में रामायण मंडलियां, लोकगीत गायक-गायिकाओं के समूह ही मनोरंजन के मुख्य साधन थे।

हमारा गांव छिंदवाड़ा कोल्ड फील्ड का इलाक़ा है। मैं गुढ़ी-पालाचौरई में जन्मा। मां और पिता नौकरी की तलाश में पैदल उड़नी विपरिया से चलकर यहां पहुंचे थे। वो ज़माना प्राइव्हेट शॉवेलेस कंपनी का था। बाद में एनएच ओझा कंपनी ने कोयला खदानों को ख़रीद लिया। माता-पिता और बड़े भाई कोयला खदान में दिहाड़ी या फिर सामान्य मज़दूर के रूप में काम में जुट गए। रोज़ी-रोटी का सहारा कोयले की खुदाई, ढुलाई आदि हो गए। ग़रीबी के उन दिनों में हाड़-तोड़ मेहनत के बाद गाना-गुनगुनाना ही मनोरंजन के मुख्य साधन थे।

कोयला खदान के मालिकों ने मज़दूरों को बांधे रखने के लिए और प्रतिरोध से खुद को बचाने के लिए एक फ़ैसला लिया। मोबाइल वैन के ज़रिये फ़िल्म प्रदर्शन। हफ़्ते में एक दिन (रविवार) वैन आती और खुले मैदान में फ़िल्म का प्रदर्शन करती। आस-पास के गांव खाली हो जाते। सांझ होते ही लोग बोरा, चादर आदि लेकर जगह घेर लेते। एक अनूठा माहौल पैदा हो जाता। लोग लड़ते-झगड़ते और जगहों पर क़ब्जा कर लेते। फ़िल्म प्रदर्शन आश्चर्य की तरह जीवन को ढंक लेता।

इस तरह फ़िल्म और फ़िल्मी गाने समाज के अभिन्न हिस्से हो गए। लोग हीरो-होरोइन की छवि में अपने को उकेरने लगे। बच्चे बूढ़े, महिलाएं छिप-छिप कर फ़िल्मी गाने गुनगुनाने लगे। हमारे गांव में एक रामप्रसाद थे। उन अकेले के पास मरफी का ट्रांजिस्टर था। वे उसे नन्हें बच्चे की तरह सीने से लगाए निकलते। हालांकि उन्होंने तब तक शादी न की थी। उनके जीवन में सब कुछ रेडियो था। वे जहां से निकलते हवा में फ़िल्मी गाने गूंजते रहते। वे फ़िल्मों के चलते-फिरते ईसाइक्लोपीडिया बन गए। वे मुझे प्यार करते और ''लीला'' नाम से आवाज़ देते। मैं उनके घर में कभी भी बेधड़क जा सकता था। रेडियो सीलोन और विविध भारती उनके पसंदीदा चैनल थे। फ़िल्मी गायकों, संगीतकारों, निर्देशकों और कलाकारों का परिचय रामप्रसाद एक्टर ने ही करवाया। मैं उन्हें 'चाचा' कहकर संबोधित करता।

उन दिनों सभी की चाहत में एक बात होती– 'काश! हम रेडियो ख़रीद सकते। हमने अमीन सयानी की आवाज़ का जादू बिनाका गीतमाला में सुना और दीवाने हो गए। इस प्रोग्राम को मैंने एक्टर चाचा के घर बिना चूक सुना और नक़ल करते हुए– ''भाइयों ओर बहनों'' के चर्चित जुमले को दोहराने लगा।

एक्टर चाचा ने बताया कि विविध भारती का शुरुआती नाम 'ऑल इंडिया वेराइटी प्रोग्राम' था जिसका तर्जुमा हुआ– 'अखिल भारतीय विविध रंगी कार्यक्रम।' बाद में पं. नरेंद्र शर्मा लेखक-गीतकार ने इसे 'विविध भारती' नाम दिया जो देश की धड़कन बन गया। इसके साथ पंक्ति (टेगलाइन) पंचरंगी कार्यक्रम। पंचरंगी अर्थात पांच कलाओं का समावेश। यह नाम श्रोताओं के ख़्वाबों का हिस्सा हो गया। लोगों ने रेडियो सीलोन और विविध भारती से ही फ़िल्मों को जाना। फ़िल्मों के प्रचार-प्रसार में रेडियो की भूमिका असंदिग्ध और अविश्वसनीय है। अगर रेडियो न होता तो इतनी फ़िल्में न बन पातीं न ही सिनेमाघरों में चल पातीं। लोग पहले फ़िल्मी गानों के दीवाने हुए और उन गानों से बंधे-खिंचे सिनेमाघरों तक पहुंचे।

मुझे याद है कि सुबह दस बजे शार्टवेव 19 और 25 मीटर बैंड पर उद्घोषणा होती थी– 'ये विविध भारती है– आकाशवाणी का पंचरंगी कार्यक्रम' और समय जैसे थम जाता था। शार्टवेब पर बंबई (मुंबई) के अलावा यह कार्यक्रम मद्रास (चेन्नई) से भी शुरू हुआ। विविध भारती चेन्नई से पहली उद्घोषणा तेलगु भाषी उद्घोषिका राजलक्ष्मी ने की। वास्तव में, उस दिन हिंदी का उद्घोषक ड्यूटी पर पहुंच न सका। इस तरह दक्षिण भारत में हिंदी का प्रवेश फ़िल्मी गानों के माध्यम से हुआ। राजलक्ष्मी चेन्नई आकाशवाणी में सात बरस तक विविध भारती की उद्घोषिका रहीं। उन्होंने कहा था– ''फ़िल्मी गानों ने हमें विशाल भारत से न केवल जोड़ा अपितु एकता के सूत्र में बांधा।'' एक्टर चाचा ने यह बताया था कि बंबई केंद्र से विविध भारती पर पहली उद्घोषणा शील वर्मा ने की। उनकी आवाज़ में लयात्मक रवानी थी। बंबई में होने की वज़ह से फ़िल्मी कलाकारों की आवाज़ों को सीधे रेडियो पर सुनकर हम सब रोमांचित हो उठते थे । एक्टर चाचा की स्मृति अद्भुत थी। उन्होंने बताया कि विविध भारती पर पहला गीत मन्नाडे की आवाज़ में 'नाच रे मयूरा' प्रसारित हुआ था। इसके गीतकार पं. नरेंद्र शर्मा थे और संगीतकार अनिल बिस्वास। इसे 'प्रसारगीत' कहा गया। वाह! क्या ख़ूब स्मृति

थी एक्टर चाचा की। एक और बात, चाचा नृत्यगीतों के मुरीद थे और कुक्कू उनकी पसंदीदा नृत्यांगना थीं। मानो वे उस पर निसार थे। लगता था फ़िल्मी गानों और कुक्कू में डूबने की वज़ह से उन्होंने शादी नहीं की।

रेडिया पर कार्यक्रमों के प्रसारणों को पहचानने का आसान शिल्प था उसकी 'सिग्नेचर ट्यून' अर्थात परिचय धुनों को याद रखना। परिचय धुनों से हम 'बिनाका गीतमाला', 'छायागीत', 'गीतोंभरी कहानी', 'जयमाला', 'भूल-बिसरे गीत', 'चित्रध्वनि', 'चित्रमाला', 'साज़ और आवाज़' आदि कार्यक्रम को उसके शुरू होने से पहले ही पहचान लेते और चाचा के पांवों के पास बैठ जाते। हमारी सांसों में इतनी रच-बस गई थीं परिचय धुनें। रेडियो एक बच्चे की तरह उनकी गोद में होता और वे सिर हिलाते, मेज़ पर उंगलियों से ताल देते और गुनगुनाते। कुंदनलाल सहगल को वह खूब गाते। वही उनके आदर्श थे। इसके अलावा नूरजहां, मल्लिका पुखराज, मन्नाडे, शमशाद बेग़म, मो. रफी और लता मंगेशकर को वे इस हद तक सुनते कि गाने के आरंभिक संगीत को सुनकर फ़िल्म और गायक का नाम बता देते।

विविध भारती पर उनका प्रिय कार्यक्रम था फौजी भाइयों के लिए 'विशेष जयमाला' कार्यक्रम। यह कार्यक्रम उन्हें इस क़दर प्यारा था कि उन्होंने अपनी ड्रेस ही फौजी स्टाइल में सिला रखी थीं और अमूमन उसे ही पहनते थे। इस तरह उनकी शिनाख़्त 'एक ड्रेस के हीरो' के रूप में बनी। यह असर था 'जयमाला' कार्यक्रम का। हम उनसे पूछते और वे दुर्लभ जानकारी देते जैसे कि पहला 'विशेष जयमाला' कार्यक्रम नरगिस ने प्रस्तुत किया। जिसे उन्होंने मेरे बड़े भाई के साथ सुना। बड़े भैया राजकपूर और नरगिस के फैन थे उनके गाल पर राजकपूर की तरह निशान था और अपनी सज-धज और चाल-ढाल में राजकपूर की मानो कॉपी थे। पिता सुरैया पर मरते थे। हमारे घर में सिर्फ़ दो तस्वीरें थीं– एक राधाकृष्ण की और एक सुरैया की। मां सुरैया के नाम से चिढ़ती थीं। लेकिन सुरैया की फोटो को पिता के लिए प्रेम से साफ़ करती थीं। फ़िल्मों ने घरों में इस तरह कब्ज़ा किया कि घर की संस्कृति बदलने लगी। फ़िल्मों का प्रभाव जीवन पर छा गया।

मुझे याद आता है कि एक्टर चाचा रेडियो के कारण गांव के 'आइकॉन' बन गए थे। उन्हीं की वज़ह से फौजी भाइयों के लिए 'जयमाला' प्रोग्राम के बहाने हम मशहूर फ़िल्मी हस्तियों जैसे– मीनाकुमारी, सोहराब मोदी, राजकुमार, धर्मेन्द्र, लता मंगशेकर, आशा भोंसले, शंकर–जयकिशन, ओ.पी. नैय्यर, सचिन देव बर्मन, चेतन आनंद, रोशन, मदनमोहन आदि महान कलाकारों का आत्मीय और कला समर्पित मन उनकी सजीव आवाज़ों के माधयम से जान सके। फौजी भाइयों के लिए उनके संदेशों को सुनकर हमारी श्रद्धा फौजी भाइयों के लिए और बढ़ गई। फ़िल्म और फ़िल्मी गाने न होते तो हम देश और उसकी सरहदों को न जान पाते।

उस ज़माने में सिर्फ़ विविध भारती को ही यह सुविधा थी कि वे फ़िल्म प्रोड्यूसर्स की विशेष अनुमति से एक बार प्रसारण के लिए फ़िल्मी गीतों को टेप पर रिकार्ड कर सकें। इन फ़िल्मी गानों को देश के कोने-कोने तक शार्टवेब से पहुंचाने के लिए उन्हें एक ही समय पर अनेक आकाशवाणी केंद्र प्रसारित-अनुप्रसारित करते थे और इस प्रसारण से घरों के चलते हुए काम रुक जाते थे। यात्रा पर निकले लोग रुककर और किसी रेडियो वाले को खोजकर घेर लेते थे। 'बिनाका गीत माला' और 'जयमाला' की वही प्रतिष्ठा थी जो दूसरे और बड़े रूप में 'रामायण' या 'महाभारत' को प्राप्त हुई।

विविध-भारती इतना लोकप्रिय चैनल था कि अलक्षित दबावों के कारण 1958 में इसे दिल्ली में शिफ्ट करना पड़ा। लेकिन फ़िल्मी दुनिया तो बंबई में थी और बॉलीवुड को हासिल करना है तो बंबई ही उपयुक्त जगह थी सो 1972 में विविध भारती पुन: बंबई के हवाले हो गया। इसके पहले 1967 में विज्ञापन प्रसारण सेवा की शुरुआत हुई। पहले कार्यक्रमों के साथ कमर्शियल स्पॉट और जिंगल प्रसारित हुए। बाद में 3 मई, 1970 को दोपहर साढ़े बारह बजे विज्ञापन प्रसारण सेवा पर पहला प्रायोजित कार्यक्रम प्रसारित हुआ 'सेरिडोन के साथी।' इसमें मशहूर फ़िल्मी सितारे अपने साथी कलाकारों के बारे में दिलचस्प बातें, किस्से और प्रसंग साझा करते थे । इस कार्यक्रम की पहली मेहमान थीं– 'सिम्मी ग्रेवाल।' उसी दिन दोपहर 12 बजकर 45 मिनट पर कोहिनूर मिल्स द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम 'कोहिनूर गीत गुंजार' प्रसारित हुआ। इसके कंपीअर थे पं. विनोद शर्मा। विविध भारती पर सबसे लंबे समय तक चलने वाला सुपरहिट कार्यक्रम था– 'सेंटाजन की महफिल।' एक्टर चाचा के इनसाईक्लोपीडिया ने बताया, इस कार्यक्रम से कई नाम जुड़े जो श्रोताओं में मशहूर हुए। वे नाम थे– सईदुल हसन, अजय कश्मीरी, मोना अल्वी, रमेश तिवारी, मुजफ़र क़ादरी, विजय वर्मा और वी. सूरी। इसी कार्यक्रम में उन्होंने टुनटुन और मोहन चोटी को पहली बार सुना। चाचा के फ़िल्मी ज्ञान का ट्रांसफर कब मेरे भीतर हुआ पता नहीं लेकिन भीतरी सतहों पर वह इतना प्रभावी था कि मैं कहीं रेडियो में नौकरी के बारे मे सपने देखने लगा।

विविध भारती पर पहला फ़िल्मी स्पॉट 'कब, क्यूं और कहां' फ़िल्म का था। इसे पेश करते थे संयुक्त रूप से विजय बहल, मधुर भूषण और ब्रजभूषण, प्रायोजित कार्यक्रम 'चेरी ब्लॉजम नोंक-झोंक में।' फ़िल्मी स्पॉट और कार्यक्रम में नोंक-झोंक को दर्शकों ने बेहद पसंद किया। जैसे-जैसे आकाशवाणी के केंद्र देश में बढ़ते गए फ़िल्मी गाने ओर उससे जुड़े कार्यक्रम श्रोताओं तक पहुंचते गए। और फ़िल्मों को बिना प्रमोशन के प्रचार मिलता गया। अगर आकाशवाणी न होती तो फ़िल्म उद्योग का जो विकास हम देख रहे हैं, वह इतना न हुआ होता।

पचास के दशक के बाद आकाशवाणी के जितने केंद्र खुलते गए, फ़िल्मी गानों के अनेक कार्यक्रम शुरू हुए। इस तरह हिंदी फिल्मों के साथ ही क्षेत्रीय सिनेमा को भी बड़ा फ़लक मिला। हर राज्य में अपनी भाषाओं या हिंदी के माध्यम से फ़िल्मी गीत और उन पर आधारित कार्यक्रमों की शुरुआत हुई। जहां कहीं फ़िल्मी सितारे पहुंचते, वे आकाशवाणी के माध्यम से श्रोताओं को संबोधित करते जो अंतत: फ़िल्मों के दर्शकों में तब्दील हो जाते। इन केंद्रों ने शुरुआत में विविध भारती की प्रस्तुति शैली को अपनाया और अपने स्तर पर कुछ और आकर्षक तत्व जोड़ दिए। फरमाईशी फ़िल्मी गानों के कार्यक्रम में चिट्ठियां बोरियों या कई बोरियों में आतीं। जगह-जगह रेडियो फ़िल्मी श्रोता क्लब बन गए। उनकी अपनी पहचान बन गई। कहना न होगा कि विविध भारती पर भेजी जाने वाली फरमाइशें अब क्षेत्रीय

और स्थानीय केंद्रों पर आने लगी। यदि इन चिट्ठियों पर केंद्रित कोई क़िताब निकले तो हर दौर के गानों की लोकप्रियता को आंका जा सकता है। सिर्फ़ इतना ही नहीं इन पत्रों में मार्मिक और रोमांटिक बातें भी मिलती हैं। इस तरह बिना टीआरपी के गानों की उस दौर की लोकप्रियता का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। फ़िल्मी गानों ने लोगों के दुख-सुख में जितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है उसकी कल्पना मुश्किल है।

'जयमाला विशेष' जो हफ्तेभर प्रसारित होता था उसका रविवारीय अंक 'जयमाला संदेश' के नाम से होता था जिसमें फौजी भाई अपनी बातें, संदेश और सलामती की ख़बर अपने पारिवार वालों तक पहुंचाते थे। करगिल युद्ध के दौरान विविध भारती ने जो संदेश प्रसारित किए, उन्हें सुनकर मन श्रद्धा से भर उठता था।

मैं याद करता हूं तो 'एक्टर चाचा' की बातें ही पहले-पहल याद आती हैं। ये और बात है कि मेरी रुचि भी फ़िल्मों में लगातार बढ़ी है और अनेक जानकारियां जुड़ती गईं। और मैं रेडियो के माध्यम से फ़िल्मों के बारे में जानता गया। यानी फ़िल्मों के तमाम पहलू जो कार्यक्रमों से ज़ेहन में पहुंचे जैसे एस. कुमार्स का फ़िल्मी मुक़दमा। आज जो अदालत वाले कार्यक्रम टीवी पर चल रहे हैं उनका फॉर्मेट रेडियो कार्यक्रमों की देन है। फ़िल्मी सितारों से मुलाक़ात का हिट कार्यक्रम 'सेल्युलाइट के सितारे', 'संगीत की हस्तियों' का प्रोग्राम– 'सरगम के सितारे' फ़िल्मी गानों में शास्त्रीय रागों को खोजने वाला कार्यक्रम 'संगीत सरिता' और एक मिश्रित कार्यक्रम सूचना और मनोरंजन का 'पिटारा'। ये सभी कार्यक्रम उस ज़माने से इस ज़माने तक आज भी यादों में बसे हैं और इसीलिए वो तमाम फ़िल्में जिनके गाने हैं और जिन्हें आकाशवाणी पर सुनकर फ़िल्में देखी गईं अब जीवन के साथ हैं।

मैं आकाशवाणी की नौकरी में 1976 में अपनी कलात्मक अभिरुचि के चलते आया और फ़िल्मी गानों के आकर्षण की वज़ह से भी। हालांकि तब मेरी जेब में नौकरी के कई अच्छे ऑफर थे। लेकिन आकाशवाणी में आकर मालूम हुआ कि फ़िल्मी दुनिया से इसका कितना गहरा नाता है। चाहे मीडियम वेब की बात हो या शार्टवेब की या फिर अब एफएम के फ़िल्मी गानों का प्रसारण, रेडियो का वह पहला अनिवार्य तत्व है और ख़ासकर मनोरंजन की दृष्टि से। यही कारण था कि विविध भारती सेवा को आरंभ करने के समय गिरजाकुमार माथुर, पं. नरेंद्र शर्मा, गोपालदास और केशव पंडित जैसे दिग्गज प्रसारकों ने यह परिकल्पना की और परिणाम हुआ कि रेडियो सीलोन को लोग भूलते गए। आज आकाशवाणी के ख़ज़ाने में फ़िल्मी हस्तियों के अनेक इंटरव्यूज़ हैं और रेडियो ऑटोबायोग्राफी जिनमें नौशाद, ओ.पी.नैय्यर, ख़य्याम, कल्याण जी-आनंदजी, माला सिन्हा, वहीदा रहमान, महेंद्र कपूर जैसे सितारे हैं। इन रिकार्डिंग्स को आज भी जब सुनाया जाता है तो पुरानी यादें ताज़ा हो जाती हैं और लोग टीवी या टीवी पर डीवीडी चलाकर फ़िल्में देखते हैं। विविध भारती का नेटवर्क अब बहुत बड़ा है। 100 वॉट के सौ से अधिक ट्रांसमीटर देश में लगे हैं और वहां से विविध भारती सेवा ही चलती है। इस पहुंच में अब सभी प्रमुख ज़िले और सरहद के इलाक़े शामिल हैं। मीडियम वेब सेवा एफएम पर देशभर में उपलब्ध है और मोबाइल पर युवा वर्ग इन्हें सुन रहा है जो पहले रेडियो से दूर था। सो इस तरह रेडिया ने फ़िल्मों को जीवन दान भी बहुत हद तक बख़्शा है।

अब फ़िल्म प्रोड्यूसर्स रेडियो पर फ़िल्मों के प्रचार-प्रसार के लिए पार्टनरशिप करते है। और नि:शुल्क प्रमोशन सामग्री उपलब्ध कराते हैं। पहले रेडियो प्रोड्यूसर्स के पीछे भागता था अब प्रोड्यूसर्स सितारों को लेकर स्टूडियो में लेकर पहुंचते हैं। अब अधिकांश एफएम रेडियो डीटीएच ओर इंटरनेट पर उपलब्ध हैं और उनकी पहुंच विश्वव्यापी हो गई है। रेडियो के कार्यक्रम पड़ोसी देशों जैसे– पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल, बांग्लादेश, भूटान से लेकर मिडिलईस्ट में मनोयोग से सुने जाते हैं। प्रवासी भारतीयों के अलावा एक बड़ा फ़िल्म व्यवसाय आकार ले चुका है जिसमें ऑनलाइन ख़रीद में गानों के अलावा फ़िल्मों का व्यापार चलता है। रेडियो केंद्रो को भी विज्ञापन से ख़ासी कमाई होती है और एफएम केंद्र विशेषकर निजी चैनलों की कमाई का ज़रिया फ़िल्मी गाने ही हैं। अब एफएम केंद्रों से सितारों से बातें होती हैं, फोन इन फरमाइशी कार्यक्रम होते हैं और काउंट डाउन के अलावा 'हिट-सुपरहिट', 'फेवरेट फाइव' जैसे प्रोग्राम हैं साथ ही 'एसएमएस के बहाने बीबीएस के तराने' जैसे चर्चित कार्यक्रम, जो फ़िल्मों को मज़बूत आधार देते हैं।

कह सकते हैं अगर रेडियो का साथ न होता तो सिनेमा के सौ सालों का इतिहास इतना सुनहरा शायद ही होता। पाठकों को यह जिज्ञासा अवश्य होगी कि फ़िल्मों/फ़िल्मी गानों ने फ़िल्मों के विकास में हमसफ़र नहीं बल्कि मार्गदर्शक की भूमिका कैसे निभायी? इसमें दो बातें प्रमुख हैं– पहली यह कि फ़िल्मी गानों में दुख और सुख की गहरी अभिव्यक्ति थी जिसका संबंध आम आदमी के अनुभव और सपनों से था। फ़िल्मों में उसके परिवार, समाज और देश का रूपायन था। उसकी आकांक्षाओं का आईना भी फ़िल्में थीं। गानों में 'करुणा' ऐसा आधार तत्व था जो कंपोजिशन में खासतौर पर रखा जाता था ताकि वह आम आदमी के भावजगत को घेर ले। इसके अलावा उसमें मार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक संदेश होते थे। दूसरी बात थी फ़िल्मी सितारों से जीवंत या रिकार्डेड बात-चीत का प्रसारण जो फ़िल्मी दर्शक पैदा करने और संख्या बढ़ाने का परोक्ष काम करता था। इस तरह की बातचीत में संघर्ष की कहानी, आत्मीय संस्मरण, देशप्रेम की बातें होती थीं। ये प्रसारण दरअसल एक तरफ दर्शकों को आकर्षित करते थे तो दूसरी ओर बॉलीवुड की ग्लैमर्स दुनिया का हिस्सा होने का स्वप्न बुनते थे। दोनों ही फ़िल्मी प्रसारण अंतत: फ़िल्मों के प्रति जिज्ञासा को बढ़ाकर टिकट खिड़की पर पैसा वसूल कर लेते थे।

कहना न होगा कि यह कहानी जितनी सरल, आकर्षक और मनोरंजक लगती है, उतनी है नहीं। अंतर्तहों में वास्तव में फ़िल्मों की मार्केटिंग चल रही होती थी और वह भी सामाजिक, सांस्कृतिक अर्थों, आशयों पर आधारित। इसलिए वह दोनों काम एक साथ करता था यानी ऊपर से सामाजिक सुधार और भीतर से व्यापार । और अब तो खुल्लमखुल्ला व्यापार पहले है साथ में सुधार, जागरण हो जाए तो ठीक अन्यथा– ''नॉट फिकर फ़िल्मी सेठ। ❑

(लेखक आकाशवाणी के महानिदेशक हैं।
ई-मेल : dgair@air.org.in)

लोक प्रसारण क्यों?

● विनोद पवराला

लोक सेवा प्रसारण को प्राथमिक, व्यावसायिक या राजनीतिक कारणों से इस अर्थ में अलग किया जा सकता है क्योंकि इससे आर्थिक या राजनीतिक शक्ति-संपन्न व्यक्ति जुड़े होते हैं। प्रसारण की लोक प्रणाली बीसवीं सदी की दूसरी तिमाही में पश्चिमी यूरोपीय देशों में रेडियो और बाद में टीवी प्रसारण के रूप में लोक हित और लोक रुचियों की प्रतिबद्धता के साथ शुरू हुई। यूरोपीय संसद के एक महत्वपूर्ण मीडिया नीति अभिलेखों से यह स्पष्ट होता है कि लोक सेवा प्रसारण से न सिर्फ़ समाज को सूचना, शिक्षा और मनोरंजन प्रदान करने की अपेक्षाएं जुड़ी थीं, बल्कि यह सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक नागरिकता की वृद्धि में भी सहायक होता था (यूरोपीय संसद, 2010)। इस अर्थ में लोक सेवा प्रसारण को वैश्विक पहुंच, संपादकीय स्वायत्तता और निष्पक्षता के चारित्रिक अर्थ में भी देखा जाता है। इसमें कार्यक्रमों का वैविध्य, उच्च गुणवत्ता और लोक विश्वसनीयता भी जुड़ी है।

यह एक ऐसा प्रसारण है, जिसे विश्व में व्यापारोन्मुखी और लाभकारी मीडिया बनने से अलग रखा गया है (प्राइस और रॉबी, 2011)। और भारत भी इस मामले में अपवाद नहीं है। कई देशों में लोक प्रसारण सेवा के श्रोताओं में 40 साझेदारी तक गिरावट दर्ज़ की गई है (कुछ देशों में प्राइम टाइम के तहत श्रोताओं का 10 शेयर तक)। अमरीका जैसे देशों में व्यापारिक प्रसारण मॉडल के आधिपत्य के बाद इस प्रवृत्ति ने अब मिश्रित प्रसारण सेवा प्रणाली वाले देशों की ओर भी रुख किया है। इस मॉडल में सेलिब्रिटी संस्कृति और प्रलोभनों, जिसमें दर्शकों, श्रोताओं और पाठकों की संख्या का महत्व शामिल है (यूनेस्को, 1996)।

अगर हम आज यह महसूस करते हैं कि भारत में लोक सेवा प्रसारण गंभीर संकट में है, तो इसके पीछे पिछले 75 सालों के दौरान भारतीय प्रसारण के चूके हुए अवसरों की कहानी की मुख्य भूमिका है। ऑस्ट्रेलियाई मीडिया विद्वान रॉबिन जेफ्रे (2006) का विचार है कि सन् 1990 में पास हुए प्रसार भारती विधेयक को ठीक ढंग से लागू करने में देर न हुई होती, तो हमारे पास आकाशवाणी और दूरदर्शन को बीबीसी और अल जजीरा की तर्ज़ पर अंतरराष्ट्रीय प्रसारक के रूप में आकार देने का बेहतरीन अवसर होता। इस निहित प्रवृत्ति और इसे लागू करने की योजनाओं, जिसमें भारत की लोक प्रसारण प्रणाली को ऐतिहासिक बनाया, उस पर चर्चा बाद में की जाएगी।

सामान्य रूप से मीडिया प्रणाली और ख़ास कर लोक सेवा प्रसारण में वैश्वीकरण, उदारीकरण और सन् 1990 के बाद के वैश्वीकरण के बाद व्यापक बदलाव हुआ है (पवराला और कुमार, 2002)। पूंजीवादी वैश्वीकरण के प्रहार ने सांस्कृतिक उद्योगों के केंद्रीकृत स्वामित्व को उत्पादन, वितरण, नियमन के माहौल, वैश्विक बाज़ार तक पहुंच और राजनीतिक क्रियाकलापों को कुछ कॉरपोरेट महारथियों के हाथों में सीमित कर दिया है। प्रसारण क्षेत्र में विनियमन और निजीकरण अधिक देखने में आ रहा है, जो कई देशों में राज्य द्वारा एक गैर-लाभकारी लोक सेवा के रूप में चलाया जाता है। राष्ट्रीय लोक स्वामित्व से वैश्विक निजी स्वामित्व का यह संक्रमण लगभग पूरा हो चुका है (पवराला और मलिक, 2007)। जैसा कि राज्य की भूमिका कम हो गई है, पारदेशिक मीडिया निगमों की घरेलू बाज़ार में सहयोगी उपक्रमों के रूप में राष्ट्रीय मीडिया के अंदर उत्पादन, समाचार निर्माण और मनोरंजन के क्षेत्र चुनने तक में धमक हो गई है। उपग्रह संचार प्रणाली और डिजिटाइजेशन के विकास के इस युग में ये बड़े मीडिया समूह लोक संवाद और चर्चाओं पर भी अपनी पकड़ जमा चुके हैं। विद्वानों में द्वंद्व है कि पारदेशिक उपग्रह मीडिया कुछ हद तक वित्तीय बाज़ार के प्रभावी वैश्वीकरण के भी अंग रहे हैं (कॉलिन्स एटअल, 1988)। यह न सिर्फ़ राष्ट्रीय संप्रभुता और पहचान के लिए ख़तरा हैं, बल्कि इसके साथ चलने वाली नागरिक अवधारणा के लिए भी ख़तरा है (पेज और क्रॉले, 2001)। हम राज्य से संप्रभुता के सुपरनेशनल संस्थाओं की तरफ और उप राष्ट्रीय संस्थाओं की ओर बहते जाने के मूक दर्शक बनकर रह गए हैं (लिपशुत्ज, 1992)।

मीडिया और संचार के वैश्वीकरण का एक सामाजिक प्रभाव यह है कि यह वैश्वीकरण को और भी समर्थ बनाता जा रहा है क्योंकि सूचना और संचार तक़नीक समन्वित वैश्वीकरण को आसान बनाती हैं और मीडिया उद्योग विश्व में सांस्कृतिक प्रभाव का विस्तार करते हुए उपभोक्तावाद और व्यक्तिगत जीवनशैली को प्रोत्साहन दे रहा है। इसके साथ-साथ मीडिया और संचार के व्यापारीकरण का प्रभाव व्यक्तिगत और सामुदायिक पहचान, सांस्कृतिक और भाषाई

विविधता, राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी की क्षमताओं, लोक जीवन में प्रभाव, पब्लिक डोमेन में सूचना और ज्ञान की उपलब्धता और मीडिया का उपयोग विकास, शिक्षा और मानवाधिकारों पर भी पड़ा है (सिओक्रू, 2004)। एक लोकतांत्रिक समाज में मीडिया जिस तरह के गंभीर सामाजिक कार्यों में खुद को लगा सकता था, वह मीडिया की प्रस्तुति के वैश्विक उत्पादीकरण, जो बाज़ार के नियमों से संचालित हैं, उनमें कहीं छुप-सा गया है। इन तथ्यों के आलोक में यह ज़रूरी है कि लोक सेवा प्रसारण को सुरक्षित और प्रोत्साहित किया जाए और एक ऐसे सामुदायिक मीडिया विकल्प की संभावनाएं तलाशी जाएं, जो स्पष्ट रूप से सामाजिक आवश्यकताओं और मानवाधिकारों पर फ़ोकस करें।

मीडिया के वैश्वीकरण से जिस तरह सूचना की स्वतंत्रता प्रभावित हुई है और लोक समाज में सूचना की गुणवत्ता और विविधता के मायने बदले हैं, इससे नागरिक समाज तेज़ी से प्रभावहीन होता जा रहा है। इस स्थिति ने नागरिकों के द्वारा और नागरिकों के लिए सूचनाओं के स्वायत्त प्रवाह पर सवाल खड़े किए हैं, जो नागरिक समाज का आवश्यक तत्व है, 'यदि वह अपने परिमंडल में संगठित रूप से अपने जीवन की स्थिति और प्रकृति को लेकर लोक चर्चा में आगे आना चाहता है' (कैलहॉन, 1994)।

सूचना के विद्वान डेनिस मैकॉले के अनुसार लोक सेवा प्रसारण का विचार आठ सिद्धांतों के इर्द-गिर्द घूमता है। प्रावधानों और अंतरग्रहणों की वैश्विक एकात्मकता, सभी की रुचियों और पसंद के अनुसार उपलब्धता, अल्पसंख्यकों का ध्यान, राष्ट्रीय पहचान और समुदाय पर ध्यान, सरकार और निहित स्वार्थों से प्रसारण को स्वतंत्र रखना, लोक जीवन से कुछ हद तक सीधी फंडिंग की व्यवस्था (सिर्फ़ विज्ञापनदाताओं से नहीं), कार्यक्रमों से प्रतिस्पर्धा का भाव और सिर्फ़ श्रोताओं-दर्शकों के लिए नहीं और प्रसारकों की स्वतंत्रता को प्रोत्साहन (मैकॉले, 1994-126)।

विद्वानों ने इंगित किया है कि लोक सेवा प्रसारण एक या दो मॉडलों में अपरिहार्य है (हिम्मलस्टेन और असलामा, 2002)। पहला, लोक सेवा के आदर्शवादी परिप्रेक्ष्य के अंदर राष्ट्रीय नागरिक मॉडल और लोक चर्चा में थोड़ी कमी करना, क्योंकि इस मॉडल में देश के लोक सेवा प्रसारक व्यावसायिक रूप से सामाजिक स्थायित्व के हित में लोकतांत्रिक गेटकीपर का काम करते हैं और अकसर संचार प्रक्रिया में चुनिंदा कुलीनों का नियंत्रण कायम रहता है। 'धीरे-धीरे कम' करने की अवधारणा के आलोचकों का प्रस्ताव है कि इसकी बजाय एक 'बबल-अप मॉडल' ठीक रहेगा। इस विकल्पीय अवधारण में यह सोच निहित है कि नागरिकों को वैयक्तिक और सामाजिक अनुभवों को बांटने की अधिकतम संभावनाओं को विस्तार मिल सकेगा ओर उन्हें ज्ञान अर्जित करने ओर भागीदारी का अधिकार भी मिलेगा। उन्हें अपने जीवन के बारे में अपनी तरह से बोलने का अवसर मिलेगा। लोगों को अपने जीवन के बारे में, अपने अनुभवों के बारे में लोक संचार माध्यम के द्वारा संवाद करने का अधिकार होना ही चाहिए और वह भी बिना किसी सांस्थानिक हस्तक्षेप और गेटकीपिंग के (प्रेस्टन, 2001)। यह मॉडल लोक पहुंच वाले दूरदर्शन और सामुदायिक रेडियों का प्रतीक बन सकता है।

स्वतंत्र भारत में रेडियो प्रसारण और बाद में दूरदर्शन ने लोक सेवा प्रसारण को एक सांचे में ढाला है।

बहरहाल, प्रसारण के ऊपर राज्य के नियंत्रण के संदर्भ में एडवर्ड हर्मन और नोम चोम्स्की (1998) ने रेखांकित करते हुए इसे एक 'प्रोपेगंडा मॉडल' का नाम दिया, जिसमें मीडिया राज्य और निजी गतिविधियों के विशेष हितों के लिए समर्थन जुटाता है और राज्य और निजी गतिविधियों को आगे बढ़ाने में मशगूल रहता है। इससे मीडिया सरकारी नीतियों और कार्यों का प्रोपेगंडा औज़ार बनकर रह जाता है। भारत में अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के साथ प्रसारण ने पिछले दरवाज़े से होते निजीकरण और व्यावसायीकरण के दबाव को झेला है, जिससे वह मनोरंजन का खाली डब्बा-सा बनकर रह गया है। स्टीफन बर्नार्ड इंगित करते हैं :

जनसंचार मीडिया के व्यावसायीकरण का तर्क़ यह है कि विज्ञापनों का राजस्व कार्यक्रमों के निर्माण पर इस क़दर प्रभावी है कि रोचक और लोकप्रिय कार्यक्रमों की गुंजाइश कम रह जाती है। इससे ऐसे वातावरण का निर्माण होता है कि विज्ञापन के संदेश प्रसारित करने के क्रम में जो कार्यक्रम चल रहे होते हैं, वे अवांछित, चुनौतीरहित और शिथिल बनकर रह जाते हैं (बर्नार्ड, 2000)।

मीडिया का तक़नीक निर्देशित वैश्वीकरण भारत में प्रसारण के क्रम में कुछ भी ख़ास बदलाव नहीं ला पाया है। इसने मीडिया का स्वामित्व कुछ ही पारदेशिक समूह के हाथों में केंद्रित कर रखा है, जिससे सूचना की स्वतंत्रता और विविधता कम हुई है। जैसा कि सांस्कृतिक विविधता आज के समय की मांग है और सूचनाओं की संख्या में बढ़ोतरी से कंटेंट में एकरूपता अब अर्थहीन हो गई है (पवराला और कुमार, 2002)। परिणामस्वरूप लोकतांत्रिक स्थिति के सिमटते जाने से नागरिक समाज कमज़ोर हुआ है, जिससे बाज़ार ने अबाध्य रूप से लोगों के दिमाग पर नियंत्रण स्थापित कर लिया है।

इन शंकाओं को भारत में प्रसारण की स्थिति का परीक्षण करने वाली कई समितियों की रिपोर्ट और पॉलिसी अभिलेखों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अब मैं फिर अभिप्राय और वास्तविकता के बीच की उस खाई की ओर लौटता हूं, जिसका जिक्र मैंने पहले किया था। पूर्व में स्थापित लक्ष्यों और उद्देश्यों के बावजूद प्रसारण को अर्थपूर्ण, विज्ञापन दबावों से रहित और विकास, सामाजिक, सांस्कृतिक, सांप्रदायिक और लोकतांत्रिक दृष्टि से तथ्यपूर्ण बनाने की दिशा में काम काफी कम हुए हैं। इस बात की कोशिश ही नहीं की गई कि मीडिया तक़नीक की मदद से कमज़ोर एवं संवेदनशील तबकों के सशक्तीकरण और उन तक पहुंच स्थापित किया जाए। उदाहरण के लिए आकाशवाणी के 77 स्थानीय रेडियो स्टेशन (एलआरएस) को स्थानीय समस्याओं पर फील्ड आधारित कार्यक्रम तैयार करने, स्थानीय प्रतिभाओं से संबंधित समाचार और विचार करने के लिए बाध्यकारी बनाया गया था। संस्था की वार्षिक रिपोर्ट कहती है– स्थानीय रेडियो को कौन-सी चीज़ अलग करती है, क्योंकि यह ज़मीनी स्तर पर काम करता है। स्थानीय रेडियो के कार्यक्रम ख़ास क्षेत्र के लिए बनाए जाते हैं। वे स्थानीय समुदायों के लिए माउथपीस का काम करने में समर्थ होते हैं (प्रसार भारती, 2002)।

वास्तविकता यह है कि नौकरशाही की तमाम कमियों के साथ ये स्टेशन काम करने

और कार्यक्रम बनाने की शैली में सिर्फ़ बड़े स्टेशनों की कॉपी करते हैं। उनके कर्मी लोकतांत्रिक और भागीदारी तरीक़े से काम करने के अभ्यस्त नहीं बनाए जाते। यहां तक कि अच्छी मंशा वाले लोक प्रसारक निष्क्रिय देखे गए हैं। व्यावसायिक प्रसारणों ने एक गिरावट का माध्यम पुनर्जीवित कर लिया है। लेकिन व्यावसायिक माध्यमों का एजेंडा सिर्फ़ लाभ कमाना होता है, इसलिए वे इस माध्यम से बेहतरी के लिए और सामाजिक बदलाव के लिए संभावनाएं तलाशने की कवायद ही नहीं करते। इस स्थिति ने कई नागरिक समाजों को एक लोकप्रिय और समुदाय आधारित माध्यम के विकल्प के लिए सोचने पर मज़बूर कर दिया है। इस लोकप्रिय मांग के रूप में विभिन्न समूहों द्वारा चलाए जा रहे सामुदायिक रेडियो को देखा जा सकता है, जो वायु तरंग की लोक संपत्ति को साझा करते हैं। लेकिन वृहद मीडिया परिदृश्य में वैश्वीकरण और निजीकरण की नयी चुनौतियों के मद्देनज़र प्रसार भारती के एक लोक प्रसारक के रूप में बढ़ती प्रासंगिकता अहम हो गई है (कुमार, 2003)। लेकिन दूसरी तरफ राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी और इसे लागू करने के गलत तरीक़ों से इसकी कार्यक्षमता पर मारक असर भी पड़ा है। प्रसार भारती की एक लोक सेवा प्रसारक के रूप में भूमिका को पुनर्जीवित करने के उद्देश्यों से एक कोशिश प्रसार भारती पुनरीक्षण समिति के रूप में की गई, जिसने 20 मई, 2000 को एक रिपोर्ट सौंपी। समिति का मानना था कि– किसी भी समाज में ख़ासकर एक बड़े और बढ़ते हुए समाज में लोक सेवा प्रसारक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसे नागरिक समाज का हिस्सा होना चाहिए और स्वतंत्र और सरकार से मुक्त होना चाहिए। 'वस्तुत: इसे समाज का दृढ़ आधार बनना चाहिए और नियमित रूप से अपना लोक दायरा बढ़ाने में सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए। इसे अनौपचारिक वाद-विवाद, वैकल्पिक और विरोधाभासी विचारों को मंच प्रदान करने वाला, मूक को आवाज़ देने वाला और 'भागीदार लोकतंत्र' को वास्तविक अर्थ देने वाला होना चाहिए (सूचना और प्रसारण मंत्रालय, 2000:16)।'

समिति ने दोहराया कि बाज़ार की शक्तियों को लोक प्रसारक के रूप में प्रसार भारती के इन आदर्शों पर हावी नहीं होना चाहिए। राजस्व की उगाही अंतिम लक्ष्य नहीं होना चाहिए और अर्जित राजस्व ही प्रदर्शन के निर्णय का मूलभूत आधार नहीं होना चाहिए। समिति ने प्रसार भारती अधिनियम 1990 में संशोधन के कई प्रस्ताव दिए, ताकि इसे वैश्विक मीडिया तक़नीक के रू-ब-रू लोक सेवा की उच्च गुणवत्ता की सामग्री प्रदान करने के लिए उच्च प्रतिस्पर्द्धी माहौल प्रदान किया जा सके। समिति ने इसके विकेंद्रीकरण की बात दोहराई और इस बात पर ज़ोर दिया कि स्थानीय स्टेशनों को स्थानीय समूहों और स्वैच्छिक संस्थाओं को अपने कार्यक्रमों में शामिल करना चाहिए। समिति ने गंभीर विचार-विमर्श के बाद अपनी अनुशंसाएं इस तरह दीं....

प्रसार भारती के द्वारा स्थानीय रेडियो स्टेशनों की साझेदारी स्थानीय समुदायों और स्वैच्छिक समूहों तक सीमित हो। अब जबकि एफएम रेडियो का निजीकरण हो चुका है, हम आशा करते हैं कि लंबे समय से चली आ रही विरोधाभासी स्थितियां ख़त्म हो जाएंगी। (सूचना और प्रसारण मंत्रालय, 2000:37)।

केबल ऑपरेटरों के आने और भारत में सन् 1991 में हांगकांग स्थित स्टार टीवी के पदार्पण के साथ फिर से प्रसारण बहस शुरू हो गई है। अब प्रसारण की स्थितियां पूरी तरह बदल गई हैं (पवराला और कुमार, 2002)। निजी क्षेत्र की चुनौतियां और स्वायत्तता के मद्देनज़र राज्य अधिकृत मीडिया अब अपरिहार्य हो गया है। इसके साथ ही कई नये सवाल भी खड़े हो गए हैं और सरकार इस स्थिति का समाधान करने में खुद को असमर्थ पा रही है। आखिर उपग्रह संचार और न्यू मीडिया तक़नीक के आक्रमण के मद्देनज़र नियमन प्रणाली का ढांचा क्या होगा? राष्ट्रीय, राजनीतिक उद्देश्यों का भविष्य क्या होगा? कार्यक्रम निर्माण के साथ-साथ वाणिज्य और विज्ञापन दूसरे अपरिचित क्षेत्र बने हुए हैं। इन सवालों और अन्य विकसित होती स्थितियों के साथ कई अन्य गंभीर मुद्दे फिर से खड़े हो गए हैं, जो से अच्छी मंशा के न लागू किए जा रहे प्रसारण के साथ जुड़ गए हैं।

इन चुनौतियों के रू-ब-रू सरकार और तथाकथित स्वायत्त संस्थाएं, प्रसार भारती की नीतियां एक तरह से गड्ड-मड्ड ही दिखाई पड़ती हैं। व्यापारिक मीडिया आउटलेट के विज्ञापन राजस्व की तलाश और लोक प्रसारण में लगातार गिरती सामग्रियों की विविधता के कारण सार्वजनिक क्षेत्र का विरोध और राष्ट्रीय मिशन के रास्तों में रुकावटों के रूप में सामने हैं। समय की ज़रूरत है कि लोक सेवा प्रसारण को कमज़ोर करने के बजाय इसे मज़बूत करने पर ध्यान दिया जाए। इसे पुनर्जीवित करने में 'धीमापन' और 'बबल-अप' दोनों ही मॉडलों को समायोजित किया जाना चाहिए। परंपरागत कार्यक्रमों को बनाते वक़्त इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि इसकी देखरेख एक स्वतंत्र संस्था करे, जो राष्ट्रीय मुद्दों पर लगातार राष्ट्र के लिए राजनीतिक और आर्थिक संकटों के दौरान कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी हो और विविधता के प्रति सहनशील बनाए। इसके साथ ही लोक सेवा प्रसारक को स्थानीय समुदाय संचार को पोषित करने, स्थानीय विचारों को महत्व देने के साथ-साथ स्थानीय समुदायों के सामाजिक और सांस्कृतिक विकास का पालक बनना चाहिए। इस खालीपन को काफ़ी हद तक सामुदायिक रेडियो ने भरने का काम किया है, हालांकि लोक प्रसारक को इस क्षेत्र में उचित भूमिका निभाने की ज़रूरत है।

अंत में मैं बीबीसी का उदाहरण देते हुए अपनी बात ख़त्म करूंगा। बीबीसी का दावा है कि एक लोक प्रसारक सेवा के रूप में इसने लोकतांत्रिक मूल्य, सांस्कृतिक और रचनात्मक मूल्य, शैक्षिक मूल्य और सामाजिक और सामुदायिक मूल्यों को बढ़ावा देकर लोक मूल्यों में अपना योगदान किया है। मीडिया के विस्तार और बहुलीकरण के इस युग में प्रसार भारती सिर्फ़ आधिपत्यकारी संस्थान के रूप में अपना मत थोप नहीं सकता। इसे विविधता की तलाश करते हुए नयी संभावनाओं की तलाश करनी चाहिए। इस मिशन पर विचार करते हुए प्रसार भारती को सिर्फ़ पुराने इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की अच्छाइयों तक ही सिमटे नहीं रहना चाहिए, बल्कि इसे न्यू मीडिया की अंतरक्रियात्मक तक़नीकी संभावनाओं का भी लाभ उठाना चाहिए। ❑

(लेखक हैदराबाद विश्वविद्यालय के संचार विभाग में प्रोफेसर हैं और कम्युनिटी मीडिया पर यूनेस्को चेयर पर आसीन हैं।

ई-मेल : vpavarala@gmail.com)

भारत में सामुदायिक रेडियो की स्थिति और चुनौतियां

● राम भट्ट
सविता बैलूर

यह हमारा सौभाग्य है कि भारत में सामुदायिक रेडियो को समर्थन और प्रोत्साहन देने के लिए पर्याप्त सुरक्षित लोकतांत्रिक व्यवस्था है। 1995 में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी थी कि ''वायु तरंगें जनता की संपत्ति हैं और सार्वजनिक हित के कार्यों के लिए उनका इस्तेमाल अवश्य किया जाना चाहिए।'' बाद में 2003-04 में पहली बार सामुदायिक रेडियो नीति-निर्देश जारी किए गए। इन दिशा-निर्देशों में शैक्षिक संस्थानों को लाइसेंस प्रदान किए जाने का पात्र समझा गया और 2004 से 2006 की अवधि में 104 शैक्षिक संस्थानों को सामुदायिक रेडियो संचालन के लाइसेंस दिए गए। इसकी शुरुआत चेन्नई में अन्ना विश्वविद्यालय से की गई थी। 2006 में दिशा-निर्देशों को संशोधित किया गया और मुनाफ़ा न कमाने वाले संगठनों तथा कृषि केंद्रों (कृषि विज्ञान केंद्रों) को लाइसेंसियों की सूची में शामिल किया गया। किंतु, सामुदायिक रेडियो के महत्व के प्रति जागरुकता पैदा नहीं हो सकी और इसकी क्षमताओं के विस्तार पर प्रतिबंध लगे रहे। इस संक्षिप्त आलेख में हमने भारत में सामुदायिक रेडियो की वर्तमान स्थिति की समीक्षा करने, और इस बात का मूल्यांकन करने का प्रयास किया है कि सामुदायिक रेडियो किस हद तक 'जन-हित को प्रोत्साहित' कर सकता है, और साथ ही इसकी सीमाओं और सरकार की चिंताओं पर भी विचार किया है। इसके बाद नियमन और लागत, और अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में भारत की स्थिति पर इस रूप में विचार किया गया है कि हम क्या सीख सकते हैं और क्या योगदान कर सकते हैं? अंत में हमने भारत में सामुदायिक रेडियो के भविष्य के बारे में अपनी कुछ सिफ़ारिशें भी की हैं।

सामुदायिक रेडियो की वर्तमान स्थिति

अभी तक की स्थिति के अनुसार सूचना और प्रसारण मंत्रालय को नये सामुदायिक रेडियो लगाने के लिए 1200 आवेदन प्राप्त हुए हैं। 655 आवेदनों में से, 428 अभी प्रारंभिक चरण से गुजरे हैं, अर्थात् उन्हें अभी तक लेटर ऑफ इन्टेंट (आशय-पत्र) प्राप्त हुए हैं, 91 आवेदन अंतिम चरण में पहुंच गए हैं और वे प्रसारण के लिए तैयार हैं, यानी उन्होंने सूचना और प्रसारण मंत्रालय के साथ अनुमति प्रदान किए जाने संबंधी समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए हैं, और 148 सामुदायिक रेडियो वास्तव में काम कर रहे हैं। यदि हम प्रचालित स्टेशनों के स्वामित्व का विश्लेषण करें तो पता चलता है कि 148 में से अधिसंख्य (99) केंद्र शैक्षिक संस्थानों, कृषि विज्ञान केंद्रों और राज्य कृषि विश्वविद्यालयों के स्वामित्व में हैं। 49 केंद्र मुनाफ़ा न कमाने वाले संगठनों द्वारा संचालित किए जा रहे हैं। भौगोलिक दृष्टि से देखें तो प्रचालित केंद्र तमिलनाडु, दिल्ली, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में फैले हैं। नक्सल प्रभावित राज्यों जैसे- ओड़िशा, झारखंड और छत्तीसगढ़, विघटनकारी गतिविधियों से प्रभावित राज्यों जैसे पूर्वोत्तर राज्यों और कश्मीर एवं नेपाल, चीन, भूटान, म्यामां और पाकिस्तान की सीमा से लगे राज्यों में अभी तक सामुदायिक रेडियो की उपस्थिति दर्ज़ नहीं हुई है, या कहें कि न के बराबर है।

किंतु हमें इस बात की पड़ताल करने की आवश्यकता है कि 1200 आवेदनों में से 545 रद्द क्यों किए गए हैं। क्या ये आवेदन अधूरे अथवा अपर्याप्त होने, सुरक्षा कारणों से, वित्तीय कारणों से या अन्य घटकों की वजह से निरस्त हुए हैं? इसी प्रकार यह प्रश्न विचारणीय है कि स्वयंसेवी संगठनों की बजाय शैक्षिक संस्थानों को प्राथमिकता क्यों दी जाती है? इस पर भी अनुसंधान किया जाना चाहिए कि कुछ राज्यों में सीआर स्टेशन समूह हैं और अन्य राज्यों में नहीं हैं। इन मुद्दों के समाधान से सरकार और कम्युनिटी रेडियो आंदोलन के बीच सुदृढ़ संबंध कायम हो सकता है और विशेषकर ये केंद्र खोलने के इच्छुक पक्षों के लिए दिशा-निर्देश प्रदान किए जा सकते हैं।

सामुदायिक रेडियो के लाभ

सामुदायिक रेडियो का विकास सिद्धांतों और मूल्यों के एक समूह से होता है, जो इस प्रकार है :

- मुख्यधारा की मीडिया का एक व्यवहार्य और भरोसेमंद विकल्प- समाचारों, सूचना और मनोरंजन के संदर्भ में।
- समुदायों (हित संबंधी और भौगोलिक सीमाओं द्वारा परिभाषित) की भागीदारी सक्षम बनाने वाला एक मंच। भागीदारी के स्तर अलग-अलग हो सकते हैं– किसी कार्यक्रम के लिए आवाज़ उठाने से लेकर प्रबंधन के सभी पहलुओं के बारे में निर्णय करने वाले बनने तक।
- एक ऐसा चैनल जो दैनिक आधार पर भाषाओं और संस्कृतियों को प्रलेखित कर सकता है और सजीव बनाए रख सकता है।
- एक ऐसा साधन जो शिक्षा, आर्थिक और सामाजिक न्याय तक पहुंच कायम करने, लिंग, जाति और वर्ग आधारित हिंसा के ख़िलाफ़ एक माध्यम बनने और शासन में पारदर्शिता लाने में सहायक हो सकता है।
- अल्पसंख्यक समुदायों को वरीयता– लैंगिक, जातीय, धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों सहित।

इनमें से ज्यादातर का संबंध सामुदायिक रेडियो की विषयवस्तु के साथ है। इसके

अतिरिक्त, सामुदायिक रेडियो की प्रक्रिया में भागीदारी के अपने फायदे भी हैं। ये दोनों चीज़ें 'जनहित को प्रोत्साहित' करने में योगदान कर सकती हैं जैसा कि 1995 में उच्चतम न्यायालय ने कहा था। मानव मात्र के नाते यह अभिव्यक्त करना कि हम कौन हैं, एक अनिवार्यता है। प्रौद्योगिकियों के अत्याधुनिक होने के साथ स्वयं को अभिव्यक्त करने की क्षमता– 'संप्रेषण' या 'बोलने' और 'ग्रहण करने' या 'सुनने' में कभी-कभी रुकावट आती है। समृद्ध शहरी आबादी की पहुंच हाईस्पीड ब्रॉड बैंड इंटरनेट कनेक्शन तक है जिससे वह ध्वनि, आलेख, चित्र, वीडियो का इस्तेमाल सूचना सम्प्रेषण और प्राप्ति के लिए कर सकती है। ये विकल्प तंग बस्तियों या ग्रामीण बस्तियों में रहने वालों के पास कम मात्रा में उपलब्ध रहने की संभावना रहती है। बुनियादी सुविधाओं तक पहुंच, टेक्नोलॉजी की लागत वहन करने की क्षमता, सीखने की कठिनाइयां, साक्षरता की बाधाएं आदि कुछ ऐसे घटक हैं जो अभिव्यक्ति और एक-दूसरे के साथ विचार-विमर्श की हमारी क्षमता में रुकावट डालते हैं।

कुछ लोग इसे अभिव्यक्ति के अभाव, एजेंसी के अभाव या अधिकारिता के अभाव की संज्ञा देते हैं। आप इसे कुछ भी कहें, सामुदायिक रेडियो निरक्षरों के लिए भी एक मंच बन सकता है जहां वे आसानी से अपने को व्यक्त कर सकते हैं, क्षमतापूर्वक आत्म विश्वास बहाल कर सकते हैं। विभिन्न मुद्दों पर वार्तालाप में हिस्सा ले सकते हैं और इसका इस्तेमाल स्पष्टीकरण और विचार-विमर्श के दो तरफा मंच के रूप में करते हुए पारदर्शिता को बढ़ावा दे सकते हैं।

'विकास' एक भारी-भरकम शब्द है। इस शब्द का अर्थ पिछले वर्षों में बदलता रहा है, फिर भी आज के संदर्भ में विकास की व्यापक रूप में स्वीकार्य धारणा के अनुसार यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने जीवन पर, विशेषकर आय, स्वास्थ्य और साक्षरता के संदर्भ में नियंत्रण रख सकें सामुदायिक रेडियो में यह क्षमता निहित है। यह न केवल पहुंच के संदर्भ में उपयोगी है, स्थानीकृत है, भरोसेमंद माध्यमों द्वारा संदर्भित सूचना (जैसे- स्वास्थ्य, कृषि, पोषण) प्रदान करता है, बल्कि कौशल एवं क्षमता निर्माण (रेडियो प्रोडक्शन, आईटी कौशल, प्रशासन, प्रबंधन आदि) की दृष्टि से भी उपयोगी है। दीर्घावधि आत्मनिर्भरता के लक्ष्य के साथ, सामुदायिक रेडियो नरेगा जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से रोज़गार के अवसरों का स्रोत भी बन सकता है। अंततः, इस आलेख की लेखिका द्वारा कर्नाटक में नम्मा धवनी सामुदायिक रेडियो पर किए गए पीएचडी संबंधी क्षेत्र कार्य से पता चला कि इसके सबसे बड़े फायदों में से एक यह था कि महिलाओं को सार्वजनिक रूप में आत्मविश्वास के साथ बोलने और कार्यस्थल पर संलग्न करने में सामुदायिक रेडियो एक उपयोगी माध्यम बन कर उभरा। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामुदायिक रेडियो के लाभ असीमित हैं। लेकिन हम यह भी समझते हैं कि कुछ चिंताएं हैं जिनका समाधान किया जाना है।

सीमाएं

यह स्पष्ट है कि भारत में सामुदायिक रेडियो को वे सभी लाभ हासिल करने के लिए अभी बहुत कुछ करना है, जो दक्षिण एशिया क्षेत्र में उठाए जा रहे हैं। यदि 1,200 आवेदनों में से केवल 148 केंद्र प्रचालित हो पाए हैं तो निश्चित रूप से कुछ रुकावटें हैं जिन्हें दूर किया जाना चाहिए। सामुदायिक रेडियो की क्षमता से संबंधित कुछ सीमाएं विशुद्ध रूप से नौकरशाही से संबंधित हैं। हमें विश्वास है कि भारत में समूचे प्रशासन में व्याप्त प्रक्रियागत कठिनाइयों को दूर करके सामुदायिक रेडियो की स्थापना को अधिक आसान बनाया जा सकता है।

पहली कठिनाई यह है कि संविधान की केंद्रीय सूची के अनुसार वर्तमान में संचार पूरी तरह केंद्रीकृत रूप में नियंत्रित है। इसका असर सामुदायिक रेडियो लाइसेंस पर पड़ता है, क्योंकि इस क्षेत्र का समूचा प्रशासन और प्रबंधन सूचना और प्रसारण मंत्रालय तथा संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय के पास है। यह स्पष्ट रूप से दिल्ली से दूर देश के विभिन्न भागों में प्रचालन करने वाले लाइसेंसियों के लिए असुविधाजनक है।

दूसरे, सामुदायिक रेडियो में प्रशासनिक और तक़नीकी दोनों तरह के घटक होते हैं। विभिन्न मंत्रालयों द्वारा आवश्यक उपायों को देखते हुए वर्तमान लाइसेंसिंग व्यवस्था लंबी और नौकरशाहीपूर्ण हो सकती है। आशय-पत्र सूचना और प्रसारण मंत्रालय द्वारा दिया जाता है जबकि फ्रीक्वेंसी का आवंटन संचार और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय द्वारा दिया जाता है। इसी प्रकार अनुमति समझौता सूचना और प्रसारण मंत्रालय द्वारा मंजूर किया जाता है और फिर वायरलेस ऑपरेटिंग लाइसेंस संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय द्वारा दिया जाता है। इसके अतिरिक्त गृह मंत्रालय, रक्षा मंत्रालय, अंतरिक्ष मंत्रालय, विधि मंत्रालय आदि की भागीदारी के कारण आवेदनों को निपटाने की प्रक्रिया में और भी विलंब होता है।

तीसरे, सामुदायिक रेडियो नीति निर्देशों में कहा गया है कि ''विकासात्मक, कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, पर्यावरण, सामाजिक कल्याण, सामुदायिक विकास और सांकृतिक कार्यक्रमों पर बल दिया जाना चाहिए।'' यह जानकारी निश्चित रूप से उपयोगी है बशर्ते स्थानीकृत हो, संदर्भ सापेक्ष हो और उसे भागीदारीपूर्ण ढंग से तैयार किया गया हो। इसके अतिरिक्त 50 प्रतिशत सामुदायिक सामग्री की शर्त स्वागत योग्य है लेकिन इसे स्पष्ट किए जाने की आवश्यकता है। इसी प्रकार समाचारों और सम-सामयिक कार्यक्रमों के प्रसारण की सामुदायिक रेडियो की सीमा भी इसके महत्व को सीमित करती है।

चौथे, शैक्षिक संस्थानों ने सामुदायिक रेडियो की शुरुआत 2003-04 में कर दी थी जबकि फ्रीक्वेंसियों के संदर्भ में नीति दिशानिर्देश और शहर अब संतृप्त हो चुके हैं। स्पैक्ट्रम के अभाव के पीछे तीन कारण प्रमुख हैं। दूरसंचार विभाग ने 2005-06 में अनौपचारिक रूप से घोषणा की थी कि एक निर्दिष्ट स्थान पर कुल छह फ्रीक्वेंसियां सामुदायिक रेडियो के लिए आरक्षित की जाएंगी। पिछले वर्षों में सामुदायिक रेडियो के लिए केवल तीन फ्रीक्वेंसियां औपचारिक रूप में आरक्षित की गई हैं। सामुदायिक रेडियो के लिए एफएम फ्रीक्वेंसियों के आरक्षण में पारदर्शिता की स्थिति में सुधार की आवश्यकता है। दूसरे चैनल स्पेसिंग के बारे में स्पष्टता का अभाव है। भारत में नियम यह है कि चैनल स्पेसिंग 800 किलोहट्र्स की होनी चाहिए, जिसका अर्थ है कि यदि किसी रेडियो स्टेशन को 90.4 मेगाहट्र्स की फ्रीक्वेंसी आवंटित की गई हो, तो अगली उपलब्ध फ्रीक्वेंसी 91.2 मेगाहट्र्स होगी। इससे एफएम बैंड (88-108 मेगाहट्र्स) पर उपलब्ध स्थान सीमित हो

जाता है। अध्ययनों से पता चला है कि 200 किलोहट्र्स की चैनल स्पेसिंग को उपकरणों पर अधिकाधिक अपनाया जा सकता है। अत: 400 किलोहट्र्स चैनल स्पेसिंग अपनाने का सुरक्षित निर्णय भी एफएम स्पेक्ट्रम को काफी मुक्त कर सकता है। तीसरा और अंतिम कारण लाइसेंस एरिया दिशानिर्देशों से संबद्ध है। हमें औपचारिक सामुदायिक रेडियो दिशा निर्देशों पर काम करने की आवश्यकता है। यह अनौपचारिक रूप में ज्ञात है कि यदि कोई फ्रीक्वेंसी निर्दिष्ट स्थान पर आवंटित की जाती है तो वह विशेष फ्रीक्वेंसी 100 किमी के दायरे में (अन्य के लिए) ब्लॉक (अवरुद्ध) हो जाती है। समझा जाता है कि इस नियम को अब ग्रामीण क्षेत्रों में 50 किमी और अर्द्ध शहरी क्षेत्रों में 30 किमी और शहरी क्षेत्रों में 20 किमी तक छूट दे दी गई है। फिर भी शहरी, अर्द्ध शहरी और ग्रामीण क्षेत्र के बीच भेद-भाव और ये आंकड़े तय करने का आधार अभी तक स्पष्ट नहीं किया गया है।

पांचवें, सामुदायिक रेडियो को मनरेगा या अन्य सामाजिक कल्याण उपायों के स्तर पर प्रोत्साहित नहीं किया गया है। यह एक स्वर्णिम अवसर है क्योंकि ऊपर वर्णित अनुसार सामुदायिक रेडियो की संभावनाएं असीमित हैं और वास्तव में वह मनरेगा के अनुरूप या सीएससी (यानी संयुक्त सेवा केंद्रों) के अनुरूप काम कर सकता है। सार्वजनिक और निजी प्रसारणकर्ताओं और अख़बारों (छोटे और क्षेत्रीय मीडिया केंद्रों सहित) के माध्यम से सामुदायिक रेडियो को बढ़ावा देने की तत्काल आवश्यकता है।

हम भलीभांति समझते हैं कि सबसे बड़ी आशंका और सामुदायिक रेडियो के सीमित रहने के सबसे बड़े कारण सुरक्षा संबंधी हैं। 2010-11 में झारखंड राज्य से 11 आवेदन प्राप्त हुए। सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने सिद्धांत रूप में इन आवेदनों का अनुमोदन कर दिया था (अर्थात् जांच समिति ने मंज़ूरी दे दी थी), लेकिन ये आवेदन अंतर मंत्रालयी समिति के स्तर पर रद्द कर दिए गए, जहां गुप्तचर ब्यूरो के अधिकारियों ने इन क्षेत्रों में आतंकवाद का हवाला दिया। इसी प्रकार कश्मीर, मणिपुर, छत्तीसगढ़ आदि से प्राप्त हुए आवेदनों को व्यापक सुरक्षा कारणों से रद्द किए जाने उदाहरण मिले हैं। ये सरोकार गंभीर हैं, लेकिन फिर भी इन चिंताओं को कम किया जा सकता है, जैसा कि मैक्सिको और श्रीलंका (जिस पर भाग-7 में अलग से विचार किया गया है) में किया गया है। भारत सरकार संवेदनशील क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाओं में अधिकाधिक निवेश कर रही है। 2011 के अंत में केंद्रीय मंत्री जयराम रमेश ने घोषणा की थी कि सरकार नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में दूरसंचार टॉवर स्थापित करेगी। उन्होंने कहा था कि ''इन जिलों में एक मात्र सबसे बड़ी समस्या कनेक्टिविटी यानी संचार सुविधाओं की है। हम स्वीकार करते हैं कि इन मामलों में सुरक्षा संबंधी सरोकार कोई मामूली नहीं हैं और प्रस्तावित केंद्रों पर नियमित रूप से निगरानी रखनी होगी, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि इन क्षेत्रों को अलग-थलग रखा जाना चाहिए।

नियमन

भारत में सामुदायिक रेडियो क्षेत्र 'दिशा-निर्देशों' द्वारा संचालित है, जिन्हें कैबिनेट स्तर पर अनुमोदित किया जा सकता है, संसदीय अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होती। यह प्रावधान लाभप्रद रहा है क्योंकि 2003-04 में जारी किए गए प्रारंभिक दिशा-निर्देशों में उचित और अपेक्षाकृत सुधार शीघ्रता के साथ किए जा सके और संशोधित दिशा-निर्देश जारी करने में दो वर्ष का समय लगा। मंत्रालय वर्तमान में नीति दिशा-निर्देशों की फिर से समीक्षा कर रहा है। दूसरी तरफ, इसका यह अर्थ है कि नीति दिशा-निर्देशों की जांच संसद में पेश किए गए औपचारिक विधेयकों के साथ नहीं की गई है। इस बारे में बहुत कुछ विचार किया जाना है, जैसे स्वयं सेवी संगठनों, परिसरों, कृषि विज्ञान केंद्रों और राज्य कृषि विश्वविद्यालयों के लिए पात्रता के बारे में उचित और स्पष्ट निर्देश जारी करना (तक़नीकी मुद्दे जैसे 100 वॉट ईआरपी और एंटीना की 30 मीटर की ऊंचाई (50 प्रतिशत कार्यक्रम स्थानीय भाषा/बोली में स्थानीय आधार पर तैयार करने की शर्त, कार्यक्रमों का विकासात्मक होना और समाचारों के प्रसारण पर प्रतिबंध)।

विकास के संदर्भ में प्रारंभिक जांच के अलावा, हमारा सुझाव है कि या तो सरकार को अथवा उसके प्रतिनिधि एजेंट को निरंतर और सतत निगरानी एवं मूल्यांकन का आयोजन करना चाहिए, भागीदारी में सुधार के महत्वपूर्ण क्षेत्रों की पहचान करनी चाहिए। समस्यापरक समझी गई विषयवस्तु पर ध्यान देने और रखरखाव संबंधी उपाय किए जाने चाहिए। इस बात का भी मूल्यांकन करने की आवश्यकता है कि रेडियो केंद्र कम से कम 50 प्रतिशत स्थानीय सामग्री के नियम का पालन कर रहे हैं या नहीं? यह कार्य या तो शिकायतों के आधार पर किया जा सकता है जिसमें परवर्ती सुधार किए जा सकते हैं अथवा समय-समय पर जांच के ज़रिये निवारक उपाय किए जा सकते हैं। सभी सामुदायिक रेडियो केंद्रों को 5 वर्ष की अवधि के लिए सूचना और प्रसारण मंत्रालय के साथ अनुमति समझौता मंजूरी पर हस्ताक्षर करने होते हैं। वर्तमान में लाइसेंस का नवीकरण स्वत: किया जाता है बशर्ते आवेदक स्पेक्ट्रम शुल्क अदा करे और प्रशासनिक औपचारिकताएं पूरी करे। इस बात की जांच करने के लिए मूल्यांकन किया जा सकता है कि किसी लाइसेंसी संस्थान ने 5 वर्ष की अवधि के लिए स्पैक्ट्रम का भलीभांति इस्तेमाल किया है या नहीं और उसका नवीकरण किया जाए या फिर उस स्थान पर कुछ और प्रतिभाशाली उम्मीदवार हैं या नहीं। ये सभी मूल्यांकन कौन करे, यह प्रश्न बड़ा महत्वपूर्ण है। आदर्श स्थिति यह होगी कि सूचना और प्रसारण मंत्रालय स्व-नियमन एजेंसियों को प्रेरित और प्रोत्साहित करे जैसे कम्युनिटी रेडियो एसोसिएशन ऑफ इंडिया और कम्युनिटी रेडियो फोरम ऑफ इंडिया, इससे लागत भी कम आएगी।

लागत

सामुदायिक रेडियो में दो पहलू होते हैं– पहला, अनुमति समझौते की मंजूरी, जो 5 वर्ष के लिए वैध होती है। इसके लिए प्रत्यक्ष कोई लागत नहीं है, सिवाय एक बारगी 25 हज़ार रुपये की बैंक गारंटी के। अन्य पहलू वायरलेस ऑपरेटिंग लाइसेंस है, जो संचार और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय की डब्ल्यूपीसी यानी वायरलेस ऑपरेटिंग कमेटी द्वारा किया जाता है, जिसका मूल्य एक वर्ष में मोटे तौर पर 20 हज़ार रुपये होता है।

2012 के शुरू में डब्ल्यूपीसी ने स्पैक्ट्रम के सभी प्रादेशिक इस्तेमालकर्ताओं के लिए एक फार्मूले के आधार पर स्पैक्ट्रम शुल्क में बढ़ोतरी की घोषणा की। इसका अर्थ यह था कि ट्रांसमीटर की शक्ति और एंटीना की ऊंचाई के आधार पर स्पैक्ट्रम का शुल्क बढ़ाया जाए। इससे समुदायों, प्राइवेट ऑपरेटरों और प्रसार

भारती द्वारा संचालित सभी एफएम स्टेशनों पर असर पड़ा। किंतु इनमें शायद सामुदायिक रेडियो एक मात्र क्षेत्र है जो शुल्क में बढ़ोतरी को सहन नहीं कर सकता जो 19 हज़ार रुपये से बढ़ा कर 91 हज़ार रुपये किया गया था। बाद में मीडिया द्वारा ध्यान दिलाने, विरोध प्रदर्शित किए जाने और परामर्श को देखते हुए केंद्रीय मंत्री कपिल सिब्बल ने 2012 के अंत में घोषणा की कि स्पैक्ट्रम शुल्क फिर से 19 हज़ार किया जाएगा जो फिलहाल सितंबर 2013 तक लागू है।

प्राइवेट एफएम स्टेशन लाइसेंस के लिए बोली की नीलामी प्रक्रिया से गुज़रते हैं। फिर भी उन्हें स्पैक्ट्रम के लिए नियत लागत अदा करनी होती है। किंतु, सामुदायिक रेडियो के लिए स्पैक्ट्रम शुल्क के विवाद से यह प्रश्न उठता है कि सामुदायिक रेडियो के लिए लाइसेंस और/या फ्रीक्वेंसी कितनी उचित है, विशेषकर शहरी क्षेत्रों में जहां लाइसेंसों और फ्रीक्वेंसियों की मांग आपूर्ति से कहीं अधिक है। यह उल्लेखनीय है कि संचार और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री कपिल सिब्बल ने कहा है कि शुल्क बढ़ोतरी में छूट की लागत 25 लाख रुपये से अधिक नहीं होगी और इसकी तुलना यदि अधिकारिता, सूचना और स्थानीय समुदायों के समावेशन के संदर्भ में करें तो यह उचित है।

अंतर्राष्ट्रीय अनुभव : हम क्या योगदान कर सकते हैं और क्या सीख सकते हैं?

दक्षिण पूर्व एशिया में सामुदायिक रेडियो के संदर्भ में भारत कुछ हद तक अग्रणी भूमिका अदा कर रहा है। भारत दक्षिण पूर्व एशिया के उन देशों में से एक है जिन्होंने प्रसारण के क्षेत्र में तृतीय स्तर को स्पष्ट रूप से अपनाने में पहल की है। स्पष्ट दिशा-निर्देशों और विनियमों के साथ भारत इस स्थिति में है कि नेपाल, श्रीलंका, भूटान, पाकिस्तान, मालदीव और म्यामांर जैसे देशों को परामर्श दे सकता है। किंतु, यूरोप, उत्तर अमरीका, लैटिन अमरीका और ऑस्ट्रेलिया के सामुदायिक रेडियो की तुलना में हमें अभी बहुत कुछ सीखना होगा, उदाहरण के लिए :

- अनेक देश अपने स्पैक्ट्रम का एक निश्चित हिस्सा सामुदायिक रेडियो के लिए आरक्षित करते हैं ताकि उसे स्पैक्ट्रम तक समान पहुंच प्रदान की जा सके, जो एक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय संसाधन है। इन देशों में प्रमुख हैं : कोलंबिया, दक्षिण अफ्रीका गणराज्य और उरुग्वे।
- भारत में प्रेस को भारतीय प्रेस आयोग द्वारा नियंत्रित किया जाता है, लोक प्रसारण का नियंत्रण प्रसार भारती के पास है और ऐसी ही अन्य व्यवस्थाएं हैं। इसी प्रकार सामुदायिक रेडियो के लिए भी एक स्वतंत्र नियामक वांछनीय है जो तत्संबंधी लाइसेंसों का नियमन, अनुमोदन और नवीकरण कर सके या ज़रूरत पड़ने पर किसी लाइसेंस को रद्द कर सके। इस प्रयोजन के लिए भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण एक उपयुक्त मंच हो सकता है, ठीक उसी तरह जैसे अमरीका में एफसीसी स्थानीय रेडियो को और ब्रिटेन में आफकोम कम्युनिटी रेडियो को नियमित करता है।
- जर्मनी में प्रत्येक राज्य/प्रांत को अपने अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत प्रसारण लाइसेंस जारी करने का अधिकार है। सामुदायिक रेडियो चूंकि अत्यन्त स्थानीकृत है, इसलिए भारत में भी इस तरह का विकेंद्रीकरण वांछनीय है। निश्चित रूप से फ्रीक्वेंसी आवंटन ऐसा मामला है जो राष्ट्रीय स्तर पर नियंत्रित किया जाना चाहिए, जिसका समाधान करना होगा और इस बात की भी व्यवस्था करनी होगी कि स्थानीय नेता सामुदायिक रेडियो का राजनीतिकरण न कर पाएं।
- इसी प्रकार निर्बंध चैनल स्पेसिंग नीति का भी कोई अर्थ नहीं है और इस संदर्भ में भी हमें अमरीकी नीति का अनुकरण करना होगा, जिसके अनुसार यदि कोई आवेदक यह प्रदर्शित करें कि वह अन्य केंद्रों में हस्तक्षेप किए बिना एक निर्दिष्ट स्थान पर रेडियो स्टेशन को 'समय दे सकता है' तो उसे उसका लाइसेंस दे देना चाहिए। शहरी क्षेत्रों में एफएम का विकास बनाए रखने के लिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण है, जहां फ्रीक्वेंसियों की मांग उनकी आपूर्ति से अधिक है।
- कनाडा, आयरलैंड और ऑस्ट्रेलिया सहित पश्चिम के कई देशों मे निधियों के एक पूल की व्यवस्था है जो या तो नागरिकों के कर राजस्व से की गई है या फिर वाणिज्यिक प्रसारणकर्ताओं से वसूल की गई दायित्व निधि से की गई है। कुछ ऐसी निधि योजनाएं हैं जो नये स्टेशनों के लिए बुनियादी धन का काम करती हैं, जबकि कुछ अन्य योजनाएं प्रोग्रामिंग, अल्पसंख्यकों के विकास, विविधता आदि में सहायता करती हैं। भारत सामुदायिक रेडियो सहायता कार्यक्रम के विकास की प्रक्रिया में है, ऐसे में समूचे कार्यक्रम के नियमन की आवश्यकता है, जैसा कि वर्तमान में सूचना और प्रसारण मंत्रालय के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत किया जा रहा है, और इसके लिए धन सीधे सरकार द्वारा या तो योजना आयोग के माध्यम से या फिर केंद्रीय बजट के ज़रिये उपलब्ध कराया जाएगा। इससे एक बार फिर से राजनीतिकरण को बढ़ावा मिल सकता है। हमें इस संदर्भ में कनाडा, आयरलैंड और ऑस्ट्रेलिया की ओर देखना चाहिए कि उन्होंने कैसे धन की व्यवस्था की है।

निष्कर्ष

'विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र' के रूप में भारत की अक्सर सराहना की जाती है। मीडिया की विविधता एक ऐसा पहलू है जिस पर गर्व करना हमारे लिए उचित है। एक हद तक सामुदायिक रेडियो का प्रसार प्रेरणादायक है और अनेक दूसरे देशों की तरह भारत के लिए भी यह एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम है। दूसरी तरफ हमारा यह मानना है कि भारत में सामुदायिक रेडियो क्षेत्र की पूरी संभावनाओं का लाभ अभी नहीं उठाया जा सका है, इसका प्रमुख कारण वर्तमान प्रक्रियाएं और सुरक्षा सरोकार हैं। सुरक्षा चिंताओं को मामूली समझ कर उनकी अनदेखी नहीं की जा सकती फिर भी हमारा यह मानना है कि प्रक्रियाओं को आसान बनाया जा सकता है और सुरक्षा चिंताओं को कम करने के उपास किए जा सकते हैं, और संभवत: जब तक हम ऐसा नहीं कर पाएंगे तब तक सामुदायिक रेडियो का प्रसार एक यक्ष प्रश्न बना रहेगा। देश के आकार, आबादी की विशालता, सामाजिक, आर्थिक, भाषाई और सांस्कृतिक विविधता को देखते हुए भारत में लाखों सामुदायिक रेडियो स्थापित किए जा सकते हैं जो हमारी बहु-सामाजिकता और विविधता को सही अर्थो में अभिव्यक्त कर सकते हैं। ❑

(राम भट्ट कम्युनिटी रेडियो फोरम ऑफ इंडिया के उपाध्यक्ष हैं। सविता बैलूर वर्ल्ड बैंक इंस्टीट्यूट में वरिष्ठ अनुसंधानकर्ता और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में रिसर्च एसोसिएट हैं।

ई-मेल : ram@maraa.in, s.bailur@lse.ac.uk)

सार्वजनिक प्रसारण के पुनरुत्थान से जुड़े अंतर्राष्ट्रीय सबक

● दया किशन थुस्सु

वैश्वीकरण के इस दौर में दुनियाभर में सार्वजनिक प्रसारण सेवाओं के स्वरूप में भारी परिवर्तन आया है। लचीली व्यवस्थाओं और डिजिटलाइजेशन को इसका मुख्य कारण माना जाता है। इस बदलाव की शुरुआत 90 के दशक में शुरू होती है। पिछले एक दशक के दौरान प्रसारण क्षेत्र के निजीकरण के फलस्वरूप दृश्य-श्रव्य माध्यमों का चेहरा-मोहरा पूरी तरह बदल गया है। टेलीविजन और इंटरनेट के विस्तार और ब्रॉडबैंड की सहज उपलब्धता से लोगों के लिए जानकारियों और मनोरंजक कार्यक्रमों से रुबरू होने का रास्ते खुल गए हैं। आधुनिक प्रसारण माध्यमों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कनाडा के जनसंचार विशेषज्ञ मार्शल मैकलुहन ने 60 के दशक में जिस वैश्विक ग्राम की परिकल्पना की थी, वह आज साकार होती नज़र आती है। वैश्वीकरण और संचार माध्यमों के डिजिटलाइजेशन ने दुनियाभर के लोगों को दुनियाभर में घटित होने वाले वास्तविक घटनाक्रमों, प्राकृतिक आपदाओं, संघर्ष एवं टकरावों और खेलकूद जुड़ी तमाम ज्ञानवर्धक जानकारियों के दरवाज़े खोल दिए हैं। इतिहास के झरोखे में देखें तो प्रसारणकर्ताओं को एक राष्ट्रीय संस्था के तौर पर देखा जाता रहा है। रेडियो और टेलीविजन को अखंडता और सांस्कृतिक पहचान के संदर्भ में लोगों को शिक्षित एवं जागरूक करने का राष्ट्रीय माध्यम माना जाता रहा है। साम्यवादी देशों में तो मीडिया प्रसारण को राज्य के प्रचार तंत्र का वैधानिक अंग के तौर पर देखा जाता रहा है। वहीं दूसरी ओर विकासशील देशों में प्रसारण माध्यम सत्ता में बैठे प्रभावशाली लोगों के हाथों की कठपुतली बने रहे और इन माध्यमों का उपयोग ऐसे लोग तंत्र पर अपनी पकड़ बनाए रखने के लिए करते रहे। संयुक्त राज्य अमरीका जैसे विकसित देशों की बात छोड़ दें तो वैश्वीकरण से पहले विभिन्न देशों के टेलीविजन नेटवर्क उपभोक्ताओं की बजाय अपने नागरिकों को ध्यान में रखकर कार्यक्रमों का प्रसारण करते रहे हैं लेकिन पिछले क़रीब एक दशक में अमरीका से उपजा उपभोक्ता आधारित टेलीविजन का मॉडल आज दुनियाभर में अपने पैर पसार चुका है। विभिन्न सांस्कृतिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमियों का अध्ययन करने के बाद डैन हेलिन और पॉलो मैन्सिनी ने पाया कि इस उदारवादी मॉडल का बिगुल अमरीका के मीडिया तंत्र का फूंका हुआ है। उन्होंने महसूस किया कि इस मॉडल को पूरी दुनिया में अपनाया जाएगा क्योंकि नव-उदारवाद और वैश्वीकरण का असर मीडिया के ढांचे और उसके कामकाज के तौर-तरीक़ों पर पड़ेगा। (हेलिन एंड मैन्सिनी, 2004:305) यह जानना ज़रूरी है कि शुरुआत में अमरीकी प्रसारण क्षेत्र व्यावसायिक दायरे से बचा हुआ था लेकिन 1927 के यूएस रेडियो एक्ट में विज्ञापनों के बूते होने वाले रेडियो प्रसारण को व्यावसायिक उद्यम के तौर पर परिभाषित कर दिया गया। इस बात पर ज़ोर दिया जाने लगा कि मुक्त प्रसारण सेवा ही सार्वजनिक हितों को पूरा करने में खरा उतर सकती है। इसलिए एक्ट में गैर-व्यवसायिक प्रसारण के विकास और उसके समर्थन की बात नहीं की गई। टेलीविजन का संचालन एक तरह से विज्ञापनों और रेटिंग एजेंसियों पर निर्भर होने लगा। धीरे-धीरे कोलंबिया ब्रॉडकास्टिंग सिस्टम (सीबीएस), नेशनल ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन (एनबीसी) और अमरीकन ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन (एबीसी) जैसी रेटिंग एजेंसियों एवं विज्ञापनों द्वारा बनाई गई बाज़ार केंद्रित राह पर टेलीविजन भी चलने लगा। चूंकि नेटवर्क का रेवेन्यू ऑडिएन्स की रेटिंग के आधार पर तय होने लगा, इसलिए कार्यक्रमों के स्वरूप में भी बदलाव दिखाई देने लगा। ऐसे में ज़्यादातर मनोरंजक कार्यक्रम की बनाए जाने लगे। इस तरह के टेलीविजन कल्चर में नागरिकों के विचार एक उपभोक्ता के विचारों में तब्दील होने लगे।

प्रसारण तंत्र के उदारवादी मॉडल का वैश्वीकरण होने के बाद राष्ट्रीय प्रसारणकर्ताओं का एयरवेव पर कोई एकाधिकार नहीं रह गया। इससे मीडिया पहले से ज़्यादा सक्रिय होने लगा और राज्य द्वारा लगाई जाने वाली सेंसरशिप को चुनौती मिलने लगी। ठीक उसी दौर में मीडिया की कमान प्राइवेट कॉरपोरेशंस के हाथ में जानी शुरू हो गई। दृश्य-श्रव्य मीडिया का वैश्वीकरण होने से कम लागत में संचार उपग्रहों की उपलब्धता बढ़ने लगी। यही कारण था कि 1990 के दशक में टेलीकम्युनिकेशंस से जुड़े ढेरों अंतर्राष्ट्रीय करार हुए और इस दौरान दुनियाभर में इतने उपग्रह लांच किए गए, जितने कि पिछले तीन दशक में भी नहीं हुए थे। उपग्रहों के विस्तार और केबल टेलीविजन से नये टेलीविजन नेटवर्क के विकास में अप्रत्याशित बढ़ोतरी होने लगी। उदाहरण के तौर पर लैटिन अमरीका के पैनएमसैट को ले सकते हैं। महाद्वीप के इस पहले प्राइवेट उपग्रह की बदौलत शुरू हुए डायरेक्ट टू होम टेलीविजन सेवाओं से प्रसारण के क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव देखने को मिले। 1990 में हांगकांग स्थित शिमासैट की एशिया में लांचिग होने के बाद इस क्षेत्र

की प्रसारण में भी अभूतपूर्व बदलाव देखने को मिले। उपग्रह के लांच के बाद ही रुपर्ट मर्डोक के न्यूज कारपोरेशन का हिस्सा कहे जाने वाले स्टार के प्रसारण को इस क्षेत्र में गति मिल सकी। लांचिंग के एक दशक से भी कम समय में 53 देशों प्रसाारण की शुरुआत के बाद स्टार एक तरह से एशियाई मीडिया का केंद्रबिंदु बन गया। क्षेत्रीय सैटेलाइट ऑपरेटर की बदौलत अरबी डायसपोरा समेत अरब के पहले 24 घंटे के न्यूज नेटवर्क अल-जजीरा, मिडिल ईस्ट ब्रॉडकास्टिंग सेंटर जैसे पैन-अरेबिक एंटरटेनमेंट नेटवर्क के प्रसारण के दरवाजे खुल गए।

ढेर सारे चैनलों का नेटवर्क खड़ा होने से बहुसांस्कृतिक, बहुभाषी और बहुराष्ट्रीय वैश्विक मीडिया का स्वरूप आकार लेने लगा। डिजिटल तक़नीक शुरू होने के बाद तो क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय प्रसारण विभिन्न देशों के दर्शकों के लिए सुलभ हो गया। सीएनएन, बीबीसी, सीएनबीसी जैसे अंतरराष्ट्रीय चैनलों के साथ-साथ स्काई न्यूज और अल-जजीरा जैसे चैनल इसकी मिसाल कहे जा सकते हैं। डॉक्युमेंटरी आधारित चैनल डिस्कवरी एवं नेशनल ज्योग्राफिक, खेल में ईएसपीएन और मनोरंजन में डिज्नी, एचबीओ तथा एमटीवी भी इसी कड़ी में शामिल किए जा सकते हैं। प्रसारण क्षेत्र के इस बाज़ारीकरण से ब्रॉडकास्टिंग सेक्टर को एक नयी तरह की ऊर्जा मिली, जिससे ख़बरों एवं सूचनाओं का भी बाज़ारीकरण होने लगा। दर्शकों के बीच अपनी जगह बनाने की प्रतिस्पर्धा और एडवर्टाइजिंग रेवेन्यू को बढ़ाने की दौड़ तेज़ हो गई। ऐसे वातावरण में स्टाइल, स्टोरी-टेलिंग और दृश्यों को रोचक बनाकर और ख़बरों को मनोरंजक कलेवर में पेश करना प्रसारणकर्ताओं की प्राथमिकता बनने लगी। यही नहीं, क्राइम, डॉक्युड्रामा और रेस्क्यू मिशन जैसे रियलिटी टीवी कार्यक्रमों की लोकप्रियता भी तेज़ी से बढ़ने लगी। धीरे-धीरे न्यूज और न्यूज आधारित करंट अफेयर्स प्रोग्रामिंग के बीच की लकीर इतनी बारीक हो गई कि दोनों की अलग पहचान मुश्किल होने लगी। न्यूज, डॉक्युमेंट्री और मनोरंजक कार्यक्रम लगभग एक जैसे होने लगे। 24 घंटे के चैनलों पर कंटेंट की भारी मांग को पूरा करने में भी इस रेटिंग आधारित प्रोग्रामिंग से मदद मिलने लगी।

अमरीका में शुरू हुए इन्फोटेनमेंट के इस ट्रेंड से 1980 के दशक में कई नये प्रयोग देखने को मिले। यही नहीं, इन प्रयोगों के असर से पश्चिमी यूरोप की पत्रकारिता भी प्रमाणित हुए बिना न रह सकी। इन्फोटेनमेंट आधारित इन्हीं प्राइवेट चैनलों ने इटली के एक अज्ञात बिजनेसमेन सिलवियो बर्लुस्कोनी को 1994 में प्रधानमंत्री ऑफिस तक पहुंचा दिया। यही नहीं, 2001 और सन् 2008 में बर्लुस्कोनी को दोबारा प्रधानमंत्री की कुर्सी पर बिठाने में भी इन्हीं टेलीविजन चैनलों का हाथ था। ब्रिटेन में बीबीसी जैसे स्थापित पब्लिक सर्विस बॉडकास्टिंग तंत्र में टीवी पत्रकारिता इन्फोटेनमेंट के प्रभाव से बच नहीं सकी। ऐसे में जनता को सूचित, शिक्षित और स्वस्थ मनोरंजन की बजाय सिर्फ मनोरंजन की पकड़ मज़बूत होने लगी। शायद यही कारण था कि बीबीसी का फ्लैगशिप करंट अफेयर्स कार्यक्रम पैनोरेमा, 1953 से प्रसारित हो रहा था, उसे 2007 में इन्फोटेनमेंट के अंदाज़ में रिलांच किया गया। पूर्वी यूरोप और भूतपूर्व सोवियत यूनियन के हिस्सों में बाज़ार आधारित पूंजीवाद ने राज्य आधारित प्रसारण तंत्र को खोखला कर दिया। स्टेट ब्रॉडकास्टर्स की छवि महत प्रोपेगेंडा नेटवर्क की बनकर रह गई और उनकी विश्वसनीयता कम होने लगी। बाज़ार आधारित ख़बरों के प्रसारण की जो पृष्ठभूमि बाज़ार ने खुद तैयार की थी, उसे आज एक तरह से स्वीकार कर लिया गया हे। यह न्यूज के टेब्लॉइड वर्जन की तरह है, जिसमें कंज्यूमर जर्नलिज्म, खेल और मनोरंजन को ही महत्व दिया जाता है। ऐसे में जनसरोकारों से जुड़ी बहसों का दायरा सिमटता-सा दिखाई देता है। 1980 के दशक में अमरीकी स्कॉलर नील पोस्टमैन ने अपनी क़िताब *एम्यूजिंग ऑरसेल्वस टू डेथ* में लिखा था कि अमरीका में सार्वजनिक बहसें एंटरटेनमेंट की शक्ल लेती जा रही हैं। अमरीका के उस कमर्शियल मॉडल के वैश्वीकरण के बाद आज यही चिंता पूरी दुनियाभर में दिखाई दे रही है।

प्राइवेट मीडिया से प्रतिस्पर्धा और बिखरे हुए दर्शकों की वजह से दुनिया के दूसरे हिस्सों की अपेक्षा भारत में भी सार्वजनिक प्रसारण कई तरह की चुनौतियों का सामना कर रहा है। भारत दुनिया का सबसे बड़ा टीवी न्यूज बाज़ार है, जिसमें इन्फोटेनमेंट की जड़ें गहरे तक समाई हुई हैं। 2013 तक भारत में 140 से अधिक डेडीकेटिड न्यूज चैनल थे। इन चैनलों के बीच बढ़ती प्रतिस्पर्धा से सनसनीखेज टीवी पत्रकारिता का जन्म हुआ। सिनेमा, क्राइम और क्रिकेट भारतीय टीवी इन्फोटेनमेंट का अहम हिस्सा बन गया। दुनिया के दूसरे हिस्सों के इन्फोटेनमेंट ट्रेंड की अपेक्षा भारतीय न्यूज चैनलों पर बॉलीवुड सेलिब्रिटिज को प्राथमिकता देने की जैसे धुन सवार हो गई। प्राइवेट चैनलों से मिलने वाली कड़ी प्रतिस्पर्धा को बावजूद भारत में आज भी सार्वजनिक प्रसारण की पहुंच सबसे ज़्यादा दर्शकों तक है। 2003 में शुरू हुए हिंदी और अंग्रेजी में दूरदर्शन का 24 घंटे के न्यूज एवं करंट अफेयर्स नेटवर्क की पहुंच आज भी राष्ट्रीय स्तर पर सबसे अधिक है। अप्रैल 2013 की हालिया साप्ताहिक रेटिंग में अंग्रेजी दूरदर्शन न्यूज पर डीडी न्यूजनाइट दूसरे चैनलों में सबसे टॉप पर क़रीब 5 हफ्तों तक बना हुआ था। हालांकि प्रतिस्पर्धा के कारण निश्चित तौर पर दूरदर्शन के प्रसारण में सुधार हुआ है लेकिन दूरदर्शन न्यूज को अभी हाई प्रोफेशनलिज्म हासिल करने की ज़रूरत है। इस पर दिखाए जाने वाले बौद्धिक विचार, जैसे आधिकारिक बयान से प्रतीत होते हैं जबकि सरकार की ओर से इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को यहां पूरी स्वायत्ता दी जाती है। शहरी मध्य वर्ग का दर्शक अब तेज़ी से दूरदर्शन जैसे राष्ट्रीय चैनलों की अपेक्षा प्राइवेट नेटवर्क की ओर शिफ्ट कर रहा है। हिंग्लिश भाषा, चमक-दमक भरी ग्लैमरस प्रस्तुति और आकर्षक एंकरिंग को इसके लिए जिम्मेदार माना जाता है, जिसे दूरदर्शन राज्य का अंग होने के कारण आत्मसात नहीं कर पाया।

खिसकते दर्शक वर्ग को देखते हुए दूसरे देशों की तरह ही दूरदर्शन पर भी एंटरटेनमेंट कार्यक्रमों के साथ-साथ लाइव इवेंट्स के कवरेज का दबाव तेज़ी से बढ़ रहा है। बीबीसी की तर्ज पर सार्वजनिक प्रसारण को बचाने के लिए लाइसेंस फीस शुरू किए जाने का सुझाव प्राधिकारी वर्ग अभी तक अमल में नहीं ला सका है। इसके अभाव में राज्य प्रसारक सरकार का एक हिस्सा जान पड़ता है, जो भारतीय नागरिकों की बजाय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के प्रति उत्तरदायी है। भारत में सार्वजनिक प्रसारण यूनेस्को की परिभाषा

को परिलक्षित करता नहीं दिखाई देता, जिसमें कहा गया है कि सार्वजनिक प्रसारण एक ऐसी प्रसारण सेवा है जो नागरिकों के लिए बनी है, नागरिकों द्वारा नियंत्रित होती है और नागरिकों द्वारा ही इसका वित्त पोषण होता है। न तो यह कमर्शियल इकाई होती है और न ही स्टेट का इस पर अधिकार होना चाहिए। इसे राजनीतिक दखल और व्यवसायिक दबाव से पूरी तरह मुक्त होना चाहिए।

टेलीविजन मीडिया के बाज़ारीकरण से भारत की बहुसंख्य ग्रामीण एवं ग़रीब आबादी हाशिये पर छूट गई है। दूसरे देशों की तरह यहां ख़बरों का कारपोरेटीकरण हो गया है, जिससे ख़बरों में जनसरोकार उपेक्षित नज़र आते हैं।

ध्यान दिलाना ज़रूरी है कि भारत दुनिया का पहला देश था जिसने विकास संचार के लिए सैटेलाइट टीवी शुरू किया था। साइट सैटेलाइट इंस्ट्रक्शनल टेलीविजन एक्सपेरीमेंट नामक इस परियोजना की शुरूआत 1970 में की गई थी। अपने सिटिजन चार्टर के आधार पर दूरदर्शन शिक्षा, साक्षरता के प्रसार को लेकर पूरी तरह से प्रतिबद्ध है। इंदिरा गांधी ओपन यूनिवर्सिटी के साथ मिलकर ज्ञानदर्शन और ज्ञानदर्शन-2 जैसे शैक्षिक चैनल इसी कड़ी का हिस्सा कहे जा सकते हैं। भारत की राजनीतिक लोकतांत्रिक पृष्ठभूमि में टेलीविजन समाचार राजनीतिक प्रक्रिया का आज एक अहम हिस्सा बन चुके हैं। लोकतांत्रिक मूल्यों के संरक्षण में विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका के बाद यहां मीडिया को चौथा स्तंभ माना जाता है। स्वायत्त मीडिया लोकतंत्र के अन्य तीन स्तंभों के कामकाज में संतुलन बनाए रखने के लिए एक वॉचडॉग की भूमिका भी अदा करता है।

बीबीसी और जापान के एनएचके से सबक लेते हुए भारतीय प्रसारणकर्ताओं को भी भारत की समृद्ध संस्कृति, बौद्धिक संपदा और धार्मिक विरासत के संरक्षण एवं वैश्विक स्तर पर इसके प्रचार-प्रसार की पहल करनी चाहिए। इसमें भारत की युवाशक्ति और उसके क्षमताओं को भी दिखाया जाना चाहिए। भारत तेज़ी से वैश्वीकरण की सीढ़ियां चढ़ रहा है और यहां के टेलीविजन समाचार अंतरराष्ट्रीय मामलों में दख़ल रखते हैं। प्रमुख गैर अंग्रेजी भाषी देशों के अंतरराष्ट्रीय न्यूज नेटवर्क जैसे रशिया टुडे, फ्रांस 24, ईरान के प्रेस टीवी, कतर के अल-जजीरा इंग्लिश, चीन के सीसीटवी न्यूज, जर्मनी के डॉयचे वेले और जापान के एनएचके इंटरनेशनल के बीच दूरदर्शन न्यूज दुनिया के दूसरे देशों में टेलीविजन स्क्रीन से गायब नज़र आता है। इसकी बजाय एनडीटीवी 24×7 और आज तक जैसे चैनल दिखाई देते हैं। भारत के आकार, विविधता, स्तर और संभावनाओं को देखते हुए कहा जा सकता है कि भारतीय परिप्रेक्ष्य को भी वैश्विक स्तर पर दिखाया जाना चाहिए। इसके लिए दूरर्शन न्यूज को नये सिरे विकसित करना होगा। इसे प्रोफेशनल बनाना होगा। इसी के साथ मुख्य सैटेलाइट नेटवर्क्स पर इसकी उपलब्धता को भी सुनिश्चित करना ज़रूरी है। राजनीतिक इच्छाशक्ति के अलावा भारत के पास प्रोफेशनल, तक़नीकी और फाइनेंशियल सहूलियतें मौजूद हैं, जो इसकी सार्वजनिक प्रसारण सेवा को बेहतर बना सकती हैं। ❑

(लेखक वेस्टमिंस्टर विश्वविद्यालय (लंदन) में पत्रकारिता एवं जनसंचार के प्रोफेसर हैं। वह मीडिया एवं संचार विषयक शोध पत्रिका 'सेज' के संस्थापन संपादक भी हैं।

ई-मेल : d.k.thussu@westminster.ac.uk)

योजना अब फेसबुक पर

आपकी लोकप्रिय पत्रिका **'योजना'** अब फेसबुक पर **Yojana Journal** नाम से पृष्ठ के साथ मौजूद है। हमारे फेसबुक पृष्ठ पर आएं और हमारी गतिविधियों तथा आगामी अंकों के बारे में ताज़ी जानकारी प्राप्त करें।

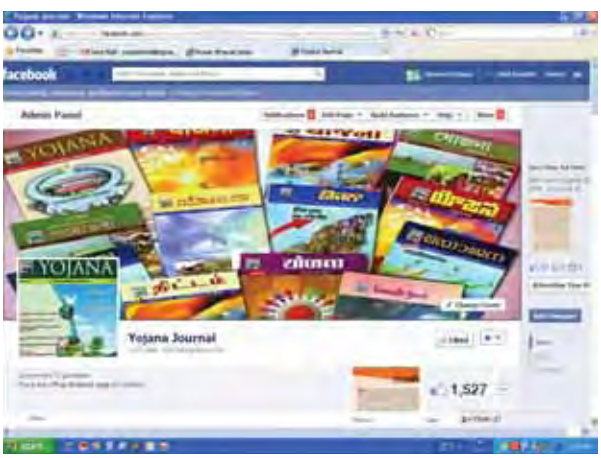

हमारा पता : http://www.facebook.com/pages/Yojana-Journal/181785378644304?ref-hl

फेसबुक पर हमसे मिलें, Like करें और अपने बहुमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराएं।

सभी प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए संशोधित एवं अद्यतन पुस्तक

प्रमुख आकर्षण

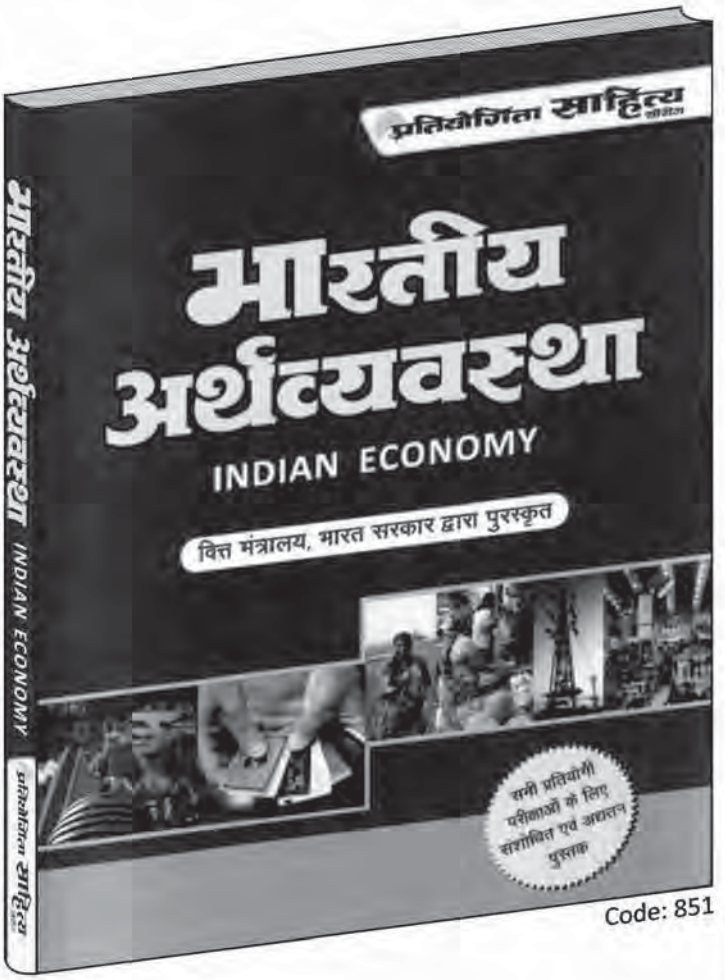

- विश्व विकास रिपोर्ट 2012
- विश्व विकास संकेतांक 2012
- मानव विकास रिपोर्ट–संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम 2013
- भारत 2013 के आधार पर समंक एवं विषय सामग्री
- भारतीय मानव विकास रिपोर्ट 2011
- बारहवीं (2012-2017) पंचवर्षीय योजना
- केन्द्रीय बजट 2013-14
- रेलवे बजट 2013-14
- आर्थिक समीक्षा 2012-13
- राष्ट्रीय विनिर्माण नीति 2011
- भारतीय कृषि की स्थिति 2011-12 रिपोर्ट के समंक
- विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालयों की 2011-12 रिपोर्ट के आधार पर समंक
- जनगणना 2011 के विस्तृत समंक
- विदेशी व्यापार एवं विदेशी ऋण के 2011-12 तक के समंक
- पंचवर्षीय विदेश व्यापार नीति 2009-2014
- मौद्रिक नीति 2012-13 भारत वन स्थिति रिपोर्ट 2011
- भारतीय कृषि में क्षेत्र एवं उत्पादन के 2011-12 तक के समंक
- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन, यूरोपियन संघ, आसियान, सार्क इत्यादि अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में 2011-12 तक के समंकों एवं सूचनाओं का समावेश
- वाणिज्यिक बैंकों के मार्च 2012 तक के समंक
- तेरहवें वित्त आयोग की रिपोर्ट और 14वें वित्त आयोग का गठन
- प्रामाणिक स्रोतों के आधार पर पूर्णतः अद्यतन वस्तुनिष्ठ (बहुविकल्पीय) प्रश्न (हल सहित)

आपके निकटतम पुस्तक विक्रेता पर उपलब्ध।

साहित्य भवन | 0562-3293040 | 08958500222 | info@psagra.in | www.psagra.in

YH-85/2013

लोक सेवा प्रसारण - संतुलन की चुनौती

● मार्क टली

उपन्यासकार स्टीफन फॉक्स ने कहा है कि बीबीसी रेडियो-4 चैनल की ''मानवीय, उच्च मध्यवर्गीय गंभीरता ने ब्रिटिश समाज को परिभाषित करने और पिछले 100 वर्षों में उसे एकजुट बनाए रखने के दो बड़े कार्य किए हैं, जो किसी भी अन्य राजनीतिक या कलात्मक आंदोलन की तुलना में उसका अधिक महत्वपूर्ण योगदान है।'' रेडियो-4 का ब्रेकफास्ट शो, टुडे प्रोग्राम ऐसे कार्यक्रम हैं जो दिनभर के लिए राजनीतिक कार्यसूची तय करते हैं। हालांकि यह रेडियो है, टेलीविज़न नहीं है, फिर भी राजनीतिज्ञ और जनमत को प्रभावित करने वाले अन्य लोग इसमें बढ़-चढ़ कर भाग लेने की लालसा रखते हैं। रेडियो-4 का समाचारों और सम-सामयिक विषयों के प्रसारण में प्रमुख स्थान है लेकिन यह एक समाचार चैनल से बढ़कर बहुत कुछ है। यह ब्रिटेन में किसी भी अन्य रेडियो या टेलीविज़न चैनल की तुलना में अधिक नाटक और कॉमेडी प्रसारित करता है। धार्मिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक मुद्दों पर रेडियो वृत्तचित्रों और वार्ता कार्यक्रमों के लिए यह चैनल अत्यंत लोकप्रिय है। रेडियो-4 के कार्यक्रमों की विविधता इतनी अधिक है कि ब्रिटेन में अनेक लोग जो घर पर काम करते हैं, सारा दिन इस चैनल को सुनते रहते हैं। इसके कार्यक्रम अन्य लोगों की दिनचर्या का भी हिस्सा बनते हैं, जो सुबह रेडियो-4 के साथ उठते हैं, शेविंग करते या ब्रेकफास्ट पकाते रेडियो सुनते रहते हैं और फिर दिन में भोजनावकाश के समय समाचार सुनते हैं, शाम को कार्यालय से घर लौटते हुए, ड्राइव करते समय कार्यक्रम सुनने से लेकर विशेष समय पर प्रसारित होने वाले सम-सामयिक कार्यक्रमों का लाभ उठाते हैं और सोने से पहले दिन के लिए उपयुक्त कार्यक्रम सुनते हैं। मैं रेडियो-4 पर नियमित रूप से कार्यक्रम प्रस्तुत करता रहा हूं। मेरे कार्यक्रम गद्य, कविता और संगीत का मिला-जुला रूप होते थे, जो रविवार को तड़के या देर रात्रि प्रसारित होते रहे हैं। श्रोता अक्सर मुझे कहते रहे हैं, ''मैं आपका कार्यक्रम सुन कर सोता हूं।'' मैं इस बात से आश्वस्त नहीं हूं कि यह मेरे कार्य की कितनी सराहना है, लेकिन यदि रविवार को रात 11.30 बजे तक लोग रेडियो सुनते हैं तो इससे रेडियो-4 की लोकप्रियता निश्चित रूप से सिद्ध होती है।

मैंने इस आलेख की शुरुआत ब्रिटिश समाज में रेडियो-4 की असाधारण स्थिति के वर्णन के साथ क्यों की? मैंने यह शुरुआत इसलिए की है कि ब्रिटेन के लोग जितना महत्व रेडियो को देते हैं, वह संभव नहीं था, अगर लोक सेवा प्रसारण का अस्तित्व नहीं होता। कोई भी व्यावसायिक प्रसारणकर्ता रेडियो-4 को कोई कारगर चुनौती नहीं दे पाया है। मेरा मानना है कि रेडियो-4 जैसा चैनल चलाना न सिर्फ़ महंगा है, बल्कि व्यावसायिक प्रसारणकर्ताओं के लिए उससे मुनाफ़ा कमाना भी कठिन है। मेरी राय में रेडियो-4 को छोड़ कर गंभीर कार्यक्रम संबंधी अन्य रेडियो चैनल न होने के पीछे एक कारण यह भी है कि लोक सेवा प्रसारण संगठन और वाणिज्यिक प्रसारणकर्ता के बीच लोकाचार संबंधी अंतर है।

लोक सेवा प्रसारण का आधार, जैसा कि बीबीसी के लिए स्टाफ के एक सदस्य के रूप में 30 वर्ष तक और उसके बाद स्वतंत्र प्रसारणकर्ता के रूप में मैंने महसूस किया है, दोतरफा है। प्रसारणकर्ता संगठन को वाणिज्यिक दबावों से मुक्त होना चाहिए, विशेषकर उसे विज्ञापन समय बेच कर राजस्व नहीं उगाहना चाहिए, और वह कार्यक्रमों की विषयवस्तु थोपने वाले सरकारी या किसी अन्य संगठन, जैसे चर्च या किसी राजनीतिक दल के प्रभाव से मुक्त होना चाहिए। व्यावसायिक प्रसारणकर्ताओं को लोक सेवा लक्ष्यों द्वारा निर्देशित कार्यक्रम बनाने में सक्षम होना चाहिए। बीबीसी का उद्देश्य 'ऐसे कार्यक्रमों के जरिये लोगों के जीवन को समृद्ध बनाना है जो सूचना, शिक्षा और मनोरंजन प्रदान करें।' इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए बीबीसी के प्रबंधन बोर्ड में प्रसारणकर्ताओं का वर्चस्व है। सरकार द्वारा संचालित प्रसारण संगठन में प्रबंधक सरकारी कर्मचारी होते हैं और वाणिज्यिक प्रसारण संगठन में विपणन कार्यकारियों की भूमिका प्रसारणकर्ताओं से अधिक सशक्त होने की संभावना रहती है। बीबीसी का प्रबंधन बोर्ड न्यासियों के अधीन है जो आमतौर पर समाज के विशिष्ट जन होते हैं, जो प्रसारण संगठन के लक्ष्य को पूरा करने के लिए कार्यनीति तय करते हैं, प्रबंधन बोर्ड के कार्य निष्पादन का मूल्यांकन करते हैं और महानिदेशक की नियुक्ति करते हैं। भारत में निश्चित रूप से तथाकथित लोक सेवा प्रसारणकर्ता सरकारी नियंत्रण से मुक्त नहीं हैं, और एक मात्र रेडियो और टेलीविज़न विकल्प स्पष्ट रूप से वाणिज्यिक हैं। बीबीसी को सरकार से मुक्त रखने की गारंटी एक रॉयल चार्टर द्वारा दी गई हैं। मौजूदा चार्टर का नवीकरण 2016 में किया जाना है। कार्पोरेशन के राजस्व की गारंटी टेलीविजन लाइसेंस शुल्क की उगाही द्वारा दी जाती है, जो टेलीविजन सेट रखने वाले सभी परिवारों को अदा करना होता है। बीबीसी वर्ल्ड सर्विस के लिए धन की व्यवस्था विदेश कार्यालय द्वारा की जाती है, किंतु इसका असर संपादकीय नीति पर नहीं पड़ता। मैं लंदन में बीबीसी वर्ल्ड सर्विस के उस अनुभाग में काम कर रहा था, जो शाह के ख़िलाफ़ विद्रोह भड़कने के समय ईरान और दक्षिण एशिया के लिए कार्यक्रम प्रसारित करता था। तेहरान में

ब्रिटेन के राजदूत और विदेश कार्यालय का यह मानना था कि हमारे प्रसारण असंतुलित थे और शाह की परेशानियां बढ़ाने वाले थे, लेकिन उनकी शिकायतें हमारे संपादकीय निर्णयों को प्रभावित नहीं कर सकीं। पाकिस्तान में जुल्फीकार अली भुट्टो के ख़िलाफ़ आंदोलन के दौरान ब्रिटिश उच्चायुक्त ने मुझे बुलाया और कहा कि प्रधानमंत्री मुझ से बहुत नाराज़ हैं और कड़े शब्दों में मुझे सुझाव दिया कि मुझे देश छोड़ कर चला जाना चाहिए। मैंने उत्तर दिया, ''इसका यह अर्थ है कि मुझे लंबे समय तक रहना होगा'', जो मैंने किया।

अनेक बार ऐसे अवसर आए जब बीबीसी को संपादकीय मुद्दों के बारे में सरकार के दृष्टिकोण को स्वीकार करने के लिए सार्वजनिक दबाव का सामना करना पड़ा। संभवत: सर्वाधिक चर्चित अवसर 1956 में स्वेज संकट के रूप में सामने आया था, जब ब्रिटेन ने मिस्र में सैन्य हस्तक्षेप किया था। संसद में विपक्ष ने सरकार के फ़ैसले का कड़ा विरोध किया था। बीबीसी ने प्रधानमंत्री एंथनी एडन को राष्ट्र को संबोधित करने का अवसर प्रदान किया। किंतु, विपक्ष के नेता को जवाब देने का अधिकार भी प्रदान किया गया। एडन को बहुत गुस्सा आया और उसने बीबीसी को दंडित करने के अनेक उपायों पर विचार किया। कुछ ख़बरें तो ऐसी भी थीं कि उसने कार्पोरेशन पर नियंत्रण करने का सुझाव भी दिया था। अंत में वे वर्ल्ड सर्विस के बजट में 10 लाख पाउंड की कटौती करने तक सीमित रहे। विवादास्पद डायरेक्टर जनरल जॉन ब्रिट के कार्यकाल के दौरान 90 के दशक में ऐसे आरोप लगे थे कि वह निरंतर सरकारों के क़रीब थे। इन आरोपों को उस समय बल मिला जब वे बीबीसी छोड़ कर प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर के कार्यालय में काम करने लगे। किंतु किसी संगठन के लिए कोई दोषमुक्त डिज़ाइन नहीं हो सकता और बीबीसी जैसे संगठन, जिस पर लोगों की निगाह लगी रहती है, के सरकार के साथ तनाव पूर्ण और कभी-कभी आपत्तिजनक संबंध होना लाज़मी है। मैं अपने अनुभव के आधार पर इतना कह सकता हूं कि बीबीसी समुचित रूप में एक स्वतंत्र लोक सेवा प्रसारक है, जो इस बात की मिसाल है कि ऐसा संगठन संभव है।

राजस्व जुटाने के दो स्रोत हैं जिनसे बीबीसी के कार्यक्रम संबंधी निर्णयों पर वाणिज्यिक दबाव आ सकते हैं। पहला यह कि बीबीसी अपने कार्यक्रमों की बिक्री और उनसे संबंधित अन्य वाणिज्यिक गतिविधियों की बिक्री से धन जुटाता है। राजस्व का दूसरा स्रोत, जिस पर सवाल उठाया जा सकता है, बीबीसी द्वारा इस सिद्धांत का उल्लंघन है कि वह विज्ञापन नहीं लेगा। बीबीसी अपने वर्ल्ड टेलीविज़न चैनल पर विज्ञापन लेता है। मुझे इस बात पर चिंता हुई कि हाल ही में बीबीसी के डायरेक्टर जनरल ने भारत यात्रा के दौरान वाणिज्यिक राजधानी मुंबई में स्वागत समारोह में हिस्सा लिया, न कि राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में, जैसी कि परंपरा रही है। उनके इस फ़ैसले से लगता है कि उनकी यात्रा में वाणिज्यिक हितों की प्रधानता रही।

लाइसेंस प्रणाली जो बीबीसी की वित्तीय स्वायत्तता की गारंटी देती है, के प्रति भी ख़तरा पैदा हो गया है क्योंकि गैर-बीबीसी प्रसारणकर्ता सरकार पर इसके लिए दबाव डाल रहे हैं। उनका कहना है कि गारंटीकृत आय का अर्थ है कि बीबीसी उनके साथ समान स्तर पर प्रतिस्पर्धा नहीं करता है या दूसरे शब्दों में यह अनुचित प्रतिस्पर्धा है। ब्रिटेन के समाचार पत्रों की शिकायत है कि बीबीसी की अत्यंत लोकप्रिय वेबसाइट निशुल्क एक्सेस प्रदान करती है जिससे वे अपनी वेबसाइटों से राजस्व अर्जित करने के प्रयासों में कठिनाइयां महसूस करते हैं।

लोक सेवा प्रसारण का समर्थन करने के अनेक कारण हैं। सबसे स्वाभाविक कारण यह है कि यह स्वतंत्र समाचार सेवा प्रदान करता है जो विश्वसनीय होती है। अधिक व्यापक सोशल मीडिया पर जो महत्वपूर्ण, सही और विश्वसनीय ख़बरें प्रसारित होती हैं उनमें सबसे उपयुक्त वे ख़बरें हैं जिन पर श्रोता, दर्शक और इलेक्ट्रॉनिक रूप में सूचना पाने वाले भरोसा कर सकें। सोशल मीडिया पर अफ़वाहें फैलाने, अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन करने और लोगों को धोखा देने के अनेक दूसरे तरीक़े इस्तेमाल किए जाने की आशंकाएं रहती हैं। नेट पर आने वाली ढेर सारी जानकारी की प्रामाणिकता की जांच करना असंभव है। ऐसे में यह अत्यंत आवश्यक है कि समाचार एजेंसियां ऐसी हों, जिन पर प्रामाणिक जानकारी के बारे में भरोसा किया जा सके। भारत में सोशल मीडिया के आने से पहले भी, जब वायु तरंगों पर सरकारी नियंत्रण वाले प्रसारणकर्ताओं का वर्चस्व था, ऐसी प्रामाणिक जानकारी देने वाले प्रसारणकर्ता जरूरी थे। उन दिनों मैं भारत के ग्रामीण क्षेत्रों से रिपोर्ट करता था। मैं कभी-कभी लोगों से पूछता था कि वे बीबीसी क्यों सुनते हैं? मुझे बताया जाता था कि ''चूंकि यह सही न्यूज देता है और सबसे पहले देता है।'' जब मैं आकाशवाणी के बारे में श्रोताओं से पूछता था तो वे उसे 'सरकारी ख़बरों' की संज्ञा देते थे।

लोक सेवा प्रसारण के समक्ष चुनौतियां सिर्फ़ तटस्थ समाचार सेवा प्रदान करने की नहीं हैं, बल्कि एक संतुलन कायम करने की भी हैं। हालांकि लोक सेवा प्रसारण वाणिज्यिक नहीं है और इसीलिए विज्ञापनदाताओं को संतुष्ट करने के लिए उसे पर्याप्त श्रोता जुटाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, फिर भी श्रोताओं के प्रति उसे चिंतित रहना पड़ता है। ब्रिटेन में लगभग प्रत्येक परिवार को टेलीविज़न लाइसेंस शुल्क अदा करना पड़ता है, फिर भी बीबीसी को ऐसे श्रोताओं को आकर्षित करने की आवश्यकता पड़ती है जो इस शुल्क को न्यायोचित समझते हों। उसे यह कहने में सक्षम होना है कि कार्यक्रमों को देखने वाले लोगों की संख्या इस बात का प्रमाण है कि लोग लाइसेंस शुल्क को उसके कार्यक्रमों का मूल्य समझते हैं। यह लक्ष्य श्रोताओं को आकर्षित करके ही हासिल किया जा सकता है। अत: सार्वजनिक क्षेत्र के समाचार कार्यक्रम प्रसारणकर्ताओं के संपादकों को निचले स्तर पर बाज़ार से श्रोताओं को आकर्षित करने के लिए समाचारों को महत्वहीन या सनसनीखेज बनाना पड़ता है। ऐसे लोग भी हैं जो बीबीसी के शाम के घरेलू टेलीविज़न समाचार कार्यक्रमों की आलोचना इसी रूप में करते हैं।

ब्रेकिंग न्यूज यानी महत्वपूर्ण समाचार की लाइव कवरेज का लालच होता है, जो विशेषकर बनाया हुआ हौआ है। संपादक यह मानते हैं कि दर्शक इस कवरेज के टेक्नोलॉजीकल चमत्कार से प्रभावित और रोमांचित होते हैं क्योंकि वे अपने आप को स्पॉट पर महसूस करते हैं। परिणाम यह होता है कि लाइव कवरेज चलती रहती है और अन्य ख़बरें छूट जाती हैं। रिपोर्टरों को उस समय रिपोर्ट करने के लिए दबाव डाला जाता है जब उनके पास कुछ कहने को नहीं होता, और प्रस्तुतकर्ताओं, या एंकरों, जैसा कि उन्हें भारत में कहा जाता

है, को ऐसे उबाऊ सवाल पूछने पड़ते हैं, 'हमें बताएं क्या हो रहा है अब?' जबकि दर्शकों को कुछ समय पहले ही जानकारी दी गई होती है। पीड़ितों और उनके रिश्तेदारों से असंवेदनशील और अक्सर कष्टदायक सवाल पूछे जाते हैं, और ऐसे प्रयास किए जाते हैं कि काल्पनिक और प्रामाणिकता रहित समाचार दृष्टि पेश की जाए। ब्रेकिंग न्यूज कवरेज ख़तरनाक भी सिद्ध होती है। इसका उदाहरण मुंबई हमलों के दौरान भारत में देखा गया था। मुझे लगता है कि बीबीसी ब्रेकिंग न्यूज और स्पॉट प्रसारण के प्रति अन्य समाचार चैनलों की तुलना में अधिक लालची है, हालांकि वह ऐसी गुंजाइश नहीं छोड़ता कि ध्यानपूर्वक तैयार की गई ख़बरें प्रसारित न हों।

लोक सेवा समाचार प्रसारणकर्ता पत्रकारों को भी अन्य पत्रकारों की भांति इस चुनौती का सामना करना पड़ता है कि पहले ख़बर देने की प्रतियोगिता जीतने के लिए जी तोड़ मेहनत करनी पड़ती है। इस इच्छा और प्रतिस्पर्धा का दुष्प्रभाव तथ्यपरक और संतुलित रिपोर्टिंग पर पड़ता है। इसका वर्णन फ्रांस के समाज शास्त्री पिऐरे बोर्ड्यू ने अपनी संक्षिप्त लेकिन प्रभावशाली पुस्तक *ऑन टेलीविज़न* में किया है। वे लिखते हैं कि ''सनसनी खेज ख़बर देने की सनक और समाचार के पक्ष में यह अविरल झुकाव कि नवीनतम और प्रामाणिक प्राप्त करना है अथवा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन की प्रवृत्ति जो सूक्ष्म और विस्मयकारक व्याख्या प्रस्तुत करने के प्रयास से आती है (जिसका अक्सर अर्थ होता है सर्वाधिक दोषदर्शी) या फिर एक पूर्वानुमान का खेल जो सामूहिक विस्मरण पर आधारित होता है। ये पूर्वानुमान और निदान न केवल सरलता (जैसे खेलों में शर्तें लगायी जाती हैं) से लगाए जाते हैं बल्कि उन्हें किसी प्रकार के दंड के भय के बिना ही लगाया जाता है, और अनुमान लगाने वाला इतनी जल्दबाजी करता है कि घटनाओं के तीव्र कारोबार के बीच पत्रकारितापूर्ण रिपोर्ट दब जाती है।'' किंतु लोक सेवा प्रसारण के मामले में पत्रकारों को प्रतिस्पर्धा जीतने के लिए कम से कम वाणिज्यिक दबावों का तो सामना करना ही पड़ता है। निश्चित रूप से जब मैं बीबीसी में था, तो वहां भी कार्य निष्पादन की समीक्षा के लिए विभागों की दैनिक बैठकें होती थीं। इन समीक्षा बैठकों में कवरेज के बारे में कड़े फ़ैसले किए जाते थे, जिसके बारे में यह समझा जाता था कि वह सतही, सनसनीखेज, अतिशयोक्तिपूर्ण और राय आधारित है।

किंतु, जैसा कि मैंने शुरू में कहा कि किसी राष्ट्र के जीवन में लोक सेवा रेडियो का योगदान समाचार सेवाएं और सम-सामयिक कार्यक्रमों को प्रसारित करने से कहीं अधिक यह होता है कि प्रसारण विश्वसनीय हो। जैसा कि मैंने कहा, बीबीसी का आंशिक लक्ष्य मनोरंजन करना है। वे विविध प्रकार के कार्यक्रमों के जरिये इसे पूरा करते हैं। कौन से कार्यक्रम प्रसारित होंगे इसका फ़ैसला प्रसारणकर्ताओं द्वारा किया जाता है न कि विपणन कार्यकारियों या अधिकारियों द्वारा। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि बीबीसी में रेडियो की ताक़त में विश्वास बनाए रखने और ऐसे संकट के समय रेडियो-4 चैनल का अस्तित्व एक रचनात्मक माध्यम के रूप में बनाए रखने का श्रेय प्रसारणकर्ताओं को ही है, जब टेलीविज़न प्रसारण का महत्व बढ़ता जा रहा था। ऐसे समय में भी रेडियो ने ब्रिटेन के लोगों के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

लोक सेवा समाचार प्रसारणकर्ताओं को जिस तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है लगभग वैसी ही चुनौतियां अन्य कार्यक्रमों के संदर्भ में भी सामने आ रही हैं। रचनात्मक मनोरंजन और सूचनात्मक रेडियो कार्यक्रमों के लिए रचनात्मकता आवश्यक है। कार्यक्रम निर्माताओं को रचनात्मकता की छूट, समुचित धन और अन्य संसाधन प्रदान करना अनिवार्य है। इन संसाधनों में ऐसा प्रबंधन भी ज़रूरी है जो अपनी सुविधा प्रदाता की भूमिका स्वीकार करे न कि अपने को मालिक के रूप में पेश करे। प्रबंधन की प्रचलित शैली बिजनेस स्कूलों से संबद्ध है और प्रबंधन परामर्शदाताओं द्वारा समर्थित है जो सक्षमता की संकीर्ण परिभाषा पर आधारित है। इसमें प्रबंधकों को प्रसारणकर्ताओं से ऊपर रखा जाता है और उनके बीच एक असंतोष पैदा किया जाता है। प्रबंधक फ़ैसले करते हैं, जो प्रसारणकर्ताओं को करने चाहिए। प्रसारणकर्ता यह महसूस करते हैं कि नौकरशाहीपूर्ण नियंत्रण से उनकी आज़ादी सीमित की जा रही है। बीबीसी के पूर्व महानिदेशक ग्रेग डाइक ने अपने पूर्ववर्ती जॉन ब्रिट, जिसके बारे में व्यापक तौर पर यह समझा जाता था कि वे प्रबंधन परामर्शदाताओं से प्रभावित थे, के बारे में कहा था कि ''वे चाहते थे कि बीबीसी सर्वोत्कृष्ट प्रबंधित प्रसारण संगठन बने न कि सर्वोत्कृष्ट प्रसारण संगठन।'' स्वाभाविक है कि बीबीसी को यह सिद्ध करना है कि वह अपव्ययी नहीं है और यह कि वह धन का महत्व समझता है तथा संसाधनों का जिम्मेदारी पूर्ण इस्तेमाल करता है। लेकिन उसे एक रचनात्मक प्रसारणकर्ता संगठन की अति विशिष्ट ज़रूरतें पूरी करने के लिए इन मानदंडों के बीच संतुलन कायम करना है।

अत: लोक सेवा प्रसारण में मेरे अनुभव संतुलन से संबंधित हैं। श्रोताओं को आकर्षित करने और लोक सेवा का लक्ष्य पूरा करने वाले कार्यक्रम बनाने के लिए वाणिज्यिक प्रसारणकर्ताओं से प्रतिस्पर्धा के बीच एक संतुलन निरंतर बनाए रखने की आवश्यकता है। लोक सेवा प्रसारणकर्ता को अपने सभी अलग-अलग श्रोताओं की ज़रूरतें पूरी करनी हैं। उसे उच्च वर्ग और निम्न वर्ग दोनों की ज़रूरतें पूरी करने में सक्षम होना चाहिए। किसी भी लोक सेवा प्रसारण संगठन को अंततोगत्वा अपने अस्तित्व के लिए सरकार पर निर्भर रहना पड़ता है, अत: उसे स्वायत्तता बनाए रखने और सरकार के साथ संबंध बनाए रखने के बीच संतुलन कायम करना होगा। निश्चित रूप से यह संतुलन कायम करने का दायित्व सरकार के कंधों पर है। इसके बाद संसाधनों के जिम्मेदारीपूर्ण इस्तेमाल और रचनात्मकता को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक आज़ादी के बीच संतुलन कायम करने की आवश्यकता है। अंतत: नयी प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल और उसके अत्यधिक इस्तेमाल के बीच संतुलन कायम करना होगा। मेरा मानना है कि ये सभी संतुलन कायम करने वाला लोक सेवा प्रसारणकर्ता भारत में स्थापित किया जाए तो वह देश के लोगों के जीवन को व्यापक समृद्ध बना सकता है। लोक सेवा प्रसारण ने ब्रिटेन के लोगों के जीवन को निश्चित रूप से समृद्ध बनाया है। ❑

(मार्क टली को बीबीसी में 40 वर्ष से अधिक का लोक सेवा प्रसारण का अनुभव है। वे 1972 से 1994 तक बीबीसी के दिल्ली संवाददाता रहे। उसके बाद से वे बीबीसी के साथ एक स्वतंत्र प्रसारणकर्ता के रूप में जुड़े हुए हैं और दिल्ली में एक पत्रकार के रूप में सक्रिय हैं। लोक सेवा प्रसारण संगठन के प्रबंधन में उन्होंने विशेष रुचि ली हैं।

ई-मेल : markandgilly@gmail.com)

तिरछी नज़र

बंधनमुक्त प्रसार भारती

भारत को एक स्वतंत्र लोक-प्रसारक की आवश्यकता क्यों है?

● रॉबिन जेफ्रे

भारत में बीबीसी, सीएनएन अथवा सीसीटीवी (चीनी टेलीविज़न) चैनल के मुक़ाबले की प्रसारण सेवा क्यों नहीं शुरू हो सकती? क्यों प्रसार भारती और इसके दो अवयव दूरदर्शन एवं आकाशवाणी भारत अथवा विदेशों में ध्यान आकर्षित करने में असमर्थ हैं?

जिस प्रकार से मुद्रण आधारित समाचार संगठन (अख़बार आदि) बंद होते जा रहे हैं, यह और भी ज़रूरी हो जाता है कि विश्वसनीय समाचार संकलन प्रणालियों का अस्तित्व नष्ट न होने पाए। यह संसार अब अंकों में समाहित (डिजिटल) हो गया है और विश्व का प्रत्येक कोना अन्य किसी कोने को तत्काल प्रभावित करने की क्षमता रखता है। किस प्रकार तमाम समाचार समूचे विश्व तक प्रभावी ढंग से पहुंचाए जाते हैं, उससे इस 'सॉफ्ट पॉवर' की शक्ति का अंदाज़ा लगाया जा सकता है।

भारत में विश्व-स्तरीय समाचार संगठन बनाने के सभी उपादान हैं। डिजिटल प्रौद्योगिकी, टेलीविज़न प्रस्तुतिकरण और फ़िल्म-निर्माण के क्षेत्र में इसका अनुभव काफ़ी व्यापक है। भारत में हज़ारों अंग्रेज़ी भाषी, बहु-भाषा-भाषी पत्रकार उपलब्ध हैं, जो हर प्रकार के अवसर के लिए उपयुक्त-आकार, लिंग और रंग में मिलते हैं। दक्षिणी अमरीका (लैटिन अमरीका) से लेकर जापान तक भारतीय मूल के लोग भारी संख्या में मौजूद हैं जो उसके संवाददाताओं को स्थानीय विषयों का ज्ञान दे सकते हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (प्रेस की आज़ादी) के लिए संघर्ष के इतिहास से परिपूर्ण है भारत का लोकतंत्र। गुट-निरपेक्षता के क्षेत्र में भारत की प्रतिष्ठा तीन पीढ़ियों से कायम है, जिससे उसकी विश्वसनीयता पर संदेह नहीं हो सकता।

तो फिर, 1997 में गठित प्रसार भारती और 1995 में गठित इसकी अंतर्राष्ट्रीय प्रसारण सेवा- दूरदर्शन इंडिया (डीडीआई) इतने कमज़ोर और लक्ष्य विहीन क्यों बने हुए हैं। डीडीआई को टेलीविजन पर ढूंढना कठिन है और अगर मिल भी जाए तो आप ज़्यादा देर तक उसके कार्यक्रम सहन नहीं कर सकेंगे।

डीडीआई को विश्व स्तरीय प्रसारण सेवा बनने से क्या चीज़ रोक रही है, जबकि भारत और विश्व को उसकी आवश्यकता है? उत्तर है– वही बातें जो दूरदर्शन और आकाशवाणी को भारी-भरकम, फीकी, निर्जीव और श्रोताओं तथा दर्शकों के लिए अंतिम चारे के तौर पर मज़बूरी में देखा-सुना जाने वाला प्रसारण माध्यम बनाते हैं। इसमें भारत की गलती तो है ही, अंग्रेज़ी शासक भी इसके लिए कम दोषी नहीं है, कम-से-कम समस्या की शुरुआत के लिए तो उन्हें दोषी ठहराया जा सकता है।

1920 के दशक में जब रेडियो की धुन लोगों के दिलों में घर बनाने लगी, तो इस नये माध्यम का अनुभव ब्रिटेन और भारत में कुछ अलग-सा रहा। स्थितियां आज जैसी ही थीं किसी को पता नहीं था कि समाचार माध्यम कहां जा रहे हैं? और नया-नया आया रेडियो, ब्रिटिश शासकों को विशेष रूप से ख़तरनाक लग रहा था। उन्हें डर था कि यदि यह गलत हाथों में पड़ गया तो, भारी समस्या खड़ी हो सकती है।

यूरोप और अमरीका में जिन कंपनियों ने प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान इस इलेक्ट्रॉनिक विशेषज्ञता का विकास किया था, वे रेडियो सेटों से पैसे कमाने का तरीक़ा ढूंढ रहे थे और जो सबसे सरल तरीक़ा था, वह था मनोरंजन के व्यवसाय में जगह बनाना, ताकि लोगों को अपना रेडियो ख़रीदने का कारण मिल सके।

ब्रिटेन में जॉन रीथ नाम के स्फटिश मूल के एक जटिल शख्सियत को 1922 में ब्रिटिश ब्रॉडकॉस्टिंग कंपनी चलाने का अवसर मिला। यह कंपनी रेडियो सेटों के निर्माताओं का एक संगठन था, जो ऐसे कार्यक्रम तैयार करने के लिए गठित किया गया था, जिससे लोग रेडियो ख़रीदने के लिए लालायित हों (http:/www.bbc.co.uk/historyofthebbc/resources/indepth/veith5.5html)। पांच वर्षों में रेडियो ने अपनी जगह बना ली। 1927 में, जब वायु तरंगों के उपयोग का ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कंपनी की लाइसेंस की अवधि समाप्त हो गई, तो रीथ ने सरकार के नियंत्रण से परे स्वतंत्र बोर्ड वाली सरकारी एकाधिकार वाली एक प्रसारण कंपनी- ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कार्पोरेशन के गठन की आवाज़ बुलंद की। संभवतः बीबीसी की स्वतंत्रता स्थापित करने में सबसे महत्वपूर्ण घटना 1926 की आम हड़ताल रही। इस हड़ताल की निष्पक्ष कवरेज से बीबीसी ने व्यापक सम्मान अर्जित किया। प्रतिस्पर्धा के भय से आशंकित समाचार-पत्रों के विरोध के बावजूद अपनी स्वयं की समाचार सेवा और उसको प्राप्त करने तथा प्रेषित करने के प्रसारक के अधिकार को स्वीकार कर लिया गया।

यहां यह देखना उचित होगा कि जिस समय रीथ और उसके सहयोगी बीबीसी मॉडल स्थापित करने हेतु संघर्ष कर रहे थे, भारतीय रेडियों का किस प्रकार विकास हो रहा था। भारत के रेडियो ने बीबीसी से बहुत कुछ ग्रहण किया है, परंतु बीबीसी पैकेज के महत्वपूर्ण तत्व उसमें नहीं दिखाई देते। संभवतः उसके बारे में कभी गंभीरता से प्रयास ही नहीं किया गया।

1927 वह वर्ष था जब अमरीका में फेडरल कम्युनिकेशंस कमीशन (संघीय संचार आयोग-एफसीसी) और ब्रिटेन में ब्रिटिश ब्रॉडकॉस्टिंग कार्पोरेशन की स्थापना हुई। पहले

पहल भारत में भी उसी वर्ष रेडियो स्टेशन खुले जो नियमित रूप से निर्धारित विवरण के अनुसार कार्यक्रम प्रसारित किया करते थे। वे वाणिज्यिक प्रयास थे, जो असफल साबित हुए। भारत सरकार ने इंडियन ब्रॉडकास्टिंग कंपनी का अधिग्रहण कर लिया और 1931 में इसे बंद करने का प्रयास भी किया। किंतु जब 1932 में बीबीसी ने शार्टवेब पर वैश्विक प्रसारण सेवा शुरू की तो बेमन से उसे चालू रहने दिया गया। भारत में रह रहे अंग्रेज़ों ने अपने 'घर' अर्थात मूल स्थान/देश से जुड़े रहने के लिए रेडियो सेट ख़रीदे।

ब्रिटेन में, रीथ इस बात पर ज़ोर दे रहे थे कि भारत में रेडियो सेवा का विकास ब्रिटिश हित में है। उनके अनुसार लोगों से संप्रेषण और शिक्षा का यह सही अवसर था। इसके विपरीत, भारत में कार्यरत दकियानूस ब्रिटिश सिविल सेवा से जुड़े अधिकारी इसे अशांति, अफ़वाह और देशद्रोह की भावना फैलाने वाले एक ख़तरनाक साधन के रूप में देख रहे थे। फ़िल्में और अख़बार वैसे ही काफी समस्याएं पैदा कर रहे थे।

इस सबके बावजूद रीथ के प्रयासों के फलस्वरूप बीबीसी के एक अधिकारी लियोनेल फील्डेन को 1930 के दशक के मध्य में प्रसारण नियंत्रक के रूप में भारत भेजा गया। वे नेहरू और गांधी के संपर्क में आए तो ब्रिटिश अधिकारियों को खटकने लगे। परंतु 'आल इंडिया रेडियो' के नाम का अनुमोदन कराने में वे सफल रहे। 1940 में जब वे भारत छोड़कर गए तो, कहा जाता है, उस समय भारत में 1,00000 रेडियो सेट थे और नौ शहरों तथा कस्बों में रेडियो स्टेशन (प्रसारण केंद्र) थे। यह कोई मीडिया के प्रति दीवानगी नहीं थी : 1941 में भारत की जनसंख्या 40 करोड़ थी– प्रति 4 हज़ार लोगों पर एक रेडियो ही था।

भारत में रेडियो का प्रारंभिक इतिहास इंडोनेशिया और फिलीपींस से बिल्कुल उलटा था। इंडोनेशिया (तब का नीदरलैंड ईस्ट इंडीज़) में, नीदरलैंड (हालैंड) की फिलिप्स कंपनी ने औपनिवेशक सरकार को रेडियो प्रसारण को प्रोत्साहन देने के लिए तैयार किया। जापानी 1942 में जब वहां पहुंचे तो वह पूरे द्वीप समूह में फैल चुका था। फिलीपींस में अमरीकी शासकों ने वाणिज्यिक आधार पर एक रेडियो प्रणाली प्रारंभ करने की अनुमति दी, जो द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व तक काफी उन्नति कर चुका था। दूसरी ओर, भारत में नेहरू सरकार को 1947 में उत्तराधिकार में कठोर नियंत्रण वाला अत्यंत सीमित ऑल इंडिया रेडियो (एआईआर) मिला। वल्लभ भाई पटेल ने 1950 में अपनी मृत्यु होने तक इसे अपने अधीन ही रखा। पटेल के प्रारंभिक आदेशों में एक था एआईआर पर ऐसे कलाकारों पर प्रतिबंध लगाना जिसका व्यक्तिगत जीवन बदनामी से भरा हो। सूचना और प्रसारण मंत्रालय में वल्लभ भाई पटेल के दो उत्तराधिकारी– आर.आर. दिवाकर (1950–52) और बहुचर्चित बी.वी. केसकर (1952–62), दोनों ही आभिजात गांधीवादी थे।

केसकर के अधीन मंत्रालय की पदावनति हो गई और उच्च वर्ग को पसंद आने वाले कार्यक्रम ही प्रसारित होने लगे। 1966 में प्रसारण संबंधी समस्याओं के अध्ययन के लिए बना चंद्रा आयोग ने स्पष्ट तौर पर कहा कि ''क्रमिक रूप से सभी मंत्रियों ने महानिदेशक के नीतिगत कार्यों को अपने हाथों में ले रखा है और वे कार्यक्रमों की योजना बनाने तथा प्रस्तुतिकरण जैसे मामलों में भी हस्तक्षेप करने लगे हैं।'' केसकर ने फ़िल्म संगीत पर प्रतिबंध लगा दिया और इस प्रकार रेडियो सीलोन को 1960 के दशक में अधिकांश दक्षिण एशिया का चहेता रेडियो स्टेशन बनने का अवसर दे दिया।

श्रोताओं पर अभिजात्य संस्कृति थोपने के मामले में केसकर और रीथ में कुछ बातें एक जैसी थीं। रीथ का कहना था कि ''जर्मनी ने जैज़ (संगीत) को प्रतिबंधित कर दिया और मुझे दुख है कि आधुनिकता के इस अभद्र उत्पाद से निपटने में हम पीछे रह जाएंगे।''

परंतु रीथ ने कुछ ऐसा कर दिखाया जो भारतीय रेडियों में कोई नहीं कर सका। बीपीसी ने एक ऐसी बीबीसी समाचार और मनोरंजन सेवा स्थापित की जो काफी हद तक सरकारी हस्तक्षेप से मुक्त थी। भारत में ऐसा करने की कोई इच्छा ही नहीं थी। ऑल इंडिया रेडियो ब्रिटिश सरकार की एक कठपुतली रही थी। तो फिर भारत सरकार की क्यों नहीं?

बहरहाल, स्वतंत्रता के समय भारत में भयानक सांप्रदायिक दंगे हुए और उसे साम्यवादी उपद्रवों से भी जूझना पड़ा। कांग्रेस पार्टी में रेडियो की संभावनाओं के बारे में जो परिकल्पना थी, वह कुछ-कुछ सोवियत मॉडल जैसी थी। किसानों और कृषि कार्य से जुड़े अन्य लोगों के लिए शिक्षात्मक कार्यक्रमों के प्रसारण के अलावा लोगों को सुसंस्कृत बनाने के लिए उच्च स्तरीय सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रसारित किए जाने चाहिए। सरकारी तौर पर अनुमोदित 'समाचार' के अतिरिक्त श्रोताओं को और कुछ जानने के लिए परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। जन प्रतिनिधि एक बार जब समाचारों के प्रस्तुतिकरण के खास तरीक़े के आदी हो गए तो उसे प्राप्त होने वाले आनंद और शक्ति को त्यागने का तो कोई सवाल नहीं था। किसी टेलीविज़न केंद्र अथवा समाचार-पत्र पर नियंत्रण तथा अपने ही ज्ञान में जूझने के आनंद का कोई विकल्प नहीं है। अपने मित्रों को बढ़ावा और शत्रुओं या प्रतिद्वंद्वियों को चकनाचूर करने का भी अपना अलग ही आनंद है। वर्ष 2013 में, जो दर्जनों छोटे-छोटे समाचार चैनल और हल्के-फुल्के थोथे समाचार-पत्र उभरकर आए हैं, वे इस तथ्य की तसदीक करते हैं।

इस प्रकार, अपनी फ़िल्मों के लिए विश्व प्रसिद्ध भारत में एक ऐसी टेलीविज़न और रेडियो व्यवस्था ने अपने पैर जमा लिए, जिसमें दुनियाभर की खामियां थीं : सरकारी एकाधिकार, प्रशासनिक सेवा मूल्यों में गहराई तक रचा-बसा और प्रोग्रामिंग (कार्यक्रमों के निर्धारण) के तालमेल में राजनेताओं के हस्तक्षेप से परिपूर्ण।

टेलीविज़न में एकाधिकार, 1991 में कानून से परे उपग्रहों के आगमन से टूटा। प्रारंभ में भारत में तैयार कार्यक्रम हॉगकॉग और रूस, विमान से भेजे जाते थे, जो भारत में उपग्रह के ज़रिये प्रसारित किए जाते थे। इन कार्यक्रमों को स्थानीय उद्यमियों द्वारा लगाए गए 'डिश' पर 'कैप्चर' किया जाता था, जिसे पड़ोसी ग्राहकों के घर तक तांबे के तारों के ज़रिये पहुंचाया जाता था। 1885 में जब इंडियन टेलीग्राफ अधिनियम बना था, जब इस सबकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी और इस लिहाज़ से यह एक शानदार अवैधानिक अपराध अथवा कम-से-कम 'गैर-कानूनी' काम था।

तभी से टेलीविज़न एक ऐसा क्षेत्र बन गया है जहां उद्यमी प्रायः कुछ भी दिखाने

की हद तक चले जाते हैं और यह अक्सर अधिकारियों के नियंत्रण से परे रहता है। इसके विपरीत, रेडियो पर अभी भी सरकारी नियंत्रण बना हुआ है। केवल सरकारी केंद्रों से ही समाचार और सामयिक कार्यक्रमों के प्रसारण की अनुमति है। निजी एफएम स्टेशन केवल संगीत और मनोरंजन के कार्यक्रम प्रसारित करते हैं, वे सार्वजनिक मामलों अर्थात समाचार या समाचार आधारित कार्यक्रमों का प्रसारण नहीं करते। सही तौर पर देखा जाए तो ऐसा क्या है जो प्रसार भारती को एक ऐसी लोक प्रसारण सेवा चलाने से रोकती है, जो किसी भी कोने में रह रहे विचारशील लोगों के लिए ईर्ष्या का विषय बन सकती है?

सबसे पहले, इसकी संरचना। 1997 में जब प्रसार भारतीय का गठन हुआ तो राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों ने यह सुनिश्चित किया कि इसके गले में एक फंदा कसा ही रहेगा। अध्यक्ष और सीईओ (मुख्य कार्यकारी अधिकारी) की नियुक्ति भारत के उपराष्ट्रपति (राज्यसभा के सभापति के रूप में), भारतीय प्रेस परिषद के अध्यक्ष और राष्ट्रपति द्वारा नामित शख्सियत की तीन सदस्यीय समिति द्वारा दिए गए परामर्श के अनुसार प्रधानमंत्री करते हैं। यही समिति सीईओ के नाम की भी सिफ़ारिश करती है, परंतु उसकी पुष्टि मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति द्वारा होनी आवश्यक है।

इसके विपरीत, बीबीसी के महानिदेशक की नियुक्ति बीबीसी के ट्रस्टी करते हैं, जिनका खुद का चयन विज्ञापन और भारती की प्रक्रिया से गुज़रकर होता है। हालांकि उनके नामों की सिफ़ारिश अंततः मौजूदा सरकार ही करती है।

इस प्रकार, प्रसार भारती के अध्यक्ष और मुख्य कार्यकारी अधिकारी की नियुक्ति गैर-विशेषज्ञों की एक छोटी-सी समिति करती है। पर यह आवश्यक नहीं कि कमज़ोर और अनुपयुक्त नियुक्तियां की जाएं। किंतु प्रसार भारती बोर्ड की आधी नियुक्तियां भारत के राष्ट्रपति करते हैं, इसलिए संभावना यही रहती है कि वे मौजूदा सरकार के पसंदीदा व्यक्ति हों। शेष सभी, अपने पद के आधार पर सदस्य बनते हैं और ये सभी नौकरशाह होते हैं। इस प्रकार का बोर्ड, दूरदर्शन और आकाशवाणी में प्रचलित कार्यपद्धति से हटकर कुछ करना पसंद नहीं कर सकता। यह चारित्रिक गुण समाचारों के भूखे लोगों का न होकर एक ऊंघते कोआला (एक प्रकार का पशु) का है।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि वेतन और नियुक्तियां सभी सूचना प्रसारण मंत्रालय से ही होती हैं। कहा जाता है कि बोर्ड के अध्यक्ष, सीईओ और अन्य सदस्यों को एक टैक्सी का उपयोग करने के लिए भी एक नौकरशाह से अनुमति लेनी होती है। प्रसार भारती का बजट, जो ज़्यादातर वेतन के भुगतान पर ही व्यय हो जाता है, सूचना और प्रसारण मंत्रालय से ही प्राप्त होता है। प्रत्येक कर्मचारी एक सरकारी कर्मचारी होता है जिसे प्रतिनियुक्ति के तौर पर आए कर्मचारी के रूप में देखा जाता है। उसका वेतनमान और सुरक्षा (सेवा शर्तें) ठीक वैसी होती है जैसी किसी सरकारी कर्मचारी की। इसके विपरीत, ऑस्ट्रेलियन ब्रॉडकास्टिंग कार्पोरेशन (एबीसी) का वार्षिक बजट का अनुमोदन संसद करती है और उसे सीधा एबीसी की कार्यकारिणी के पास अपने बोर्ड और सीईओ के निर्देशानुसार व्यय करने के लिए भेज दिया जाता है।

प्रसार भारती अधिनियम की धारा 32 से 35 के तहत केंद्र सरकार को ऐसे अधिकार प्राप्त हैं कि वह जब चाहे संगठन का गला घोंट सकती है। प्रसार भारती में केवल आवश्यकता से अधिक नियम और कानून ही नहीं है, कुछ मामलों में इसमें जहां आवश्यकता से अधिक कर्मचारी हैं तो कहीं-कहीं ज़रूरत से बहुत कम। इंडिया ऑन टेलीविज़न के लेखक नलिन मेहता, अपनी शीघ्र प्रकाशय पुस्तक में कहते हैं कि प्रसार भारती में 33,000 कर्मचारी हैं, जो विश्व में किसी भी लोक प्रसारक के कर्मचारियों की संख्या से अधिक हैं। इसमें स्वीकृत पदों की कुल संख्या 48,000 हैं और 15,000 पद रिक्त पड़े हैं। 16,000 से अधिक पद केवल प्रशासन और वित्त विभागों के लिए ही स्वीकृत हैं।

इस भारी-भरकम संख्या का औचित्य भी है, क्योंकि प्रसार भारती 24 भारतीय भाषाओं में प्रसारण करता है और 220 प्रसारण (रेडियो) केंद्र और 1,000 टेलीविजन ट्रांसमीटर चलाता है। इस सबके बावजूद माना जाता है कि दूरदर्शन और आकाशवाणी में उत्पादकता उतनी ही निम्न स्तर की है जितना मनोबल।

भारत की प्रतिष्ठा के अनुकूल प्रसार भारती को विश्व स्तरीय संगठन बनाने में जिन बातों की आवश्यकता है वे निम्न हैं :

- सूचना और प्रसारण मंत्रालय के हस्तक्षेप से पूर्ण रूप से मुक्त सीधा संसद से प्राप्त बजट।
- व्यापक आधार वाली अध्यक्ष और बोर्ड की नियुक्ति की पद्धति।
- सार्वजनिक विज्ञापन के बाद बोर्ड द्वारा नियुक्त सीईओ।
- प्रसार भारती बोर्ड द्वारा निर्धारित वेतनमान और सेवा शर्तें, जो भारत सरकार के नियम-कायदे से बंधे नहीं हों।
- विदेशी सहित बोर्ड जिसे उचित और उपयुक्त समझे उसकी नियुक्ति की पात्रता (चीनी टेलीविज़न में विदेशियों को काम पर रखने में कोई हिचक नहीं है)।

इससे भारत को क्या लाभ होगा? घरेलू स्तर पर, मानक निर्धारित करने वाला एक ऐसा मीडिया संगठन, जिसके स्तर तक पहुंचने के लिए निजी स्वामित्व वाले संगठनों को प्रयास करना पड़े। वर्ष 2013 में, चाहे समाचार हो या मनोरंजन, दूरदर्शन और आकाशवाणी को मीडिया प्रोफेशनल्स में शायद ही गंभीरता से लिया जाता है। अन्य देशों में तो, लोक सेवा प्रसारक प्रायः वह स्थान होता है, जहां प्रतिभाशाली लोगों का विकास होता है और जिनको अपनी ओर खींचने तथा वे मूल्य अर्जित करने के लिए निजी संगठनों में बेचैनी रहती है। भारत में इसके ठीक उलट है : प्रसार भारती बाहरी प्रतिभाओं को काम पर रखकर अपने को अनुप्राणित करने का कठिन और सीमित प्रयास करता है।

बंधनमुक्त प्रसार भारती अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की एक ऐसी 'सॉफ्टपॉवर' आवाज़ बन सकता है जिसका कोई सानी नहीं है। विश्व में अनेक स्थानों में मीडिया संगठन, समाचार-पत्रों, रेडियो और टेलीविज़न के अनुसार अपनी परिभाषा फिर से लिख रहे हैं। भारत की प्रतिभाएं, अनुभव, गुट-निरपेक्ष और परंपरा, भाषाई क्षमता विश्व को एक ऐसा समाचार स्रोत देने की क्षमता रखते हैं, जिससे पार पाना कठिन है। साथ ही देश की जनता को विश्वसनीय समाचारों और सजीव मनोरंजन का एक समर्थक और श्रेष्ठ साधन भी प्राप्त हो सकेगा। ❑

(लेखक सिंगापुर की नेशनल यूनिवर्सिटी के इंस्टीट्यूट ऑफ साउथ एशिया स्टडीज़ में अतिथि अनुसंधान प्राध्यापक हैं।

ई-मेल : robin.jeffrey514@gmail.com)

राष्ट्र की प्रतिभा पूंजी का विकास

● के.पी. मोहनन

एडम स्मिथ के अर्थशास्त्र के दायरे में अगर किसी राष्ट्र की संपदा मापनी है तो इसे सकल घरेलू उत्पाद द्वारा मापिए (व्यापार में प्रवाहित होने वाली मुद्रा, जिससे उत्पाद और सेवाएं ख़रीदी जाती हैं, पूंजी शब्द से तात्पर्य समझा जाता है वित्तीय पूंजी)। तथापि इस बात की मान्यता बढ़ रही कि प्रत्यक्ष पूंजी में शामिल होने वाला घटक सिर्फ़ एक ही नहीं है। हमें इसमें प्रत्यक्ष पूंजी को भी शामिल करने की ज़रूरत है, जिसमें प्राकृतिक संसाधन आएंगे और अगर प्रत्यक्ष से आगे की बात करें तो हमें मानव पूंजी को भी शामिल करने की ज़रूरत है, जिसमें सामाजिक पूंजी और ज्ञान पूंजी भी शामिल है।

असंभव नहीं कि भविष्य में अर्थशास्त्र की प्रमुख धारा से किसी देश की संपदा के विचार को भी जोड़ दिया जाएगा, जिसमें अरस्तू या महात्मा बुद्ध जैसे लोगों को भी शामिल किया जाएगा, जो किसी समाज के कल्याण वर्ग में आएंगे। इसके अनुसार ऐसे अर्थशास्त्र की तलाश करनी होगी, जो व्यापार से कम, नैतिकता में ज़्यादा मिले और समाज कल्याण को वास्तविक संपदा माना जाए। अगर ऐसा होता है तो किसी राष्ट्र की संपदा को बरक़रार रखना और बढ़ाने में नैतिक और नागरिक पूंजी की ज़रूरत होगी। यहां मैं सिर्फ़ उस धन की नहीं बल्कि धन बनाम सामाजिक कल्याण की बात कर रहा हूं। मैं सीमित रहकर सामान्य बात करूंगा। अगर इस सवाल को टाल दिया जाए कि क्या किसी राष्ट्र की संपदा को सघउ के ज़रिये मापना कानूनी है तो मैं प्रतिभा पूंजी के विचार की छानबीन करूंगा क्योंकि यह उत्पाद और सेवाओं में लाभ वृद्धि करने की दिशा में एक ज़रूरी घटक है।

ज्ञान पूंजी बनाम प्रतिभा पूंजी

संपदा का विचार अर्थव्यवस्था की मुख्यधारा में ग़रीबी में समाया है। इसीलिए ज्ञान और ज्ञान प्रतिभा सरकार और शिक्षा जैसे शब्द ज्ञान के प्रतीक बन गए हैं। इस बहस में ज्ञान का इशारा सूचना और तक़नीकी जानकारी की तरफ है, दुनिया को समझने की तरफ नहीं। उदाहरण के लिए इस बात को मान्यता नहीं दी जाती कि क्वैंटम मैकेनिक्स और सापेक्ष सिद्धांत को समझना भी किसी राष्ट्र की ज्ञान पूंजी का एक अंग है। अनेक लोग महसूस नहीं करते कि परमाणु बम बनाने और परमाणु संयंत्रों की देख-रेख करने के लिए क्वैंटम मैकेनिक्स की ज़रूरत पड़ती है, ग्लोबल पोजीशिनिंग सिस्टम (जीपीएस) के निर्माण के लिए आइंस्टीन का ज्ञान का सिद्धांत जानना ज़रूरी है (न्यूटन का सिद्धांत इस संदर्भ में विपरीत पडेगा), या फिर अगर ऐलेन टूरिंग के काम की हमें जानकारी न होती तो अंकगणित में ऑटोमाटा की जानकारी न होती।

अब ज्ञान भी अप्रयुक्त धन जैसा है। किसी देश की संपदा बढ़ाने और उसे बरक़रार रखने के लिए ज्ञान की ज़रूरत है और ज्ञान के लिए प्रतिभा चाहिए ताकि ज्ञान का मूल्यांकन किया जा सके और ज्ञान से नये ज्ञान की प्राप्ति की जा सके। इसका मतलब यह है कि अगर हम आर्थिक विकास को सकल घरेलू उत्पाद के संदर्भ में मापना चाहें तो हमें अर्थव्यवस्था से आगे जाकर ज्ञान पूंजी की परख करनी होगी और प्रतिभा अर्थव्यवस्था तथा प्रतिभा पूंजी को जानने की ज़रूरत पड़ेगी।

प्रतिभा, शिक्षा और प्रतिभा पूंजी

प्रतिभा को इस प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है- किसी काम को दिमाग के सहारे करने की क्षमता जो शारीरिक क्षमता के निकट हो। शारीरिक क्षमता, शक्ति और गति तथा पौरूष के विकास के लिए हमें पोषक तत्वों और व्यायाम की ज़रूरत पड़ती है। इसी तरीक़े से हमें बुद्धि की क्षमता, शक्ति, गति तथा विकास के लिए मानसिक पोषण और मानसिक व्यायाम की ज़रूरत पड़ती है। मानसिक पोषण ज्ञान से मिलता है, जिसका पूरक मानसिक व्यायाम बनता है। यह मस्तिष्क के गुण विकसित करता है, जिसे हम प्रतिभा कहते हैं।

प्रतिभा शब्द को अब आईक्यू प्राप्तांकों के साथ जोड़कर देखा जाता है और इसमें हम वह चुस्ती देखते हैं, जो इंटरव्यू लेने वाले बोर्ड को प्रभावित कर सके। इसीलिए हमें यह स्पष्ट कर देने की ज़रूरत है कि हम मानसिक क्षमता में मस्तिष्क के ज़रिये कुछ कर सकने की मानसिक क्षमता को शामिल करते हैं।

पहला तो यह कि प्रतिभा से मेरा मतलब किसी व्यक्ति की मानसिक क्षमता से है, जिसे उसने सीखकर मूर्त रूप दिया है। इसमें वे क्षमताएं शामिल नहीं है जो छिपी होती हैं। इस अर्थ में एक व्यावसायिक गणितज्ञ में हाई स्कूल छात्र के मुक़ाबले गणित संबंधी प्रतिभा ज़्यादा हो। हालांकि हाई स्कूल छात्र की गणित प्रतिभा पांच वर्ष के बच्चे की प्रतिभा से ज्यादा होगी।

दूसरे यह कि मान लेते हैं कि हर व्यक्ति की संभावित प्रतिभा अलग-अलग होती है। किसी देश की प्रतिभा पूंजी में सार्थक यह बात होगी कि कितनी प्रतिभा को वास्तविक रूप दिया जा सकता है। इसमें किसी व्यक्ति की आनुवंशिक संभावित क्षमता, शारीरिक शक्ति, गति और पौरूष को व्यवस्थित रूप से प्रयास करके पुष्ट करने की ज़रूरत पड़ती है। यही बात मानसिक क्षमताओं पर भी लागू होती है।

तीसरे प्रतिभा में स्मरण शक्ति भी शामिल होती है, जिसमें ज्ञान, सूचना और अनुभव को शामिल किया जाता है। उदाहरण के लिए स्टेम सेल रिसर्च की कानून के हिसाब से वैधता पर सिफ़ारिश या फ़ैसला करने के लिए हमें कानूनी और नैतिक कारकों को संतुलित करना होगा और इस प्रकार से निर्णय करने की

ज़रूरत को कानूनी और नैतिक जिज्ञासा की ज़रूरत पड़ती है जो जीव विज्ञान के ज्ञान में निहित होती है, जीव विज्ञान, औषधि विज्ञान और अनुभव में निहित होती है। जब इन सभी बातों को एक में मिला दिया जाता है तो वही मेरे हिसाब से प्रतिभा कही जाएगी।

मान लीजिए हम प्रतिभा को ऐसी अवधारणा मान लेते हैं, जिसमें बुद्धि के साथ काम करने की क्षमता शामिल है। मान लीजिए कि हम ये भी स्वीकार कर लेते हैं कि शिक्षा का कार्य क्षमता निर्माण होता है। इसके बाद शिक्षा की प्रारंभिक जिम्मेदारी की बात आएगी, जिसका काम है कम आयु के बच्चों की प्रतिभा बढ़ाना और उनकी संभावित प्रतिभा को वास्तविक प्रतिभा के रूप में विकसित करने में सहायता करना। इस तरह से किसी राष्ट्र की प्रतिभा पूंजी संवर्धन में इसे योगदान कहा जाएगा।

प्रतिभा की बहुरूपता

इस सवाल का जवाब देने के लिए कि हम किसी राष्ट्र की प्रतिभा पूंजी में वृद्धि कैसे कर सकते है, पहला क़दम यह होगा कि हम यह मंजूर करें कि मानव प्रतिभा के अनेक पक्ष होते हैं। जैसा कि हावर्ड गार्डनर ने अपनी पुस्तक- *फेम्स ऑफ माइंड्स, द थ्योरी ऑफ मल्टीपल इंटेलीजेंस* में कहा है, विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार की प्रतिभाएं पाई जाती हैं। किसी में मुद्रा संबंधी प्रतिभा होती है तो किसी में डिजाइन करने की कला और कोई संगीतज्ञ होता है तो गणितज्ञ। इस प्रकार से हर व्यक्ति की प्रतिभा अलग-अलग प्रकार की होती है।

गार्डनर ने प्रतिभा को कई वर्गों में विभाजित किया है, जैसे भाषा संबंधी प्रतिभा, गणित, तर्क संबंधी प्रतिभा। शरीर विज्ञान संबंधी प्रतिभा, संगीत संबंधी प्रतिभा, अंतर व्यक्तिगत प्रतिभा और व्यक्ति विज्ञान (इंट्रा पर्सनल संबंधी प्रतिभा) अगर इन वर्गो को संक्षेप में देखें तो स्पष्ट होगा कि मानव प्रतिभा बहुपक्षीय होती है। उदाहरण के लिए गणित संबंधी प्रतिभा को लीजिए। इसमें निम्नलिखित प्रकार की क्षमताएं होनी चाहिए :

- गणित संबंधी चीजों के गुण-दोष पर विचार, उनके संबंधों और संचालनों की छानबीन करना। इनके लिए उसे बाहरी प्रशिक्षण का सहारा लेना या फिर अपनी निहित प्रतिभा को विकसित करना होगा।
- उपर्युक्त परिभाषाएं गढ़ना।
- उन पर काम करना और उनसे जुड़ी बातों को उद्घाटित करना।
- यह साबित करना कि वह परिभाषाओं और पहले ही सिद्ध किए जा चुके सिद्धांतों के परिणाम हैं।
- पदार्थो, गुणों, संबंधों और बाहरी दुनिया की प्रक्रियाओं के गणित संबंधी मॉडल तैयार करना और उनके तार्क़िक परिणाम/पूर्वानुमानों को सिद्ध करना।

इन क्षमताओं को गार्डनर के तार्क़िक गणितीय प्रतिभा के अंर्तगत समझा जा सकता है, तो क्या हमारे पास ऐसा कोई साक्ष्य है जिसके आधार पर हम विश्वास करें कि ये क्षमताएं एक ही प्रतिभा के अनेक रूप है और ये आपस में जुड़ी हुई हैं? प्रसिद्ध भारतीय गणितज्ञ रामानुजम ने एक मामले में कहा था कि जुड़ी बातों को उजागर करने की उनमें प्रतिभा है, लेकिन इन संबद्ध बातों को साबित करने की स्पष्ट क्षमता उनमें नहीं है। इस प्रकार के उदाहरणों से साबित होता कि किसी व्यक्ति में विलक्षण प्रतिभा हो सकती है, लेकिन सभी में नहीं।

अगर हम इस खास बात को उस प्रतिभा पर लागू करें जो गणित और तर्कशास्त्र में काम आती है, यह स्पष्ट होगा कि उच्च स्तर का गणितज्ञ वहीं हो सकता है, जिसमें तार्क़िक ढंग से सोचने की बुनियादी क्षमता हो। लेकिन इसका मतलब ये नहीं कि उसमें उस प्रकार की प्रतिभा और बुद्धिमत्ता होनी चाहिए जो किसी व्यक्ति को उच्च श्रेणी का तार्क़िक अथवा उच्च श्रेणी का गणितज्ञ बनाते हैं और दोनों एक ही हैं।

क्या वैज्ञानिक जिज्ञासा और गणित संबंधी प्रतिभा की बुद्धिमत्ता एक ही है? यह सही है कि किसी गणितज्ञ अथवा दार्शनिक में परिभाषाओं के साथ काम करने की क्षमता होनी चाहिए, लेकिन वैज्ञानिकों में पर्यवेक्षण संबंधी प्रतिभा उच्च श्रेणी की होती है, जो तार्किक और गणितज्ञ बनने के लिए ज़रूरी नहीं। इसी तरह से यह स्पष्ट नहीं है कि परीक्षण करने वाले वैज्ञानिक और सिद्धांत जानने वाले वैज्ञानिकों को जिस प्रकार की प्रतिभाओं की आवश्यकता है वह समान हैं। अगर हम थोड़ी देर के लिए मान लें कि आइंस्टीन और हबल महान वैज्ञानिक थे। हो सकता है कि हबल में भौतिक विज्ञान के सिद्धांतों की जानकारी न हो, लेकिन कोई प्रतिभाशाली जीव वैज्ञानिक भी उतना ही बड़ा और प्रतिभाशाली भौतिक विज्ञानी नहीं बन सकता।

कोई ऐसा व्यक्ति जो छात्रों को उनकी पढ़ाई-लिखाई की जिज्ञासा और ज्ञान की क्षमता विकसित करने में सहायता देने को समर्पित है, लेकिन उसे तजुर्बे से मालूम होगा कि हर छात्र में इस प्रकार की क्षमताएं विभिन्न स्तर की हो सकती है। ये क्षमताएं वास्तविक और संभावित दोनों प्रकार की हो सकती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि अन्य प्रकार की प्रतिभाओं में वैसी ही विभिन्नता हो सकती है। संगीत संबंधी प्रतिभा के अंदर गाने की क्षमता और संगीत तैयार करने की क्षमता के लिए भिन्न प्रकार की क्षमताओं की ज़रूरत होगी। स्पष्ट है कि किसी शोध संस्थान के प्रबंधन और मैक्डोनॉल्ड की दुकान के प्रबंधन के लिए अलग-अलग प्रकार की प्रतिभा की ज़रूरत पड़ेगी।

प्रतिभा का पोषण

मान लीजिए कि हम गार्डनर वर्गों से आगे की मानसिक क्षमताओं की बहुपक्षीयता के विचार को स्वीकार कर लेते हैं। तो हम किसी उस शिक्षा व्यवस्था का डिजाइन कैसे तैयार करेंगे, जो छात्रों को उस प्रतिभा के विकास में सहायता देती है, जो हमारे व्यावसायिकों, आमजन और निजी जीवन में ज़रूरी होती है?

यह महत्वपूर्ण है कि कुछ व्यावसायिक कोर्सों (जैस-औषधि विज्ञान, दंत विज्ञान या फैशन डिज़ाइन) में यह संभव नहीं होता कि हम स्कूल अथवा कॉलेज स्नातकों में प्रतिभा को पहचान सकें कि वह इन व्यवसायों में जाने के उपयुक्त हैं या नहीं। भौतिक विज्ञान का एक स्नातक मंत्री भी हो सकता है, बैंकर भी हो सकता है, पत्रकार भी हो सकता और कोई ज़रूरी नहीं वह सिर्फ भौतिक विज्ञान में शोधकर्ता ही बनें। यहां तक कि आईआईटी से निकला हुआ एक स्नातक सिविल सर्वेंट बन सकता है अथवा किसी कार्यालय का सीईओ, जिसके लिए इंजीनियरिंग कौशल अथवा इंजीनियरिंग के ज्ञान की कोई ज़रूरत नहीं। अगर इस स्थिति पर ध्यान दें तो यह व्यावहरिक लगेगा कि छात्रों को किसी विशेष व्यवसाय के लिए प्रशिक्षण देना अथवा विशेष प्रकार के उच्च अध्ययन के लिए तैयार करने से बेहतर होगा कि उनमें विभिन्न प्रकार की

प्रतिभाओं का विकास किया जाए, जो एक दूसरे के क्षेत्र में स्थानांतरित नहीं की जा सकतीं। गणित के समीकरण सुलझाने का कौशल गणित के स्नातक अध्ययन में भी ज़रूरी हो सकता है। लेकिन तब वह ज़रूरी नहीं होगा, जब वहीं छात्र किसी बैंक का मैनेजर बन जाता है अथवा आईएएस अफसर बन जाता है, लेकिन तर्क़ संबंधी विरोधाभासों का पता लगाने की क्षमता अच्छी गणित शिक्षा के ज़रिये पैदा की जा सकती है हालांकि यह किसी व्यवसाय के लिए स्थानांतरित करने योग्य नहीं होती। इसी तरह से गणित संबंधी साक्ष्य की परीक्षा पास करने की योग्यता जब सामान्यीकृत कर दी जाती है। तो किसी भी क्षेत्र में चरणबद्ध तरीक़े से परीक्षा करने की क्षमता विकसित करेगी। अगर किसी जीव विज्ञान की प्रयोगशाला में मेढ़क डाइसेक्ट करने की कला में माहिर छात्र की बुद्धिमत्ता भविष्य में उसे मनोरोग प्रशिक्षक या प्रशासक बनने पर संगत नहीं होगी, लेकिन छोटे-छोटे दावों के निपटारे की क्षमता का डिज़ाइन बनाते समय यह प्रतिभा संगत हो सकती है। गणित संबंधी गणनाएं करना किसी सांख्यिकी वैज्ञानिक के लिए ज़रूरी नहीं होगा, लेकिन यह गुण उन्हें अपने व्यवसाय में किसी घटना का अनुमान लगाने में सहायक हो सकती है। किसी चिकित्सक के लिए प्लेटो का पुनर्जन्म का सिद्धांत विस्तार से जानना ज़रूरी नहीं है, लेकिन नैतिक और व्यावहारिक मूल्यों संबंधी फ़ैसले करते समय ये उपयोगी हो सकते हैं। यह शिक्षा की जिम्मेदारी है कि वह किसी राष्ट्र की बौद्धिक क्षमता में स्थानांतरित करने योग्य क्षमता विकसित करने में राष्ट्र की संपदा में योगदान करे।

प्रतिभा पूंजी बढ़ाने का पाठ्यक्रम

पीछे के अनुच्छेदों में जिन मुद्दों पर चर्चा की गई है वे एक प्रश्न की ओर संकेत करते हैं। किस प्रकार के पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों, क्लासरूम और परीक्षाओं की ज़रूरत होगी जो किसी राष्ट्र की बौद्धिक संपदा बढ़ाने में अत्यंत सहायक हों?

मैं सबसे पहले उन पाठ्यक्रमों की चर्चा करूंगा जो शिक्षा की पाठ्यपुस्तकों, क्लास रूम और परीक्षाओं को डिजाइन के अनुरूप बनाते हैं। अधिकांश शिक्षा कार्यक्रमों में उम्मीद की जाती है कि छात्रों में समझदारी, प्रयोज्यता (ज्ञान का प्रयोग करना) के गुण आएंगे–

शिक्षा व्यवस्था की ख़ास बात यह होनी चाहिए कि वह राष्ट्र की प्रतिभा पूंजी बढ़ाने में योगदान करे। यह प्रतिभा पूंजी ऐसी हो जो निम्नलिखित शिक्षा लक्ष्यों के अनुरूप हों:

- स्वतंत्र शिक्षण (पाठ्यपुस्तकों और अन्य शिक्षा संबंधी तथा इंटरनेट से ज्ञान अर्जन करना और अध्यापक पर निर्भर न होना)।
- महत्वपूर्ण समझदारी (किसी साक्ष्य अथवा तर्क़ को समझना जो उसके ज्ञान को प्रभावित करती हो)।
- स्वतंत्र जिज्ञासा (उन प्रश्नों के उत्तर पाने की क्षमता जो सूचना, चिंतन मनन और कारकों के आधार पर प्राप्त किए जा सकते हैं)।
- नयी समस्याओं का समाधान (डिजाइन और नीति में) यह टेक्नोलॉजी इंजीनियरिंग, औषधि विज्ञान, कानून और प्रबंधन के लिए विशेष रूप से संगत है।
- फ़ैसला करना (मूल्यों, लक्ष्यों, बाधाओं, नैतिक सिद्धांतों, सूचना और ज्ञान के आधार पर) तथा संप्रेषण (बोलकर और लिखित रूप में भाषा का इस्तेमाल करने की क्षमता)।

शिक्षा के इन उपर्युक्त घटकों पर सावधानीपूर्वक और विस्तार से विचार करने की ज़रूरत है। इनके उदाहरण देकर मैं चाहूंगा कि शिक्षा संस्थाएं स्वतंत्र जिज्ञासा की चुनौती अपने स्कूल-कॉलेज की शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल करें।

जिज्ञासा क्यों?

हम जिज्ञासा को किसी पाठ्यक्रम में शामिल क्यों करें? इस प्रश्न के कई उत्तर हो सकते हैं, लेकिन हम भारतीय संविधान की बात करते हैं। संविधान की धारा 51-ए (एच) में कहा गया है कि भारत के हर नागरिक का यह मौलिक कर्तव्य होगा कि वह अपने अंदर सुधार और जिज्ञासा की भावना तथा मानवतावाद, वैज्ञानिक ढंग से सोचने की आदत का विकास करे। यदि हम इस प्रस्तावना के साथ शुरुआत करें कि हम सबको संविधान की मांग पूरी करनी है तो इस लेख में मैं अपनी बात दो तथ्यों तक सीमित रखूंगा। ये हैं वैज्ञानिक ढंग से सोचने और जिज्ञासा की भावना।

मैं समझता हूं कि वैज्ञानिक ढंग से सोचना एक मानसिक स्थिति है जिसकी तह में वैज्ञानिक जिज्ञासा अंतर्निहित है और जिससे वैज्ञानिक जिज्ञासा के अभ्यास के ज़रिये पोषण मिलता है। इस बात को मान्यता देना उपयोगी होगा कि शिक्षा में गणित के हिसाब से सोचने की मानसिक स्थिति विकसित करने की जिम्मेदारी है। वैज्ञानिक गणित, दर्शन और ऐतिहासिक ढंग से जिज्ञासा करना तार्क़िक जिज्ञासा के रूप है अत: मैं उस बात पर अपना ध्यान केंद्रित करता हूं जो सभी में समान है। वह है तार्क़िक चिंतन। तार्क़िक चिंतन का मूल है तार्क़िक ढंग से सोचने के प्रति वचनबद्धता और इनका व्यावसायिक, सार्वजनिक और निजी जीवन में प्रयोग करना।

- बयान जिनमें दावा किया जाता है कि वे ज्ञान हैं, सिर्फ़ अंधविश्वास के रूप में विश्वास न कर उन पर सवाल उठाना।
- निष्कर्ष जिन पर आरोप है कि वे ऐसे ज्ञान हैं जिनका कोई तार्क़िक आधार नहीं है।
- ऐसी बातें तो तार्क़िक रूप से ज्ञान के अनुरूप नहीं है।

अगर इन सिद्धांतों को तार्क़िक ढंग की चिंतन पद्धति में शामिल कर लिया जाए तो हमारे संविधान का हर नागरिक द्वारा वैज्ञानिक ढंग से चिंतन पद्धति विकसित करने की मांग पूरी हो सकती है। हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचना है कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था असंवैधानिक है।

इस निष्कर्ष का आधार क्या है?

आइये एक उदाहरण देखते हैं। हाईस्कूल के छात्रों को परंपरागत रूप से पढ़ाया जाता है कि धरती सूरज के चारों ओर चक्कर लगाती है और यह सोचना कि सूरज पृथ्वी के चारों ओर घूमता है, गलत है। ऐसा सोचना क्यों गलत है? वे क्या तार्क़िक आधार हैं जो धरती के सूरज के चारों ओर घूमने के पक्ष में हैं। पाठ्यपुस्तकें और कक्षा में होने वाली चर्चा इसका सबूत नहीं हो सकती। तार्क़िक, औचित्य भी इसका कोई मुद्दा नहीं है। परिणाम यह कि छात्रों को इस सिद्धांत को अंधविश्वास के रूप में मान लेना होता है। वैज्ञानिक सिद्धांत के आधार पर नहीं। इसी प्रकार की टिप्पणियां उन बातों पर लागू होती है जो स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाई जाती है। उन्हें पढ़ाया जाता है कि पदार्थ मॉलीक्यूल, एटम और सब-एटमिक पदार्थों से बना होता है लेकिन इनके पक्ष में कोई तार्क़िक औचित्य नहीं पेश किया जाता। उन्हें पढ़ाया जाता है

कि धरती पर विद्यमान सभी चीज़ें जीव और वनस्पतियां एक ही पिता की संतान है और इनका कोई सबूत न तो दिखाया जाता है और न उसकी चर्चा होती है। इसके पक्ष में दिए जाने वाले तर्क़ लचर होते हैं। उन्हें पढ़ाया जाता है कि यौगिक और मिश्रण के बीच अंतर है लेकिन आधार नहीं बताया जाता।

इन बातों का परिणाम ये होता है कि छात्रों में किसी बात को बिना सबूत मान लेने की मानसिकता पैदा हो जाती है। अगर हम तार्क़िक ढंग से चिंतन को उस प्रकार की मानसिक अवस्था मानते हैं, जैसा कि पहले चर्चा की गई है तो हमारी शिक्षा व्यवस्था से वैज्ञानिक ढंग से सोचने की बात प्रभावित होती है और इसीलिए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि यह असंवैधानिक है।

संविधान में मांग की गई है कि हर नागरिक में जिज्ञासा की भावना होनी चाहिए। अगर व्यवस्थित तरीक़े से छानबीन करना, जिज्ञासा की भावना है, तो इसे निम्नलिखित तरीक़े से स्पष्ट किया जा सकता है :

- जिज्ञासा एक प्रश्न है।
- इस प्रश्न को पैदा करने का कारण।
- इस सवाल का जवाब पाने के तौर-तरीक़े।
- प्रश्न का निष्कर्षों पर आधारित एक उत्तर।
- औचित्य (सबूतों और तर्क़ों के साथ ताकि इसे समाज की जिज्ञासा स्वीकार करें)।
- उत्तर का मूल्यांकन, और निष्कर्ष जिन्हें स्वीकार किया जा सके।

यह सुनिश्चित करने के लिए हमारे नागरिकों में जिज्ञासा की भावना बनी रहे, यह महत्वपूर्ण है कि हमारे भावी नागरिक यानि छात्र जिज्ञासा की भावना को बराबर व्यवहार में लाते रहे और इसके तौर-तरीक़ों की जानकारी रखें ताकि जिज्ञासा की भावना पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों और मूल्यांकन में शामिल की जा सके। हमारे स्कूलों और कॉलेजों के पाठ्यक्रमों पर एक संक्षिप्त नज़र डालने से ही जाहिर हो जाता है कि ये हमारी शिक्षा व्यवस्था की अंग नहीं है। इस प्रकार से हमारी शिक्षा व्यवस्था छात्रों में जिज्ञासा की भावना विकसित करने की संवैधानिक अपेक्षा पूरी करने में विफल रहती है। अत: इसे असंवैधानिक कहा जा सकता है।

एक और कारण शामिल कर लें। भारत सरकार ने देश के सभी बच्चों को उच्च गुणवत्ता वाली प्रारंभिक शिक्षा देने के प्रति कानूनी प्रतिबद्धता ज़ाहिर की है। इसके दो घटक हैं गुणवत्ता और कवरेज। अगर हम कवरेज की समस्या की थोड़ी देर के लिए अनदेखी कर दें तो पाते हैं कि उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा का क्या मतलब है और यह आजकल दी जा रही घटिया किस्म की शिक्षा से कैसे अलग है। इससे हम जान सकेंगे कि शिक्षा हमारी कानूनी ज़रूरत पूरी करने में कितनी सक्षम है। आइए, हम इस कल्पना के साथ शुरु करें कि शिक्षा के बुनियादी लक्ष्यों में छात्र को समझदारी, प्रयोज्यता, स्वतंत्र शिक्षण महत्वपूर्ण समझदारी, महत्वपूर्ण मनन-चिंतन, स्वतंत्र जिज्ञासा भावना, नये ढंग से समस्याओं को सुलझाना, निर्णय करना और संप्रेषण जैसे गुणों के विकास में सहायता मिले।

कल्पना कीजिए कि कि कोई शिक्षा कार्यक्रम उच्च कोटि का नहीं है और वह हमारे लक्ष्यों के अनुरूप नहीं है। कोई सामान्य गुणवत्ता वाला शिक्षा कार्यक्रम वह कार्यक्रम है जो दो बातों के प्रति संतुष्टि प्रदान करता है (समझदारी और प्रयोज्यता) और एक ख़राब गुणवत्ता वाला कार्यक्रम वह है जो पहली दो शर्तो की पूर्ति नहीं करता।

आइए, हम सेकेंड्री स्कूलों की बात करें। अगर हम उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा को परिभाषित करें तो यह साबित करना आसान होगा कि हमारी सेकेंड्री शिक्षा व्यवस्था छात्रों की जिज्ञासा भावना को सुदृढ़ करने में अक्षम रही है। अगर हम सेकेंड्री स्कूल कार्यक्रमों पर नज़र डालें तो देखेंगे कि वे कानूनी ज़रूरतें पूरी करने में नाकाम हैं। इससे भारत के हर नागरिक के लिए राज्य और केंद्रीय स्कूल शिक्षा बोर्ड पर कानून के उल्लंघन के लिए मुक़दमा दायर करने का अधिकार बनता है।

अब हम इस प्रश्न का उत्तर ढूंढें कि जिज्ञासा क्यों? यदि हम अपने पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों, क्लासरूम निर्देशों और परीक्षाओं में जिज्ञासा की भावना का घटक शामिल नहीं करते तो हम संविधान और कानून की जिम्मेदारियों को पूरा नहीं करते। हम अपनी प्रतिभा पूंजी के एक महत्वपूर्ण घटक को पोषित करने में विफल रहते हैं जो आर्थिक प्रगति में बहुत सहायक बन सकता है।

जिज्ञासापरक स्कूल और कॉलेज पाठ्यक्रम

यदि हम अपने छात्रों में वैज्ञानिक चिंतन की प्रक्रिया का पोषण करना चाहते हैं तो हमे इन बातों को स्कूल और कॉलेज पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिए? इसकी मोटी रूपरेखा दी जा रही है जो शिक्षा नीति-निर्धारकों के लिए उपयोगी होगी :

- प्रश्न पूछना- उन प्रश्नों की पहचान करना जिनसे उत्तर निकलते हैं और इसे मस्तिष्क की एक आदत बना लेना।
- उत्तरों की तलाश के तरीक़े और निष्कर्षों पर पहुंचना।
- गणित, विज्ञान और अवधारणाओं संबंधी जिज्ञासाओं के तार्क़िक आधार प्रस्तुत करना।
- तार्क़िक जिज्ञासा के सिद्धांतों का पालन तर्क़ संबंधी विरोधाभासों का निषेध, तार्किक परिणामों को स्वीकार करना और निष्कर्षों के तार्क़िक औचित्य की मांग करना।
- शंका प्रकट करना और सवाल पूछना- जिस बात को सत्य और उपयोगी बताया जा रहा है उन पर सवाल उठाना।
- खुले दिमाग से बात करना और संशोधनों के लिए तैयार रहना।
- मान्यताओं, सिद्धांतों, कानूनों और मॉडलों पर चिंतन, सूत्रीकरण, मूल्यांकन और उन्हें उचित ठहराना।
- संकल्पनाओं, सिद्धांतों, कानूनों और मॉडलों को सिद्ध करना और साक्ष्यों का मूल्यांकन।

तार्क़िक जिज्ञासा के इन तत्वों को हमें अपने पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों, कक्षा के निदेर्शों में शामिल करने की ज़रूरत है और यह सुनिश्चित करना है कि फाइनल परीक्षा में इनके बारे में प्रश्न पूछे जाएं।

आलोचनात्मक ढंग से सोचने की क्षमता और स्वतंत्र रूप से जिज्ञासा करना। ये मानव प्रतिभा के केंद्रीय स्तंभ हैं। इन संभावनाओं को वास्तविकता प्रदान करने के लिए यह महत्वपूर्ण कि इन बातों को पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों, कक्षा निदेर्शों को स्कूलों और कॉलेजों में शामिल किया जाए।

हमें उम्मीद है कि शिक्षा क्षेत्र में ऐसी क्रांति होकर रहेगी वह दिन दूर नहीं है। अगर ऐसा हो पाया तो इस शिक्षा क्रांति के ज़रिये राष्ट्र की प्रतिभा पूंजी में संवर्धन हो सकेगा, जिससे आर्थिक प्रगति में योगदान मिल सकेगा। ❑

(लेखक आईआईएसईआर पुणे में प्रोफेसर हैं। इसके पहले वे ऑस्टिन, एमआईटी तथा स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में अध्यापन का कार्य कर चुके हैं।

ई-मेल : mohanan@iiserpune.an.in)

भारत में लोक सेवा प्रसारण की चुनौतियां

● आनंद प्रधान

मैं समझता हूं कि अज्ञानता से मुक्ति उतनी ही ज़रूरी है जितनी भूख से मुक्ति। जनसंचार के माध्यम बहुत उपयोगी हैं लेकिन उनके साथ एक ख़तरा भी जुड़ा हुआ है कि निजी हितों के लिए उनका दुरुपयोग किया जा सकता है... धनपति या अमीर मुल्क़ अपने मीडिया के माध्यम से देश और दुनिया को अपनी उन सोच और विचारों की बाढ़ में डुबो सकते हैं जो सही या गलत हो सकते हैं।

–जवाहर लाल नेहरू, 5 मार्च, 1962

भारत एक तरह के सूचना और जनसंचार विस्फोट के दौर से गुजर रहा है। देश में जनसंचार के माध्यमों का तेज़ी से विस्तार हो रहा है और उनकी पहुंच बढ़ रही है। देश में पंजीकृत समाचार-पत्रों/पत्रिकाओं की संख्या 85,754 (आरएनआई, वर्ष 11-12 की 'प्रेस इन इंडिया' रिपोर्ट) तक पहुंच चुकी है, कुल निजी टीवी चैनलों की संख्या 848 और इसमें न्यूज और समसामयिक विषयों के चैनलों की संख्या 393 है। रेडियो ख़ासकर एफएम रेडियो का भी तेज़ी से विस्तार हो रहा है। फिक्की-केपीएमजी (2013) की मीडिया और मनोरंजन उद्योग रिपोर्ट के मुताबिक, भारत में मीडिया और मनोरंजन उद्योग का आकार वर्ष 2012 में 82 हज़ार करोड़ रुपये तक पहुंच गया है और उसकी वृद्धि की रफ़्तार 12.6 फीसदी रही। यह भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर के दोगुने से भी ज़्यादा है।

देश में जनमाध्यमों के तीव्र विस्तार और प्रसार का दूसरा और महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि उनका राष्ट्रीय जीवन पर प्रभाव बढ़ रहा है, नागरिकों के एक बड़े हिस्से की सोच, रहन-सहन पर उसका असर बढ़ रहा है और सार्वजनिक जीवन में उन्हें राजनीतिक-सामाजिक मुद्दों पर एजेंडा तय करते हुए देखा जा सकता है। इसे लेकर अब बहुत विवाद नहीं है कि जन माध्यमों की सक्रियता सार्वजनिक और नागरिक जीवन के सभी पक्षों को गहरे प्रभावित कर रही है। कई विश्लेषकों का मानना है कि माध्यमों के तीव्र प्रसार के साथ भारत एक 'मीडियाटाईज्ड समाज' में बदलता जा रहा है जहां नागरिकों के एक बड़े हिस्से के पास राज-समाज ख़ासकर राजनीति और दूसरे महत्वपूर्ण मुद्दों के बारे में सूचनाएं और विचार प्राथमिक स्रोतों और खिलाड़ियों के बजाय जनमाध्यमों के ज़रिये पहुंच रही हैं।

जनमाध्यमों की अंतर्वस्तु और उसके चरित्र में भी बदलाव साफ देखे जा सकते हैं। असल में, कॉरपोरेटीकरण के बाद मीडिया कंपनियों पर उनके निवेशकों की ओर से मुनाफ़े का दबाव बढ़ा है और नतीज़े में, अधिक से अधिक से मुनाफ़ा कमाने के लिए मीडिया कंपनियां जनमाध्यमों और पत्रकारिता की आचार-संहिता के साथ समझौता कर रही हैं, पत्रकारिता के उसूलों और मूल्यों को तोड़ रही हैं और कॉरपोरेट हितों के अनुकूल एजेंडे को आगे बढ़ाने में लगी है।

इसके कारण आज जनमाध्यम न सिर्फ़ जनमत को बनाने और उसे प्रभावित करने में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं बल्कि आम जनजीवन में भी लोगों की आदतों, रुचियों, इच्छाओं और उनके व्यवहार पर गहरा असर डाल रहे हैं। ऐसे में, यह सवाल बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है कि खुद इन जनमाध्यमों की अपनी सोच, एजेंडा, दिशा और चरित्र क्या है? ज़ाहिर है कि इस सवाल का उत्तर बहुत गहराई से जनमाध्यमों के स्वामित्व (ओनरशिप) और उनके एजेंडे और सोच-विचार से जुड़ा हुआ है। भारत में जनमाध्यम मुख्यत: निजी क्षेत्र के हाथों में हैं। प्रिंट मीडिया (अख़बार/पत्रिकाओं) पर तो पूरी तरह से निजी क्षेत्र का वर्चस्व है जबकि मूलत: सार्वजनिक क्षेत्र के नियंत्रण में रहे प्रसारण माध्यमों (टीवी/रेडियो) में भी पिछले दो दशकों में निजी क्षेत्र का दायरा और दखल तेज़ी से बढ़ा है। इसी तरह सिनेमा शुरू से पूरी तरह से निजी क्षेत्र के हाथ में रहा है।

जनमाध्यमों पर निजी पूंजी का वर्चस्व

इस बीच एक महत्वपूर्ण बदलाव यह हुआ है कि जनमाध्यमों पर निजी क्षेत्र के बढ़ते वर्चस्व और ख़ासकर नव उदारवादी आर्थिक सुधारों के पिछले दो दशकों में जनमाध्यमों के स्वामित्व में निजी बड़ी देशी-विदेशी पूंजी प्रवेश और प्रभाव में उल्लेखनीय बढ़ोत्तरी हुई है। जनमाध्यमों में निजी बड़ी देशी-विदेशी पूंजी के प्रवेश के साथ मीडिया उद्योग के कॉरपोरेटीकरण की प्रक्रिया तेज़ हुई है। इसके साथ मीडिया उद्योग में कुछ बड़े देशी-विदेशी मीडिया समूहों का वर्चस्व बढ़ा है। मीडिया उद्योग में संकेंद्रण और एकाधिकारवादी और अल्पाधिकारवादी प्रवृतियां मज़बूत हुई हैं।

इसके कारण जनमाध्यमों की अंतर्वस्तु और उसके चरित्र में भी बदलाव साफ देखे जा सकते हैं। असल में, कॉरपोरेटीकरण के बाद मीडिया कंपनियों पर उनके निवेशकों की ओर

लोक सेवा प्रसारण की पहली और सबसे महत्वपूर्ण कसौटी यह है कि वह न राज्य (सरकार) के नियंत्रण में होनी चाहिए और न ही निजी व्यावसायिक प्रसारकों के अधिकार में। वह इन दोनों के नियंत्रण और दबावों से बाहर और वास्तविक अर्थों में स्वतंत्र और स्वायत्त होनी चाहिए।

से मुनाफ़े का दबाव बढ़ा है और नतीज़े में, अधिक से अधिक से मुनाफ़ा कमाने के लिए मीडिया कंपनियां जनमाध्यमों और पत्रकारिता की आचार-संहिता के साथ समझौता कर रही हैं, पत्रकारिता के उसूलों और मूल्यों को तोड़ रही हैं और कॉरपोरेट हितों के अनुकूल एजेंडे को आगे बढ़ाने में लगी है। हाल के अनेकों उदाहरणों से साफ है कि बड़ी देशी-विदेशी पूंजी और कॉरपोरेट समूहों के स्वामित्व वाले मीडिया समूहों के लिए लोकतंत्र और जनहित की तुलना में निजी कॉरपोरेट हित ज़्यादा महत्वपूर्ण हैं।

इस कारण लोकतंत्र की बुनियादी ज़रूरत विचारों की विविधता और बहुलता के लिए कॉरपोरेट जनमाध्यमों में जगह दिन पर दिन सिकुड़ती जा रही है। दूसरी ओर, जनमाध्यमों के अंतर्वस्तु में भी आम लोगों और उनके सरोकारों, ज़रूरतों और इच्छाओं के लिए जगह कम होती जा रही है। जनमाध्यमों में लोगों के वास्तविक मुद्दों के बजाय छिछले, सनसनीखेज और हल्के मुद्दों को बड़ा बनाकर उछालने और सार्वजनिक हित की प्राथमिकताओं को नजरंदाज़ करने और मनोरंजन के नाम पर सस्ते-फूहड़-फिल्मी मनोरंजन को बढ़ावा देने की प्रवृत्ति किसी से छुपी नहीं है। एक मायने में, कॉरपोरेट जनमाध्यम अपने पाठकों और दर्शकों को एक सक्रिय नागरिक के बजाय निष्क्रिय उपभोक्ता भर मानकर चलते हैं और उनके साथ उसी तरह का व्यवहार करते हैं।

कॉरपोरेट जनमाध्यमों के इस बुनियादी चरित्र और उद्देश्य को लेकर लंबे अरसे से सवाल उठते रहे हैं और चिंता ज़ाहिर की जाती रही है। इसी पृष्ठभूमि में जनहित को सर्वोपरि मानने वाले और लोगों के जानने और स्वस्थ मनोरंजन के अधिकार के लिए समर्पित लोक सेवा प्रसारण को मज़बूत करने और आगे बढ़ाने की मांग होती रही है। इसकी वज़ह यह है कि इस मुद्दे पर अधिकांश मीडिया अध्येता और विश्लेषक एकमत हैं कि निजी पूंजी के स्वामित्व वाले जन माध्यमों की सीमाएं स्पष्ट हैं क्योंकि वे व्यावसायिक उपक्रम हैं, मुनाफ़े के लिए विज्ञापनदाताओं और निवेशकों के दबाव में कंटेंट के साथ समझौता करना उनके स्वामित्व के ढांचे में अंतर्निहित है और वे व्यापक जनहित और लोकतांत्रिक मूल्यों की उपेक्षा करते रहेंगे।

लोक सेवा प्रसारण की कसौटियां

हालांकि लोक प्रसारण सेवा का विचार नया नहीं है लेकिन यहां स्पष्ट करना ज़रूरी है कि लोक सेवा प्रसारण की पहली और सबसे महत्वपूर्ण कसौटी यह है कि वह न राज्य (सरकार) के नियंत्रण में होनी चाहिए और न ही निजी व्यावसायिक प्रसारकों के अधिकार में। वह इन दोनों के नियंत्रण और दबावों से बाहर और वास्तविक अर्थों में स्वतंत्र और स्वायत्त होनी चाहिए। उसका मुख्य उद्देश्य सभी वर्गों, समुदायों और समूहों के लोगों को बिना किसी लैंगिक-जातिवादी-धार्मिक-एथनिक पूर्वाग्रह के उनकी नागरिक की भूमिका निभाने के लिए ज़रूरी सच्ची, तथ्यपूर्ण, वस्तुनिष्ठ और संतुलित सूचनाएं उपलब्ध कराना, उन्हें विभिन्न मुद्दों पर अधिकतम संभव विचारों से अवगत कराना, उन्हें शिक्षित करने के लिए जानकारी, विचार और चर्चाओं से रू-ब-रू कराना और उनके स्वस्थ मनोरंजन के लिए सृजनात्मक विविधता और बहुलता को प्रोत्साहित करना होना चाहिए।

इसके साथ ही, लोक सेवा प्रसारण की एक और महत्वपूर्ण कसौटी यह है कि उसमें कार्यक्रमों के निर्माण से लेकर उसके प्रबंधन में आम लोगों और बुद्धिजीवियों/कलाकारों की सक्रिय भागीदारी होनी चाहिए लेकिन पिछले कुछ दशकों में व्यावसायिक प्रसारण माध्यमों के बढ़ते वर्चस्व के बीच इस विचार को हाशिए पर ढकेल दिया गया था। यह मान लिया गया था कि व्यावसायिक प्रसारण के विस्तार और बढ़ोत्तरी में लोक सेवा की ज़रूरतें भी पूरी हो जाएंगी। यही कारण है कि भारत समेत दुनिया के ज़्यादातर देशों में लोक प्रसारण सेवा की स्थिति संतोषजनक नहीं है। ज़्यादातर देशों में लोक प्रसारण के नाम पर राज्य और सरकार के नियंत्रण और निर्देशों पर चलने वाले राष्ट्रीय प्रसारक हैं जिन्हें न तो पर्याप्त संसाधन मुहैया कराए जाते हैं, न उन्हें सृजनात्मक आज़ादी हासिल है और न ही वे जनहित में प्रसारण कर रहे हैं।

अफ़सोस और चिंता की बात यह है कि कुछ अपवादों को छोड़कर ज़्यादातर देशों में वे सरकार के भोंपू में बदल दिए गए हैं और दूसरी ओर, उन्हें निजी प्रसारकों के साथ व्यावसायिक प्रतियोगिता में ढकेल दिया गया है। इस कारण लोगों में एक ओर उनकी साख बहुत कम है और दूसरी ओर, निजी प्रसारकों के साथ व्यावसायिक प्रतियोगिता में उनका इस हद तक व्यवसायीकरण हो गया है कि उनमें लोक प्रसारण सेवा की कोई विशेषता नहीं दिखाई देती है। इस प्रक्रिया में वे न तो लोकसेवा प्रसारण की कसौटियों पर खरे उतर पा रहे हैं और न ही पूरी तरह व्यावसायिक प्रसारक की तरह काम कर पा रहे हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि सत्तारूढ़ दल और नौकरशाही के साथ-साथ व्यावसायिक शिकंजे में उनका दम घुट रहा है।

भारत में प्रसार भारती (दूरदर्शन और आकाशवाणी) इसका ज्वलंत उदाहरण है। हैरानी की बात यह है कि भारत में लोकसेवा प्रसारण के विचार के प्रति एक व्यापक सहमति, ध्वनि तरंगों (प्रसारण) को स्वतंत्र करने के बाबत सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले और संसद में प्रसार भारती कानून के पास होने के बावजूद प्रसार भारती वास्तविक अर्थों में एक सक्रिय, सचेत और स्वतंत्र-स्वायत्त लोकप्रसारक की भूमिका नहीं निभा पा रहा है। हालांकि 70 और 80 के दशकों की तुलना में दूरदर्शन और आकाशवाणी में सीमित-सा खुलापन आया है लेकिन इसके बावजूद उसकी लोक छवि एक ऐसे प्रसारक की बनी हुई है कि जो सरकार के नियंत्रण और निर्देशों पर चलता है और जहां नौकरशाही के दबदबे

सार्वजनिक धन और संसाधनों से चलने वाली प्रसार भारती की मौजूदा स्थिति और उसके कामकाज पर देश में कोई ख़ास चर्चा और बहस नहीं दिखाई देती है। उसके कामकाज पर न तो संसद में कोई व्यापक चर्चा होती है और न ही सार्वजनिक और अकादमिक मंचों पर कोई बड़ी बहस सुनाई देती है।

के कारण सृजनात्मकता के लिए बहुत कम गुंजाइश बची है।

हैरानी की बात यह भी है कि सार्वजनिक धन और संसाधनों से चलने वाली प्रसार भारती की मौजूदा स्थिति और उसके कामकाज पर देश में कोई ख़ास चर्चा और बहस नहीं दिखाई देती है। उसके कामकाज पर न तो संसद में कोई व्यापक चर्चा होती है और न ही सार्वजनिक और अकादमिक मंचों पर कोई बड़ी बहस सुनाई देती है। यहां तक कि खुद प्रसार भारती के अंदर उसके कर्मचारियों और अधिकारियों में अपनी स्वतंत्रता और स्वायत्तता को लेकर कोई सक्रियता और उत्साह नहीं दिखाई पड़ता है। इसके उलट कर्मचारियों के संगठन ने प्रसार भारती को भंग करके खुद को सरकारी कर्मचारी घोषित करने की मांग की है। इसके पीछे वज़ह सरकारी नौकरी का स्थायित्व, पेंशन, आवास सुविधा आदि हैं। लेकिन इससे यह भी पता चलता है कि प्रसार भारती के कर्मचारियों में मौजूदा ढांचे और कामकाज को लेकर कितनी निराशा, उदासी और दिशाहीनता है।

हालांकि सप्रग सरकार ने कुछ महीने पहले संचार विशेषज्ञ सैम पित्रोदा की अध्यक्षता में प्रसार भारती के सरकार के साथ संबंधों, उसकी फंडिंग, उसके प्रबंधन और संरचना के बारे में सुझाव देने के लिए विशेषज्ञ समिति का गठन किया है लेकिन प्रसार भारती को बने कोई 16 साल हो गए और इस बीच, उसकी दशा-दिशा तय करने के लिए अलग-अलग सरकारों ने कोई चार समितियों का गठन किया। इनमें वर्ष 1996 में बनी नीतिश सेन गुप्ता समिति, वर्ष 99-00 में बनी नारायण मूर्ति समिति, वर्ष 2000 में बनी बक्शी समिति के अलावा अब सैम पित्रोदा समिति का गठन किया गया है लेकिन कहना मुश्किल है कि इन समितियों की रिपोर्टों पर किस हद तक अमल हुआ?

प्रसार भारती के पिछले 16 सालों के अनुभव एक स्वप्न भंग की त्रासद दास्तां हैं। हालांकि प्रसार भारती का दावा है कि वह भारत का लोक प्रसारक और इस कारण 'देश की आवाज़' है लेकिन सच यह है कि वह 'देश की आवाज़' बनने में नाकाम रहा है।

लोक प्रसारक के बतौर प्रसार भारती: स्वप्न भंग की दास्तान

दूरदर्शन और आकाशवाणी को सृजनात्मक आज़ादी और स्वायत्तता देने के एक लंबे संघर्ष के बाद प्रसार भारती का गठन हुआ था। 70 और 80 के दशक में दूरदर्शन और आकाशवाणी का सत्तारुढ़ दल द्वारा दुरुपयोग के आरोपों के बीच ख़ासकर इमरजेंसी के बाद यह मुद्दा राष्ट्रीय राजनीति के एजेंडे पर भी प्रमुखता से छाया रहा। नागरिक समाज के विभिन्न हिस्सों की ओर से भी यह मांग उठती रही कि दूरदर्शन और आकाशवाणी को आज़ादी और स्वायत्तता मिलनी चाहिए और उन्हें वास्तविक अर्थों में लोक प्रसारक की स्वतंत्र भूमिका निभाने के लिए तैयार किया जाना चाहिए। इसी पृष्ठभूमि में 1990 में प्रसार भारती कानून बना और 1997 में लागू किया गया।

कहने की ज़रूरत नहीं है कि यह एक बड़ा और महत्वाकांक्षी विचार था जिसके साथ यह स्वप्न जुड़ा हुआ था कि दूरदर्शन और आकाशवाणी प्रसार भारती के तहत व्यावसायिक दबावों से दूर और देश के सभी वर्गों-समुदायों-समूहों की सूचना, शिक्षा और मनोरंजन संबंधी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए काम करेंगे। वे भारत जैसे विकासशील देश और समाज की बुनियादी ज़रूरतों ध्यान में रखेंगे और एक ऐसे लोक प्रसारक के रूप में काम करेंगे जिसमें देश और भारतीय समाज की विविधता और बहुलता अपने श्रेष्ठतम सृजनात्मक रूप में दिखाई देगी। उनके साथ यह उम्मीद भी जुड़ी हुई थी कि वह वास्तव में 'लोगों का, लोगों के लिए और लोगों के द्वारा' चलनेवाला ऐसा प्रसारक होगा जो सामाजिक लाभ के लिए काम करेगा।

प्रसार भारती के पिछले 16 सालों के अनुभव एक स्वप्न भंग की त्रासद दास्तां हैं। हालांकि प्रसार भारती का दावा है कि वह भारत का लोक प्रसारक और इस कारण 'देश की आवाज़' है लेकिन सच यह है कि वह 'देश की आवाज़' बनने में नाकाम रहा है। कानूनी तौर पर स्वायत्तता मिलने के बावजूद वह व्यावहारिक तौर पर अब भी एक सरकारी विभाग की ही तरह काम कर रहा है जहां नीति निर्माण से लेकर दैनिक प्रबंधन और संचालन में नौकरशाही हावी है। इस कारण उसकी साख में कोई ख़ास सुधार नहीं हुआ है और सृजनात्मकता के मामले में स्थिति 80 के दशक की तुलना में बदतर हुई है।

70 और 80 के दशक में समाज के विभिन्न हिस्सों से यह मांग उठती रही कि दूरदर्शन और आकाशवाणी को आज़ादी और स्वायत्तता मिलनी चाहिए और उन्हें वास्तविक अर्थों में लोक प्रसारक की स्वतंत्र भूमिका निभाने के लिए तैयार किया जाना चाहिए।

हालांकि यह भी सच है कि इन डेढ़ दशकों में प्रसार भारती का संरचनागत विस्तार हुआ है। दूरदर्शन के चैनल लगभग सभी प्रमुख भाषाओं और राज्यों में उपलब्ध हैं, खेल-कला/संस्कृति और समाचार के लिए अलग से चैनल हैं और एफएम प्रसारण के ज़रिये आकाशवाणी ने भी श्रोताओं के बीच वापसी की है। यह भी सच है कि अति व्यावसायिक, महानगर केंद्रित और मुंबईया सिनेमा के फार्मूलों पर आधारित मनोरंजन कार्यक्रमों और सनसनीखेज समाचारों के नाम पर तमाशा करने में माहिर निजी समाचार चैनलों से उब रहे बहुतेरे दर्शकों को दूरदर्शन के चैनल ज़्यादा बेहतर नज़र आने लगे हैं। हाल के दिनों में दूरदर्शन के कार्यक्रमों और प्रस्तुति में कुछ सुधार के लक्षण भी दिखाई दे रहे हैं।

प्रसार भारती के सामने खुद को एक बेहतर और आदर्श 'लोक प्रसारक' और वास्तविक अर्थों में 'देश की आवाज़' बनाने की जितनी बड़ी चुनौती है, उसके मुक़ाबले इस क्रमिक सुधार से बहुत उम्मीद नहीं जगती है। यही नहीं, प्रसार भारती में हाल के सुधारों की दिशा उसे निजीकरण और व्यवसायीकरण की ओर ले जाती दिख रही है। प्रसार भारती पर अपने संसाधन जुटाने का दबाव बढ़ता जा रहा है और इसके कारण विज्ञापन आय पर बढ़ती निर्भरता उसे निजी चैनलों के साथ अंधी प्रतियोगिता में उतरने और उनकी सस्ती अनुकृति बनने के लिए मज़बूर कर रही है। हालांकि दूरदर्शन के व्यवसायीकरण की यह प्रक्रिया 80 के दशक में ही शुरू हो गई थी लेकिन नब्बे के दशक में निजी प्रसारकों के आने के बाद इसे और गति मिली।

इस कारण आज दूरदर्शन और निजी चैनलों में कोई बुनियादी फर्क़ कर पाना मुश्किल है। कहने की ज़रूरत नहीं है कि व्यावसायिकता और लोक प्रसारण साथ नहीं चल सकते हैं। दुनियाभर में लोक प्रसारण सेवाओं के अनुभवों से साफ है कि लोक प्रसारण के उच्चतर मानदंडों पर खरा उतरने के लिए उसका संकीर्ण व्यावसायिक दबावों से मुक्त होना अनिवार्य है।

इसकी वज़ह यह है कि प्रसारण का व्यावसायिक मॉडल मुख्यत: विज्ञापनों पर निर्भर है और विज्ञापनदाता की दिलचस्पी नागरिक में नहीं, उपभोक्ता में है। उस उपभोक्ता में जिसके पास क्रयशक्ति है और जो उत्पादों/सेवाओं पर ख़र्च करने के लिए इच्छुक भी है। इस कारण वह ऐसे दर्शक और श्रोता खोजता है जिन्हें आसानी से उपभोक्ता में बदला जा सके। इसके लिए वह ऐसे कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करता है जो इसके उद्देश्यों के अनुकूल हों।

दूसरी ओर एक सचेत और सक्रिय नागरिक की चिंताएं और सरोकार एक उपभोक्ता की चिंताओं और सरोकारों से काफी अलग होती हैं। एक उपभोक्ता अपने उपभोग को लेकर चिंतित रहता है और उसके व्यापक नतीज़ों पर कम सोचता है लेकिन एक नागरिक उपभोग से पहले उसके नतीज़ों के बारे में सोचता है और अंधाधुंध उपभोग के ख़तरों से परिचित होता है। एक नागरिक भी उपभोक्ता होता है लेकिन असल चुनौती यह है कि एक उपभोक्ता में नागरिक की चेतना और सरोकारों को कैसे पैदा किया जाए? याद रहे कि भारत में उपभोक्तावाद के प्रसार और विस्तार में निजी चैनलों का बड़ा योगदान रहा है। ऐसे में, लोक प्रसारण सेवा को उपभोक्तावाद के विस्तार का एक और माध्यम बनाने के बजाय उसके बारे में लोगों को सचेत करने और उन्हें एक जिम्मेदार उपभोक्ता बनाने की जवाबदेही लेनी होगी।

भारत में लोक प्रसारण सेवा के लिए आगे का रास्ता

हालांकि पित्रोदा समिति प्रसार भारती के लिए भविष्य का रोडमैप तैयार कर रही है लेकिन यहां दूरदर्शन के कार्यक्रमों और उसके लोक प्रसारक के बतौर एक खालिस भारतीय व्यक्तित्व के बारे में पी सी जोशी समिति (1984) की रिपोर्ट 'टेलीविजन के लिए एक भारतीय व्यक्तित्व' (एन इंडियन पर्सनालिटी फार टेलीविजन) का जिक्र करना ज़रूरी है। इस रिपोर्ट को अगले साल तीन दशक पूरा हो जाएंगे। हालांकि इन तीन दशकों में देश और दुनिया में प्रसारण का परिदृश्य बहुत बदल गया है लेकिन बावजूद इसके यह रिपोर्ट भारत जैसे बहुराष्ट्रीय-बहुभाषी-बहुधर्मिक-बहुजातीय और विकासशील समाज में लोक प्रसारण सेवा के बुनियादी दृष्टिकोण और कार्यभार को बखूबी पेश करती है। इस मायने में यह रिपोर्ट और उसकी अनुशंसाएं आज भी न सिर्फ प्रासंगिक हैं बल्कि दूरदर्शन के लिए एक लोक प्रसारक के बतौर बेहतर रोडमैप पेश करती है।

जोशी समिति ने दूरदर्शन के लिए जिस भारतीय व्यक्तित्व की कल्पना की थी, उस स्वप्न को पुनर्जीवित करने की जरूरत है।

प्रसारण का व्यावसायिक मॉडल मुख्यत: विज्ञापनों पर निर्भर है और विज्ञापनदाता की दिलचस्पी नागरिक में नहीं, उपभोक्ता में है। उस उपभोक्ता में जिसके पास क्रयशक्ति है और जो उत्पादों/सेवाओं पर ख़र्च करने के लिए इच्छुक भी है। इस कारण वह ऐसे दर्शक और श्रोता खोजता है जिन्हें आसानी से उपभोक्ता में बदला जा सके।

इसके लिए दूरदर्शन को मध्यकालिक और दीर्घकालिक तौर इन कार्यभारों को पूरा करना होगा :

- प्रसार भारती की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसकी सरकार और निजी क्षेत्र पर निर्भरता ख़त्म करना ज़रूरी है। उसकी आर्थिक स्वायत्तता सुनिश्चित करने के लिए एक स्थायी और टिकाऊ वित्तीय मॉडल की ज़रूरत है।
- प्रसार भारती की सृजनात्मक आज़ादी सुनिश्चित करने के लिए उसे नौकरशाही के नियंत्रण से मुक्त करना और उसके संचालन में लोकतांत्रिक भागीदारी और मूल्यों को स्थापित करना भी अनिवार्य है। इसके लिए प्रसार भारती के प्रबंधन और कामकाज में पेशेवर और स्वतंत्र लेखकों, कलाकारों, संस्कृतिकर्मियों और बुद्धिजीवियों को नेतृत्वकारी भूमिका प्रदान करने के अलावा समाज के विभिन्न वर्गों-समुदायों-समूहों को भी उचित प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। उसके प्रबंधन में कर्मचारियों की भागीदारी भी सुनिश्चित की जानी चाहिए।
- प्रसार भारती की जिम्मेदारी और जवाबदेही लोगों के प्रति होनी चाहिए। इसके लिए उसके संचालन और प्रबंधन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने का लोकतांत्रिक मॉडल खड़ा किया जाना चाहिए। इसके लिए प्रसार भारती के सभी भागीदारों में अपनी स्वायत्तता और आज़ादी के प्रति एक आग्रह और बोध पैदा किया जाना चाहिए। याद रहे कि स्वायत्तता और आज़ादी कभी भी उपहार में नहीं मिलते हैं और न ही उपहार में मिली आज़ादी और स्वायत्तता को सुरक्षित रखा जा सकता है। आज़ादी और स्वायत्तता को हासिल करने, बनाए रखने और उसका विस्तार करने के लिए लोक प्रसारण सेवा में जिनका हिस्सा (स्टेक) है, उन्हें उसके लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ता है।
- प्रसार भारती के आगे का रास्ता निजीकरण और व्यवसायीकरण में नहीं है। इसके उलट उसे व्यावसायिक प्रसारण से अलग वैकल्पिक मॉडल की तलाश करनी होगी। वैकल्पिक मॉडल विकेंद्रीकृत, पारदर्शी, भागीदारीपूर्ण और जवाबदेह होना चाहिए और उसमें देश-समाज की विविधताओं और बहुलता का अक्स दिखाई देना चाहिए। प्रसार भारती के कार्यक्रमों में देश की हर भाषा और क्षेत्र की कला-संस्कृति, संगीत-नृत्य, साहित्य से लेकर लोक कलाओं को जगह मिलनी चाहिए। उसे इनका सक्रिय संरक्षक और संग्रहालय बनना होगा।

यह सूची बहुत लंबी हो सकती है। इस मायने में लोक प्रसारण के सामने अनेकों चुनौतियां हैं लेकिन भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश-समाज के पास एक वास्तविक लोक प्रसारणकर्ता का कोई विकल्प भी नहीं है। देश इस सच्चाई को जितनी जल्दी समझ जाए, उतना अच्छा होगा। ❑

(लेखक भारतीय जनसंचार संस्थान (आईआईएमसी), नयी दिल्ली में पत्रकारिता के एसोसिएट प्रोफेसर हैं और हिंदी पत्रकारिता पाठ्यक्रम के पाठ्यक्रम निदेशक हैं।
ई-मेल : apradhan28@gmail.com)

जिस तरह तू बोलता है उस तरह तू पढ़

● क्षमा शर्मा

यह 1976 की बात है। तब मैं बीए में पढ़ती थी। 1972 में पिताजी की मृत्यु हो गई थी। भाइयों के भरोसे थी। मन बार-बार भटकता था। ऐसा लगता था कि चारों ओर अंधकार है। कहीं कोई दिशा नहीं दिखाई देती थी। कुछ करना चाहती थी। ऐसा कुछ जिससे आर्थिक संबल भी मिले और संतुष्टि भी। नौकरी करने के बारे में सोचती थी। लगता था कि अगर सौ रुपये की भी नौकरी मिल जाए तो अच्छा रहे। मगर बीए में पढ़ने वाली को कौन नौकरी देता। बड़े-बड़े एमए, पीएचडी बेरोज़गार घूम रहे थे।

स्कूल के दिनों में नाटकों और भाषण प्रतियोगिताओं में खूब भाग लेती थी, लेकिन इतने भर से आगे के जीवन में क्या हो सकता था। मैं देशबंधु कॉलेज में पढ़ती थी। वहीं श्रीमती राजकुमारी प्रसाद पढ़ाती थीं। वह हिंदी विभाग में थीं। मेरे बड़े भाई डॉ. रामस्वरूप शर्मा भी वहीं पढ़ाते थे। मेरे भाई ने ही उन्हें बताया कि मैं कुछ करना चाहती हूं। यह भी कहा कि लिखने और भाषण देने में मेरी बहुत दिलचस्पी है। कॉलेज में भी मुझे वाद-विवाद में कई इनाम मिले थे। श्रीमती प्रसाद उन दिनों रेडियो नाटकों की नामी कलाकार थीं। उन्होंने मुझे बुलाया और पूछा कि मैं क्या करना चाहती हूं। तब मुझे भी ठीक से पता नहीं था कि क्या करना है? कौन-सा काम ठीक से कर सकती हूं। उनके सामने बोलने में झिझक भी हुई। फिर भाई के सामने यह कहना कि मैं पैसे कमाना चाहती हूं, हो सकता है उन्हें बुरा लगे। शायद वह यह सोचें कि मैं दुनिया को यह बताना चाहती हूं कि मेरे पास पैसे नहीं हैं। मुझे चुप देख श्रीमती प्रसाद ने पूछा कि तुम रेडियो के लिए काम करोगी। मैंने फौरन हां कहा। क्योंकि उन दिनों रेडियो के लिए काम करना बहुत गर्व की बात मानी जाती थी। श्रीमती प्रसाद के पास उन दिनों एक फिएट कार थी जिसे वह खुद चलाती थीं।

उनसे जुड़ी एक घटना मुझे बार-बार याद आती है। एक बार कॉलेज में एक प्रतियोगिता हो रही थी जिसमें बच्चों की शर्त पर अध्यापकों को परफॉर्म करना था। एक अध्यापक डॉ. एम. पी. सिंह को बच्चों का पर्चा मिला। उस पर लिखा था कि एक साथ रोना और हंसना है। अब डॉ. सिंह परेशान। करें तो क्या करें?

पहले जहां गीत-संगीत सिर्फ़ अमीरों और राजदरबारों के मनोरंजन और शौक की चीज़ थी, रेडियो ने इसे घर-घर तक पहुंचाया और आमलोगों में संगीत की समझ विकसित की। गायक-गायिकाओं के नाम लोगों की जबान पर चढ़ गए।

बच्चे उनकी हालत देखकर मुंह छिपा-छिपाकर खूब हंस रहे थे कि बच्चू बहुत डांटते-डपटते थे, अब भुगतो। तब श्रीमती प्रसाद ने कहा कि अगर छात्र इज़ाजत दें तो डॉ. सिंह की सहायता एक साथी होने के नाते वह करना चाहेंगी। अगर वह ऐसा कर दिखाएं तो छात्रों को बुरा तो नहीं लगेगा। छात्र मान गए। तब श्रीमती प्रसाद ने ऐसा अभिनय किया कि देर तक तालियां बजती रही। वह हंसते-हंसते रोईं आंसुओं के साथ और रोते-रोते हंसीं तो हंसती ही गईं। हंसना और रोना भी एक सुर में नहीं। कभी सिसकियां तो कभी विलाप कभी मुसकराहट तो कभी ठहाका। कहीं भी कुछ बनावटी नहीं लगा। उनके सभी साथी और बच्चे उनकी अभिनय प्रतिभा का लोहा मान गए। डॉ. सिंह ने तो उन्हें विशेष रूप से धन्यवाद दिया।

श्रीमती प्रसाद एक दिन मुझे अपने साथ आकाशवाणी ले गईं। युववाणी में परिचय कराया। वहीं कमला शास्त्री से मेरी मुलाक़ात हुई। आज भी पतली-दुबली बॉयकट वाली कमला जी मुझे याद हैं। वह नये आए बच्चों का बहुत उत्साह बढ़ाती थीं और काम अच्छा न करो तो बहुत डांटती भी थीं।

पहले पहल मैंने दो एक्सट्रीम नाम से कहानी लिखी। जो असफल प्रेम की आंसुओं से लबालब कहानी थी। फिर मुझे एक वार्ता लिखने का काम मिला। अब सब्जेक्ट तो याद नहीं है, मगर मैंने खूब मेहनत से उसे लिखा। इसमें मेरे भाई ने भी मेरी मदद की और कहना चाहिए कि अपनी गाड़ी चल निकली। तब ऐसा लगने लगा घमंड से कि देखो जी मैंने कुछ कर दिखाया। मेरे साथ पढ़ने वाली किसी लड़की ने किया है कभी ऐसा? और घमंड से इतराने वाली मैं जल्दी ही नीचे आ गिरी। बाद में खुद को ही धिक्कारा कि जहां इतने बड़े-बड़े पहले से ही मौजूद हैं, वहां मैडम तुम किस खेत की मूली हो। दो स्क्रिप्ट लिखकर ही खुद को अफलातून की चाची समझने लगीं।

पहला मेहनताना पंद्रह रुपये का मिला जो उस दौर में इतना ज्यादा था कि आज उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। दिल्ली शहर में बस का किराया दस पैसे, चाय दस पैसे, खाना पचास पैसे, इसके बाद भी कुछ खाने के बाद भी रुपये में से पचीस पैसे बच जाते थे। पचीस पैसे में उन दिनों बहुत कुछ खरीदा जा सकता था। पचीस पैसे यानी कि वही चवन्नी जो अब बंद हो चुकी है और चवन्नी तो क्या आजकल कोई अठन्नी लेने तक को तैयार नहीं होता।

तब युववाणी के लिए बहुत से कार्यक्रम साक्षात्कार पर आधारित करने पड़ते थे जिसके

लिए टेपरिकार्डर का होना अनिवार्य था और टेपरिकॉर्डर किसी-किसी के पास ही होता था। ऐसे कार्यक्रम करने के लिए उधार मांगना पड़ता था। एक बार भाईसाहब के मित्र झांगियानी जी का टेपरिकॉर्डर मांगा। मेरी गलती से उसका माइक ख़राब हो गया। अब डर के मारे बुरा हाल। क्या होगा अगर उन्होंने दूसरा माइक मांगा। पता नहीं कितने का आता होगा? ऊपर से बड़े भाई ने कहा कि तुम्हें अगर कोई चीज़ इस्तेमाल करना नहीं आता तो मांगा क्यों? मेरी सांस फूली जाती। भाई ने यह भी कहा कि यह कम से कम ढाई सौ रुपये का आएगा। अब मेरी हालत ख़राब। ढाई सौ क्या अपने पास तो सौ रुपये तक नहीं थे। हालांकि झांगियानी जी ने कुछ नहीं कहा मगर उसके बाद लगा कि कभी किसी से कोई चीज मांगनी नहीं चाहिए।

अगर कुछ और पीछे लौटूं तो मेरी रेडियो की स्मृति फर्रुखाबाद की है। मेरे पिता जी रेलवे में थे। उनकी पोस्टिंग फर्रुखाबाद में थी। रेलवे क्वाटर्स जिन में दो कमरे, वरांडा और आंगन होता था उनमें हम रहते थे। घर के बाएं हाथ पर एक कुआं, पीपल, गूलर, बरगद, गुलमोहर और घर के सामने बकनिया का पेड़ था। इस पेड़ पर हमारी काली बकरी चढ़ जाती थी और वहीं बैठकर पगुराती थी। कुएं के पास बड़े-बड़े मेढ़क होते थे।

उन दिनों तब मैं तीन साल की रही होऊंगी। पड़ोस में सक्सेना चाचा जी रहते थे। उनके बेटे पप्पू से मेरी बड़ी दोस्ती थी। जब पप्पू से मेरी लड़ाई हो जाती तो वह मेरे घर मेढ़क भेजने की धमकी देता था। पप्पू के घर पर बड़ा वाला रेडियो था। जिसके पीछे बल्व लगा रहता था। मोहल्ले का यह इकलौता रेडियो था जिसकी आवाज़ दूर-दूर तक गूंजती थी। तब गाना बजता था- *मेरा नाम राजू घराना अनाम*। और हम बच्चों को लगता था कि आखिर कौन इसके अंदर बैठकर गा रहा है। बहुत ढूंढने की कोशिश करते थे, मगर कोई नहीं दिखता था। फिर हम यह भी सोचते थे कि इतनी छोटी-सी जगह में कोई आदमी बैठ कैसे सकता है? बड़े होने पर जब सोचने-समझने लायक हुई तो लगा कि पहले जहां गीत-संगीत सिर्फ़ अमीरों और राजदरबारों के मनोरंजन और शौक की चीज़ थी, रेडियो ने इसे घर-घर तक पहुंचाया और आमलोगों में संगीत की समझ विकसित की। गायक-गायिकाओं के नाम लोगों की जबान पर चढ़ गए। इसलिए अपने समय के बड़े से बड़े कलाकार, संगीतकार, रचनाकार रेडियो से जुड़े। हिंदी साहित्य के बड़े नामों से लेकर फ़िल्म जगत की बड़ी हस्तियां रेडियो से जुड़ीं। नेताओं के भाषण रेडियो से प्रसारित होते थे। प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के संदेश से लेकर क्रिकेट मैचों का प्रसारण रेडियो करता था। देवकी नंदन पांडे, अशोक वाजपेयी, उर्मिला मिश्र आदि समाचार वाचकों की चारों ओर धूम थी। उनकी आवाज़ से लोग उन्हें पहचानते थे। वे आज के किसी सुपरस्टार से कम नहीं थे। पूरे भारत में उनके नाम का डंका बजता था। यही नहीं रेडियो ने लोगों के भाषा ज्ञान और उच्चारण को भी संवारा और पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने का काम भी किया।

धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, अमृतलाल नागर, मन्नू भंडारी, मनोहर श्याम जोशी, हिमांशु जोशी, कन्हैयालाल नंदन, कुंवरनारायण, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुदगल, विष्णु नागर, लीलाधर मंडलोई, अचला शर्मा, सुरेश उनियाल, रमेश बतरा, महेश दर्पण, ज्योतिष जोशी आदि न जाने कितने कवि-लेखकों से मेरी मुलाक़ात रेडियो में हुई। मंटो, कृष्ण चंदर, उपेन्द्रनाथ अश्क, पदमा सचदेव, अमृता प्रीतम आदि लेखक तो बाकायदा रेडियो से जुड़े ही थे। और भी सैकड़ों बड़े लोग होंगे जिनके नाम फिलहाल याद नहीं आ रहे। रेडियो पर रचना पाठ या इंटरव्यू एक बड़ी घटना मानी जाती थी। अचला शर्मा रेडियो से बीबीसी चली गई। वह वर्षों वहां रहीं। उनसे मेरी पहली मुलाक़ात शादी के बाद हुई थी। वह मेरे पति सुधीश पचौरी की जूनियर थीं। सुधीश जी ने ही मुझसे उन्हें पहली बार मिलवाया था। उनसे दोस्ती का ऐसा अंकुर फूटा कि आज तक कायम है। वह बेहतरीन कथाकार हैं। कमलेश्वर से संबंधित एक घटना का भी उल्लेख करना चाहूंगी। कमलेश्वर जी से रेडियो वाले समय मांग रहे थे। किन्हीं कारणों से कमलेश्वर जी समय नहीं निकाल पा रहे थे। रेडियो वालों ने मुझे फोन किया। कहा कि कमलेश्वर जी का इंटरव्यू करना है। वह समय नहीं दे रहे हैं। जरा बात करके देखिए। मुझे कुछ अजीब-सा लगा क्योंकि कमलेश्वर जी से परिचय तो था, मगर ऐसा नहीं कि उनसे आने का अनुरोध कर सकूं और वह मेरा अनुरोध मान ही लेंगे इसकी कोई गारंटी नहीं थी। फिर तब तक मुझे यह भी मालूम नहीं था कि यह इंटरव्यू मुझे ही करना है। मैंने कमलेश्वर जी को फोन किया। मेरी बात सुनकर वह हंसे। फिर कुछ रुककर कहने लगे कि अच्छा तुम कहती हो तो आ जाऊंगा। चार बजे का समय तय हुआ। मैंने रेडियो वालों को बताया कि निश्चित दिन कमलेश्वर जी आ जाएंगे। तब रेडियो अधिकारी श्याम शर्मा जी कहने लगे कि इंटरव्यू तो आपको ही करना है। मुझे बड़ा संकोच हुआ कि कमलेश्वर जी सोचेंगे कि मैं अपने लिए पैरवी कर रही थी। खैर, तय तारीख़ को मैं रेडियो स्टेशन पहुंची। चार बजे का समय था और कमलेश्वर ठीक चार बजे ही आए। आमतौर पर लेखकों को समय का पाबंद नहीं माना जाता है। उस दिन उनकी रचना प्रक्रिया से लेकर *सारिका* के उनके दिन, सामानांतर कहानी आंदोलन, उनकी लिखी फ़िल्मों आदि पर बातचीत हुई। साक्षात्कार से रेडियो के अधिकारी बहुत खुश हुए।

सालों पहले लोगों ने रेडियो की मौत की घोषणा दूरदर्शन के हल्ले में कर दी थी मगर एफएम के साथ रेडियो और तेज़ गति से लौटा। जितनी कारें बढ़ीं रेडियो के श्रोता बढ़े। ऑटोमोबाइल उद्योग की बढ़त और रेडियो की बढ़त का एक खास रिश्ता जुड़ा। हां नयी पीढ़ी के हिसाब से रेडियो ने खुद को बहुत बदला।

इसके ठीक दो दिन बाद मुझे कुबेरदत्त जी ने फोन किया कि क्षमा तुम्हें पता है कमलेश्वर जी नहीं रहे। मैं सकपका गई। ऐसा लगा जैसे कि कमलेश्वर जी मेरे सामने खड़े हैं। उनकी गूंजती हुई आवाज़, उनकी इंटेलीजेंस, सब खत्म। उनकी नये लेखकों को ज़रूरत से ज्यादा मदद करने की आदत, जिसकी तारीफ़ उनके आलोचक भी करते थे। और अभी तो उस साक्षात्कार का प्रसारण तक नहीं हुआ। कमलेश्वर जी की मृत्यु के दो दिन बाद उसका प्रसारण हुआ था। शायद रेडियो पर कमलेश्वर जी का यह आखिरी साक्षात्कार रहा होगा।

ऐसी ही एक घटना मुझे कांता भारती से जुड़ी याद आती है। उन्हें मैं युववाणी के दिनों

से जानती थी। अपने जीवन पर लिखा उनका उपन्यास *रेत की मछली* उन दिनों बहुत चर्चित हुआ था। वह बहुत ही सुंदर महिला थीं, मगर अपने गुस्से के लिए भी जानी जाती थीं। खैर जिन दिनों की यह बात है, उन दिनों वह ग्रामीण महिलाओं का कार्यक्रम देख रही थीं। उन्होंने मुझे एक वार्ता लिखने के लिए कहा- पति के बाहर जाने पर मुझे यानी कि पत्नी पर क्या गुज़री? वार्ता का विषय कुछ ऐसा था कि मुझे लगा कि इसे व्यंग्य में लिखना है। बस मैंने उस लेख में खूब उड़ाने भरी कि पति जब बाहर जाएंगे तो मैं यह करूंगी, वह करूंगी, खूब पकवान बनाकर खाऊंगी, घूमूंगी, पति की बुराइयां करूंगी आदि। वार्ता अभी आधी ही हुई थी कि एकाएक कांता भारती माइक पर झपटी और कर्कश आवाज़ में कार्यक्रम के बीच में बोलीं 'यह आप क्या कर रही हैं।' बहनों को यह बताइए कि जब पति बाहर चले जाते हैं, तो आपको क्या-क्या परेशानियां झेलनी पड़ती हैं। आप और सुनने वाली बहनें घर कैसे चलाती हैं। दोहरी जिम्मेदारी को किस मुश्किल से निपटाती हैं?' और तब मुझे समझ में आया कि लेख में फोकस किस पर होना चाहिए था। लेकिन अब क्या हो सकता था। आधा कार्यक्रम तो निकल चुका था। कार्यक्रम के बाद मैं जल्दी से स्टूडियो से निकलकर भागी ताकि कांता भारती की नज़र कहीं मुझ पर न पड़ जाए। उनकी आंखों और मुंह से निकलते शोलों को कौन झेलेगा। लेकिन इसके बाद और मजेदार घटना हुई। इसी कार्यक्रम को सुनकर ग्रामीण बहनों ने लिखा कि जो बातें कही जा रही थीं सचमुच उन्हें ही करने का मन करता है, मगर कर नहीं पाते हैं। काश! ऐसे मौके मिल पाते। हम भी बंधनों से आज़ाद हो पाते। आपने क्षमा बहन को बीच में ही क्यों रोक दिया।

1976 से अब तक मैं शायद रेडियो के हज़ारों प्रोग्राम कर चुकी हूं। लगभग हर एकांश में कार्यक्रम किए हैं। कहानियां, नाटक, एकरंग, वार्ता सब कुछ की है। बहुत-सी बातें भी सीखी हैं। जैसे कि रेडियो पर बोलते वक़्त वह को 'वे' और यह को 'ये' बोलना चाहिए क्योंकि रेडियो पढ़ने का नहीं सुनने का माध्यम है इसलिए बोले ऐसे जैसे कि बोलते हैं। बोलते वक़्त पढ़ते हुए न लगें और न ही पढ़ते वक्त पन्नों की खड़खड़ाहट की आवाज़ सुनाई देनी चाहिए। भवानी भाई की कविता बार-बार याद आती है- जिस तरह तू बोलता है उस तरह तू लिख। रेडियो के लिए अगर इसे कुछ बदल दें तो जिस तरह तू बोलता है उस तरह तू पढ़। सुनने वालों को यह न लगे कि बोला नहीं जा रहा है, लिखा हुआ पढ़ा जा रहा है।

सालों पहले लोगों ने रेडियो की मौत की घोषणा दूरदर्शन के हल्ले में कर दी थी मगर एफएम के साथ रेडियो और तेज़ गति से लौटा। जितनी कारें बढ़ीं रेडियो के श्रोता बढ़े। ऑटोमोबाइल उद्योग की बढ़त और रेडियो की बढ़त का एक खास रिश्ता जुड़ा। हां नयी पीढ़ी के हिसाब से रेडियो ने खुद को बहुत बदला। लेकिन रेडियो या आकाशवाणी ने संवैधानिक मूल्यों से शायद ही कभी समझौता किया। वहां सिर्फ़ कार्यक्रम की लोकप्रियता और उसे बढ़त दिलाने के लिए सनसनी फैलाने वाले कार्यक्रमों को वरीयता नहीं दी गई। जनजागरण में रेडियो की सकारात्मक भूमिका से भी इंकार नहीं किया जा सकता।

साठ-सत्तर के दशक में हिंदी फ़िल्मों में नायक-नायिका अक्सर अपने प्रेम के संदेश रेडियो पर गाना गाकर देते थे या रेडियो पर गाकर रातोंरात सुपर स्टार बन जाते थे। नायक या नायिका को रेडियो से कान लगाकर सुनते दिखाया जाता था। वे वियोग के समय को अपने प्रेमी या प्रेमिका की आवाज़ में गाए गाने को सुनकर काट देते थे। इसी दौर में मशहूर शायर साहिर लुधियानवी, शैलेन्द्र, मजरूह सुलतानपुरी, शकील बदायूंनी, जांनिसार अख्तर और इनकी रचनाओं को कर्णप्रिय बनाने वाले संगीतकारों जैसे- रौशन, मदनमोहन, चित्रगुप्त, सी. रामचंद्रन, ओ. पी. नैय्यर, लक्ष्मीकांत प्यारेलाल, खय्याम आदि संगीतकारों और लता मंगेशकर, आशा भोंसले, नूरजहां, शमशाद बेगम, मोहम्मद रफी, मुकेश, मन्ना डे, तलत महमूद, हेमंत कुमार, किशोर कुमार, एस. डी. बर्मन, आर. डी. बर्मन आदि की आवाज़ों को रेडियो ने घर-घर पहुंचाया। तब रेडियो न्यूज का जलवा अलग से था। अंग्रेज़ी सीखने के लिए कहा जाता था कि रेडियो की अंग्रेज़ी न्यूज ध्यान से सुनी जाए। इससे भाषा ज्ञान तो बढ़ेगा ही उच्चारण भी ठीक होगा। 1965 के भारत-पाक युद्ध में चिरंजीत के ढोल के पोल नाटक को सैकड़ों लोग कान लगाकर सुनते थे ऐसा इस लेखिका ने अपने बचपन के दिनों में भी देखा है।

आकाशवाणी तमाम किस्म के सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बना। चाहे बाल विवाह का विरोध हो, दहेज का विरोध, शिक्षा की अनिवार्यता, सफ़ाई की जरूरत, जच्चा-बच्चा स्वास्थ्य, टीकाकरण, परिवार नियोजन, सांप्रदायिकता का विरोध आदि बातें शामिल हैं। इसने किसी तरह की सनसनी फैलाने का काम भी नहीं किया जैसा कि आजकल बहुत से चैनल करते नज़र आते हैं। रेडियो की लोकप्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि लोग अपनी साइकिलों में ट्रांजिस्टर लटकाकर चलते थे। विवाह के अवसर पर रेडियो को लाउडस्पीकर से जोड़ दिया जाता था और पूरे गांव को गीत सुनाई देते थे। इस तरह से गीत-संगीत बजाना उन दिनों बहुत बड़ी बात मानी जाती थी। जिन दिनों विविध भारती की विज्ञापन प्रसारण सेवा शुरू हुई थी उन दिनों इस तरह के कार्यक्रम की बहुत आलोचना हुई थी। कहा गया था कि जनजागरण के एक सरकारी माध्यम को पैसा कमाने की मशीन बनाया जा रहा है। मगर विविध भारती की अपार लोकप्रियता ने आलोचकों को खामोश कर दिया।

रेडियो के बारे में यह भी कहा जाता है कि उसे सुनते हुए आप कोई और काम कर सकते हैं। जैसे कि वर्षों पहले मैं रसोई में काम करते हुए ट्रांजिस्टर से अपने मनपसंद गीत सुनती थी। लाल किले पर होने वाले कवि सम्मेलन को भी मैंने कई बार ऐसे ही सुना है। जिन दिनों फौजी भाइयों के लिए आने वाला जयमाला कार्यक्रम बहुत लोकप्रिय था। तब अमिताभ बच्चन, सुनील गावस्कर ने अदभुत कार्यक्रम प्रस्तुत किए थे। आकाशवाणी के आर्काइव्स में अगर ये कार्यक्रम उपलब्ध हैं तो इन्हें दोबारा श्रोताओं को ज़रूर सुनवाया जाना चाहिए। इन दिनों आकाशवाणी का एफएम चैनल भी बहुत पसंद किया जाता है। आकाशवाणी अब भी लोगों की पहली पसंद है। ठीक है कि एफएम के प्रस्तुतकर्ताओं की गिटपिट के सामने इसे एक गंभीर माध्यम के रूप में देखा जाता है जो इस अगंभीर दौर को ही विजय समझने वालों के लिए एक चुनौती है। ❑

(लेखिका नंदन पत्रिका की कार्यकारी संपादक हैं।
ई-मेल : kshamasharma1@gmail.com)

लोक सेवा प्रसारण और जनभागीदारी

● राजीव कुमार शुक्ला

संभवत: 1999 या 2000 की गर्मियों की बात है। मैं तब के मध्य प्रदेश और अब के छत्तीसगढ़ के एक जनजाति बहुल क्षेत्र में स्थित आकाशवाणी के अंबिकापुर केंद्र में केंद्र निदेशक के तौर पर पदस्थ था। भोपाल में 'यूनिसेफ' द्वारा प्रसार भारती के साथ मिल कर बच्चों के लिए रेडियो और टेलीविज़न कार्यक्रमों पर केंद्रित एक संगोष्ठी-सह-कार्यशाला का आयोजन किया गया था, जिसमें भागीदारी के लिए मुझे भी नामित किया गया। उस आयोजन में सबसे बड़ी उपस्थिति थीं सुविख्यात गीतकार और फिल्म निर्देशक गुलज़ार की, जिनकी प्रबुद्ध रचनात्मकता के प्रशंसकों की ख़ासी बड़ी संख्या तो थी ही, बाल मनोविज्ञान की गहरी समझ रखने वाले और उसका सर्जनात्मक उपयोग करने में सक्षम कृतिकार के रूप में भी उनका बड़ा सम्मान था। 'जंगल बुक' के भारतीय हिंदी टेलीविज़न अवतार के लिए रचे गए उनके शीर्षक गीत 'जंगल-जंगल बात चली है' और विशेषकर उसकी पंक्ति 'चड्ढी पहन के फूल खिला है' की लोकप्रियता उस समय ताज़ी बात थी । प्रसिद्ध फ़िल्म अभिनेत्री और भारतीय बाल चित्र समिति की अध्यक्ष रह चुकीं कामिनी कौशल भी वहां थीं और हिंदी में बाल साहित्य और पत्रकारिता की बड़ी विभूति हरिकृष्ण देवसरे भी सपत्नीक मौजूद थे।

आयोजन में बच्चों के लिए उपयुक्त कार्यक्रमों की परिकल्पना और निर्माण पर गहन और मार्मिक चर्चा के बाद एक सत्र हुआ, जिसमें बच्चों के साथ आमने-सामने बैठ कर बातचीत की गई, उन्हें आकाशवाणी और दूरदर्शन से प्रसारित हो चुके कुछ कार्यक्रम सुनवाए गए और फिर उन पर वहां मौजूद बाल श्रोताओं की प्रतिक्रिया जानी गई। जो बच्चे इसके लिए बुलाए गए थे, उनमें से अधिकांश भोपाल के किसी भव्य विद्यालय के छात्र-छात्राएं थे।

बच्चों के साथ बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ। किसी केंद्र का एक कार्यक्रम था, जिसमें काफ़ी दिलचस्प ढंग से बताया गया था कि पीने का पानी साफ़ क्यों और कैसे होना चाहिए। उसे सुन कर मौजूद बच्चों में से एक ने कहा कि इतने 'बोरिंग सब्जेक्ट' पर प्रोग्राम क्यों बनाया गया। उसे बताया गया कि अपने देश में बहुत बड़ी संख्या में लोग अस्वच्छ पानी पीकर बीमार होते हैं और कई की इससे जान भी चली जाती है। उस बच्चे ने कहा कि यह जिनकी 'प्रॉब्लम' है, वे इसे जानें, उसे ऐसी कोई दिक्क़त नहीं है और इसलिए इस तरह के 'प्रोग्राम' में उसे कोई 'दिलचस्पी' नहीं है।

हिमाचल प्रदेश के आकाशवाणी केंद्र से आए एक प्रसारक ने बताया कि उन्होंने 'चावल की कहानी' शीर्षक से एक धारावाहिक कार्यक्रम बनाया था, जिसमें धान की किस्मों के विकास, धान की खेती और फिर वे सारे चरण प्रस्तुत किए गए, जिनसे हो कर चावल हमारे खाने की थाली में पहुंचता है। इस पर एक बच्चे की प्रतिक्रिया थी कि ''जिनको 'एग्रीकल्चर' या 'फार्मिंग' का करिअर बनाना है, उनके लिए ऐसे 'प्रोग्राम्स' की कुछ रेलीवैन्स हो सकती है, हमें तो अपनी प्लेट में राइस मिल जाता है और हमें उससे ही मतलब है, यह कहां से आता है, इसके 'बोरिंग डिटेल्स' से हमें क्या लेना-देना।''

उन बच्चों की ईमानदारी की तो तारीफ़ की जा सकती है, पर उनके या उनकी पीढ़ी के सरोकारों को ले कर कोई चिंता की जानी चाहिए या नहीं, यह सवाल लोक सेवा प्रसारण को ले कर समाज के सुविधा संपन्न वर्ग के बदलते हुए नज़रिये की पड़ताल के लिए ज़रूरी है। पर इसके पहले शायद यह भी आवश्यक है कि लोक सेवा प्रसारण के उत्स और परंपरा, उसके बुनियादी मूल्यों, उसकी अब तक की यात्रा और वर्तमान स्वरूप की कम से कम एक पहचान कर ली जाए।

यंत्रों पर आधारित जीवन पद्धति को ले कर महात्मा गांधी की आशंकाएं सर्वविदित हैं। पर एक प्रसंग में उन्होंने कहा था कि वे रेडियो में शक्ति देखते थे। जनसंचार के एक माध्यम के रूप में रेडियो की शक्ति को लगभग उसके आविष्कार के बाद ही भांप लिया गया था और स्वाभाविक ही था कि जिनका इस अत्यंत लोकप्रिय माध्यम पर नियंत्रण था, वे भी और समाज के सचेत तथा जागरूक अन्य लोग भी इसके सुविचारित और सुनिश्चित लक्ष्योन्मुख उपयोग के बारे में सोचें और सक्रिय हों। जो बात रेडियो के बारे में सच थी, वह टेलीविज़न के आविर्भाव के बाद उसके बारे में भी उतनी ही, बल्कि और भी ज़्यादा सच हुई, क्योंकि दृश्य-श्रव्य माध्यम होने के कारण इसमें लोगों को अधिक शीघ्रता से तथा और ज़्यादा निर्णायक रूप से प्रभावित करने की संभावनाएं देखी गईं।

तो तयशुदा उद्देश्यों को हासिल करने के लिए प्रसारण विधा का उपयोग करने की प्रवृत्ति तो बहुत पहले से चली आ रही है। असली सवाल यह है कि वे उद्देश्य कौन से हैं। इस मामले में शुरुआत से ही दो स्पष्ट धाराएं प्रकट हो गई थीं– पहली लोक हित को समर्पित लोक सेवा प्रसारण की और दूसरी निजी मुनाफ़े के लिए व्यावसायिक प्रसारण की। उन आरंभिक दिनों में ये दोनों धाराएं एक-दूसरे के बिल्कुल विपरीत और विरुद्ध स्थिति में होती थीं।

लोक सेवा प्रसारण की अवधारणा के सैद्धांतिक आधार हैं– सेवाओं की सार्वभौमिकता, कार्यक्रमों का वैविध्य, वंचित वर्गों समेत अल्पसंख्यक श्रोताओं के लिए कार्यक्रमों का प्रावधान, मतदाताओं को सूचनाओं से लैस रखना और जनसामान्य के सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक स्तरों का संवर्द्धन

करना। इस अवधारणा का जन्म और पोषण समाज के सांस्कृतिक और बौद्धिक विकास के व्यापक आदर्श के अंतर्गत हुआ। देखा जा सकता है कि यहां प्रसारण सेवाओं की समावेशिता पर विशेष बल दिया गया है, यानी प्रसारण संस्था के सेवा क्षेत्र के समूचे भू-भाग के निवासियों को किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना समान गुणवत्ता की और प्रतिभागिता के समान अवसरों के साथ प्रसारण सेवा उपलब्ध कराना।

लोक सेवा प्रसारण के प्रतिष्ठित सिद्धांतों की पहली स्पष्ट प्रस्तावना के रूप में आमतौर पर उन दस्तावेज़ों को लिया जाता है, जो 1 जनवरी, 1927 को ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन, जो अपने आद्याक्षरों बीबीसी के नाम से ज़्यादा लोकप्रिय है, की स्थापना किए जाने के समर्थन में तैयार किए गए थे, जिनमें 1927 के रॉयल चार्टर की व्यापक मान्यता है। उन दस्तावेज़ों में एक ऐसे सार्वजनिक निगम के निर्माण की अनुशंसा की गई थी, जो प्रसारण के क्षेत्र में राष्ट्रीय हितों के ट्रस्टी के तौर पर कार्य करे। यह अपेक्षा की गई थी कि एक सार्वजनिक ट्रस्टी के रूप में यह निगम गंभीर, शैक्षिक और सांस्कृतिक प्रकृति की कार्यक्रम गतिविधियों पर बल देगा, जो इसके श्रोताओं की बौद्धिक रुचियों और उनके सौंदर्यबोध के स्तर को ऊंचा उठाएगा। बीबीसी का मिशन है सूचना, शिक्षा तथा मनोरंजन प्रदान करना। बीबीसी के साथ यह विचार भी जुड़ा हुआ था और है कि वह राजनीतिक और व्यावसायिक, दोनों प्रकार के प्रभावों से मुक्त रहेगा।

लोक सेवा प्रसारण के उद्देश्य को समर्पित ऐसी संस्थाएं अनेक पश्चिमी लोकतांत्रिक देशों और कई अन्य देशों में भी गठित की गईं। यद्यपि इनके रूपों में कुछ भिन्नताएं भी थीं, लेकिन इनमें से प्रत्येक में सार्वजनिक हित के लिए रेडियो और टेलीविज़न सेवाओं के संचालन के प्रति प्रतिबद्धता का भाव बुनियादी संकल्पना के रूप में मौजूद था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जो मुख्य तरीक़ा अपनाया गया, वह था राज्य के स्वामित्व वाले एक ऐसे प्रसारण तंत्र की स्थापना करना, जिसका उस देश में प्रसारण के क्षेत्र में या तो एकाधिकार हो या जो कम से कम सर्वाधिक प्रभुत्वशाली प्रसारण संस्था हो। इसके लिए धनराशि रेडियो (और बाद में टेलीविज़न) पर लाइसेंस शुल्क या करों या इसी प्रकार के ग़ैर-व्यावसायिक विकल्पों से जुटाई जाती थी।

बीबीसी के अतिरिक्त ऐसे राष्ट्रीय जन-सेवा प्रसारण संगठनों के कुछ अन्य उदाहरण हैं नीदरलैंड ब्रॉडकास्टिंग फाउंडेशन, डेनिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन, केनेडियन ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन, ऑस्ट्रेलियन ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन, रेडियो न्यूज़ीलैंड, एनएचके (जापान) आदि। भारत में पारंपरिक रूप से यह भूमिका ऑल इंडिया रेडियो यानी आकाशवाणी और दूरदर्शन ने निभाई है, जो अब देश के प्रमुख लोक सेवा प्रसारक 'प्रसार भारती' के दो घटकों के तौर पर काम कर रहे हैं। अब इस क्षेत्र में कुछ अन्य प्रसारण संस्थाएं भी सक्रिय हैं, जिनमें विशिष्ट हैं लोक सभा टेलीविज़न और राज्य सभा टेलीविज़न। पब्लिक सर्विस ब्रॉडकास्टिंग ट्रस्ट (पीएसबीटी) नामक संस्था ने विभिन्न प्रसारण संस्थाओं से प्रसारण हेतु कई कार्यक्रमों का निर्माण किया है। देश में सामुदायिक रेडियो प्रसारण का भी अब निरंतर विस्तार हो रहा है, जिससे निश्चय ही भारत में लोकसेवा प्रसारण के क्षेत्र में अनेक नये आयाम जुड़ने का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

जहां तक भारत में जनसेवा को समर्पित रेडियो प्रसारणों का प्रश्न है, निश्चय ही उसमें लगभग केंद्रीय भूमिका ऑल इंडिया रेडियो यानी आकाशवाणी ने निभाई है। जब देश 15 अगस्त, 1947 को आज़ाद हुआ, तब भारत के क्षेत्र में आए भू-भाग में ऑल इंडिया रेडियो के 6 केंद्र और 18 ट्रांसमीटर थे। उसके कार्यक्रम देश के केवल 2.5 प्रतिशत क्षेत्रफल तक पहुंच पाते थे और जनसंख्या के मात्र 11 प्रतिशत के लिए उपलब्ध थे। अब आकाशवाणी के देशभर में फैले विशाल 'नेटवर्क' में प्रसारण केंद्रों की संख्या 400 के निकट पहुंच रही है, जिनमें 200 से अधिक केंद्रों पर कार्यक्रमों का नियमित निर्माण होता है। मीडियम वेब, शॉर्ट वेव और एफएम ट्रांसमीटर्स की मिली-जुली कुल संख्या साढ़े पांच सौ से ऊपर है, जिनके माध्यम से अब आकाशवाणी के कार्यक्रम देश के 91.9 प्रतिशत क्षेत्रफल और 99.2 प्रतिशत जनसंख्या के लिए सुलभ हैं। प्रसार भारती की डीटीएच सेवा 'डीडी डायरेक्ट प्लस' पर आकाशवाणी के भी 21 चैनल उपलब्ध हैं, जो समूचे देश में 'सेट टॉप बॉक्स' के ज़रिये सुने जा सकते हैं। इनमें से अनेक क्षेत्रीय भाषाओं के कार्यक्रमों के चैनल हैं और उनके माध्यम से इन भाषाओं जैसे– बांग्ला, तमिल, मराठी आदि के कार्यक्रम उनके श्रोताओं के लिए सदैव उपलब्ध हैं, चाहे वे देश में कहीं भी रहते हों। पिछले दिनों आकाशवाणी, दिल्ली के अत्यंत लोकप्रिय चैनल एफएम गोल्ड और विदेश प्रसारण सेवा की उर्दू सर्विस के कार्यक्रमों के सजीव 'इंटरनेट' प्रसारण आरंभ हुए और इसके साथ ही आकाशवाणी के वेब-प्रसारणों में नया आयाम जुड़ गया। ध्यातव्य है कि आकाशवाणी के समाचार सेवा प्रभाग के अनेक प्रमुख समाचार बुलेटिन तथा कई अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रम पहले से ही इंटरनेट पर उपलब्ध थे। आकाशवाणी के प्रसारणों के 'डिजिटलाइज़ेशन' की भी एक बेहद महत्वाकांक्षी योजना क्रियान्वित की जा रही है, जिससे प्रसारण गुणवत्ता को और बेहतर बनाने तथा उसमें अनेक नये आयाम जोड़ने की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति होगी।

अभी की चर्चा मुख्य रूप से आकाशवाणी के नेटवर्क के विस्तार और तक़नीकी विकास पर केंद्रित थी (ऐसी ही उपलब्धियां दूरदर्शन द्वारा भी हासिल की गई हैं)। निश्चय ही नयी और बेहतर प्रौद्योगिकी का निरंतर समावेश जीवन के अन्य तमाम क्षेत्रों की तरह प्रसारण की दुनिया में भी अनिवार्य हो चुका है, पर अंततः जनसामान्य के लिए रेडियो या टेलीविज़न के कार्यक्रमों में सबसे महत्वपूर्ण तत्व है उनकी विषयवस्तु और उसका निर्वाह। संसार में कोई भी संप्रेषण हो, कथ्य और शिल्प, विषय और प्रस्तुतिकरण की यह केंद्रीयता उसमें होगी ही।

रेडियो कार्यक्रमों का माध्यम श्रव्य होने के कारण उसमें मूलतः ध्वनि का संप्रेषण होता है। भाषाओं का महत्व रेडियो में टेलीविज़न से ज़्यादा है। रेडियो में भाषाओं और उपभाषाओं/बोलियों के प्रयोग के लिए वाचिक परंपरा का ज्ञान, उसके प्रयोग की कुशलता और देश की मिट्टी से जुड़ाव ज़रूरी होता है। यहां इस तथ्य का उल्लेख भी प्रासंगिक होगा कि धर्मों, संप्रदायों, खानपान, रहन-सहन, वेशभूषा, रीति-रिवाज़ों, भौगोलिक तथा सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक विविधताओं के संसार में जैसी अनूठी इंद्रधनुषी छटाएं हमारे देश में हैं, वैसा ही लगभग चमत्कारिक

वैविध्य यहां भाषाओं और बोलियों का भी है। वर्तमान में संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भारतीय भाषाएं उल्लिखित हैं और आकाशवाणी द्वारा इन सभी और अंग्रेज़ी यानी कुल 23 भाषाओं में तथा लगभग डेढ़ सौ बोलियों में कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है। आकाशवाणी का हर वर्ष एक विशिष्ट आयोजन होता है सर्वभाषा कवि सम्मेलन, जिसमें सभी 22 भारतीय भाषाओं की प्रतिनिधि कविताओं का पाठ उनके कवियों द्वारा एक मंच से किया जाता है और हर भाषा की कविता के पाठ के बाद उसके हिंदी अनुवाद की प्रस्तुति उसी मंच पर की जाती है। इस पूरे कार्यक्रम की रिकॉर्डिंग का प्रसारण गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर किया जाता है।

आकाशवाणी के समाचार सेवा प्रभाग द्वारा हर घंटे हिंदी और अंग्रेज़ी में और दिन में कई बार देश की अन्य अनेक प्रमुख भाषाओं में भी केंद्रीय समाचार बुलेटिन प्रसारित किए जाते हैं। इनके अलावा, देशभर में फैले हुए क्षेत्रीय समाचार एकांश भी अनेक भाषाओं में प्रादेशिक समाचार बुलेटिन प्रसारित करते हैं। इस प्रकार देश के सभी क्षेत्रों के लोगों को उनकी अपनी भाषा में देश, दुनिया और अपने प्रदेश तथा अंचल की ताज़ा ख़बरें लगातार मिलती रहती हैं। समसामयिक महत्वपूर्ण घटनाओं पर परिचर्चाएं और विश्लेषणात्मक कार्यक्रम भी नियमित रूप से प्रसारित किए जाते हैं।

संगीत के कार्यक्रमों में शास्त्रीय, लोक, जनजातीय, सुगम, फ़िल्म और पाश्चात्य संगीत के कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। इस प्रकार विभिन्न रुचियों के श्रोताओं के मनोरंजन के साथ देश की अद्भुत विविधाताओं से समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं का संरक्षण, संवर्द्धन और समन्वय होता है।

उच्चरित शब्द कार्यक्रमों के तहत नियमित रूप से वार्ताएं, साक्षात्कार, परिचर्चाएं-परिसंवाद, कविताएं, कहानियां आदि का प्रसारण होता है। रेडियो नाटक, रूपक, पत्रिकाएं, आंखों देखा हाल, रेडियो रिपोर्ट आदि भी अत्यंत लोकप्रिय और प्रभावी रेडियो विधाएं हैं। कई कार्यक्रम राष्ट्रीय स्तर पर तैयार और प्रसारित किए जाते हैं और कई केंद्र उन्हें 'रिले' करते हैं, पर कहीं अधिक अनुपात विभिन्न केंद्रों द्वारा अपनी-अपनी भाषाओं व बोलियों में निर्मित और प्रसारित किए जाने वाले कार्यक्रमों का है।

जन-सेवा प्रसारण की दृष्टि से विशेष श्रोता वर्गों के कार्यक्रमों की अलग से चर्चा वांछित है। ग्रामीण श्रोताओं के लिए लगभग सभी आकाशवाणी केंद्रों से प्रतिदिन स्थानीय बोलियों में कार्यक्रम प्रसारित कर खेती-बाड़ी के बेहतर वैज्ञानिक तौर-तरीक़ों और ग्रामीण विकास के सभी पक्षों जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, घरेलू और कुटीर उद्योग आदि पर रोचक और उपयोगी जानकारी दी जाती है। अंधविश्वासों और कुरीतियों के विरुद्ध जागरुकता बढ़ाने के प्रयास भी किए जाते हैं।

अनेक आकाशवाणी केंद्र गृहिणियों और कामकाजी महिलाओं के लिए सप्ताह में कई दिन विशेष कार्यक्रमों का प्रसारण करते हैं, जिनका लक्ष्य स्त्री-पुरुष समानता के आदर्श की स्थापना हेतु चेतना निर्माण और देश की आधी आबादी को अपने कानूनी और सामाजिक अधिकारों से अवगत कराना होता है। बच्चों, किशोरों और युवाओं के लिए भी सभी आकाशवाणी केंद्र नियमित कार्यक्रमों का प्रसारण करते हैं। कई आकाशवाणी केंद्र सेना के जवानों, औद्योगिक श्रमिकों आदि विशिष्ट वर्गों के लिए भी कार्यक्रमों का प्रसारण करते हैं। हाल के वर्षों में वरिष्ठ नागरिकों यानी वृद्धजनों के लिए प्रसारित किए जाने वाले कार्यक्रमों का महत्व बहुत बढ़ा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से देश के प्रमुख जन-सेवा प्रसारक के तौर पर आकाशवाणी की अनेक उपलब्धियों के कुछ विशिष्ट उदाहरणों की चर्चा भी यहां समीचीन होगी। संसदीय लोकतंत्र के मूल्यों और प्रक्रियाओं से आम लोगों को परिचित कराने और मताधिकार के उपयोग से ले कर सभी स्तरों पर राजनीतिक-सामाजिक गतिविधियों में जन-भागीदारी को प्रोत्साहित करने में आकाशवाणी ने महत्वपूर्ण योगदान किया है।

विकास संप्रेषण के क्षेत्र में तो आकाशवाणी द्वारा निभाई गई सक्रिय भूमिका जैसे हरित क्रांति को संभव बनाने में उसके योगदान को व्यापक मान्यता और सराहना मिली है। इसी प्रकार हमारी साझा सांस्कृतिक विरासत विशेषकर शास्त्रीय और लोक तथा जनजातीय संगीत के संरक्षण-संवर्द्धन और हमारे देश की अनेक भाषाओं और बोलियों को जीवंत और प्रचलित बनाए रखने में उसकी उपलब्धियां शानदार रही हैं। प्राकृतिक आपदाओं जैसे समुद्री तूफान, भूकंप, बाढ़, सुनामी आदि के समय बचाव, राहत और पुनर्वास गतिविधियों में भी आकाशवाणी ने तत्परतापूर्वक कार्य किया है। राष्ट्रीय अस्मिता और अनेकता में एकता के बोध के व्यापक प्रसार में आकाशवाणी का प्रशंसनीय योगदान रहा है। ये सभी गतिविधियां अब भी जारी हैं।

बदलते समय के साथ जन-सेवा प्रसारण का स्वरूप दुनियाभर की तरह भारत में भी बदला है। अब श्रोता अपनी पसंद और रुचि के कार्यक्रम बेहतर तकनीकी गुणवत्ता के साथ सुनना चाहते हैं। कार्यक्रम प्रस्तुतिकरण की शैली भी अब अधिक अनौपचारिक, मित्रवत तथा आत्मीय हो रही है। इसमें निजी प्रसारण संगठनों से बढ़ती होड़ का भी कुछ हाथ रहा है।

'फोन-इन', 'चैट-शो' जैसे अंत:क्रियात्मक कार्यक्रमों का प्रचलन बढ़ा है, जिनमें श्रोता कार्यक्रम में सीधे भाग ले कर विभिन्न विषयों के विद्वानों, जन-प्रतिनिधियों और सरकारी अधिकारियों के साथ अपनी जिज्ञासाओं और शिकायतों के साथ सीधा संवाद भी कर पाते हैं। तत्काल उपयोगिता के प्रसंगों जैसे सड़क यातायात की स्थिति, रेलों की आवाजाही, मौसम का पूर्वानुमान आदि की मांग बढ़ी है। खेल प्रसारणों की लोकप्रियता अक्षुण्ण बनी हुई है।

लोक सेवा प्रसारण की दुनिया में शायद सबसे ख़ास समकालीन प्रवृत्ति यह है कि श्रोता और दर्शक अब अपनी रुचि, हित और सरोकारों से जुड़े कार्यक्रम भी दक्ष प्रस्तुति कौशल के साथ ही चाहते हैं यानी चाहे कितना ही जनकल्याण को समर्पित कार्यक्रम हो, अगर वह उबाऊ तथा सुस्त है और उच्च तक़नीकी तथा प्रस्तुति गुणवत्ता का नहीं है, तो उसके लोगों द्वारा ग्रहण किए जाने की संभावना नगण्य ही रह जाती है। तो नये ज़माने की सीख यह है कि श्रेष्ठ उद्देश्यों और रोचक तथा आकर्षक प्रस्तुति का बढ़िया संगम ही सफल और प्रभावी लोक सेवा प्रसारण की कुंजी है। विशेषकर नयी पीढ़ी की अपेक्षाएं इस संदर्भ में पूरी की जानी ज़रूरी हैं। क्या आपको आरंभ में वर्णित प्रसंग का स्मरण आया? शायद इसी सोच और समझदारी से लोक सेवा प्रसारण की आगे की दिशा तय होगी। ❑

(लेखक आकाशवाणी महानिदेशालय, नयी दिल्ली में उप-महानिदेशक (प्रभारी) (कार्यक्रम, नीति, खेल तथा विपणन) हैं।
ई-मेल : jalagat@gmail.com)

भारत में सामुदायिक रेडियो का भविष्य

● विनोद सी. अग्रवाल

अधिकांश लोकतांत्रिक देशों में सिविल सोसाइटी और ग़रीबों की आवाज़ को शामिल करने की मांग के मद्देनज़र मीडिया नीतियां और प्रसारण व्यवस्था में परिवर्तन किए जा रहे हैं। अगर हम अतीत की ओर देखें, तो भारत के बारे में कहा जा सकता है कि भारत की प्रसारण व्यवस्था बीबीसी के मॉडल पर विकसित हुई और 80 वर्ष से ज़्यादा तक नौकरशाही और पितृपक्ष की प्रसारण व्यवस्था पर आधारित रही है। अब भारत की प्रसारण व्यवस्था लाभोन्मुख बनाई गई है और इसे बाज़ार की शक्तियों के अनुसार संचालित किया जा रहा है (पवराला और मलिक 2007:243)। भारत सरकार ने 1885 के इंडियन टेलीग्राफ एक्ट के अनुसार स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तत्कालिक औपनिवेशिक सरकार से रेडियो और टेलीविजन के एकमात्र प्रसारण अधिकार प्राप्त कर लिए थे। सुप्रीम कोर्ट ने इसके बाद अपना ऐतिहासिक फ़ैसला सुनाया, जिसमें कहा गया कि वायु तरंगें सार्वजनिक संपत्ति हैं और इन्हें जनकल्याण के लिए इस्तेमाल किया जाना चाहिए। इससे प्रसारण में अभूतपूर्व परिवर्तन आ गए। यह फ़ैसला आर्थिक उदारीकरण और 1992 के मीडिया निजीकरण से मेल खाता है और परिवर्तन को प्रोत्साहित करता है।

यह सभी ऐतिहासिक और मीडिया से जुड़ी हुई घटनाएं हैं और इन्होंने देश के संचार पर्यावरण को सामुदायिक रेडियो की मांग के बारे में प्रभावित किया है। 1995 के बाद सामुदायिक रेडियो आंदोलन विकसित हुआ और आज सामुदायिक रेडियो को राष्ट्रीय मान्यता मिल चुकी है और इसने सार्थक रूप से समाज की सेवा शुरू कर दी है। तब से अनेक रेडियो शोध भी किए गए हैं, हालांकि इनकी संख्या बहुत सीमित हैं लेकिन इनसे कोई ऐसा पक्का सबूत नहीं मिलता कि सामुदायिक रेडियो ने व्यक्तिगत अधिकारों को बढ़ावा दिया है और भारत में लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रोत्साहित करने का काम शुरू कर दिया है।

बाज़ार संचालित मीडिया में व्यापार और वित्तीय सीमाएं अन्य प्रमुख कारण हो सकते हैं, जिनसे सामुदायिक रेडियो का विकास धीमा रहा। निहित रूप से लाइसेंस की शर्तें उन रेडियो स्टेशनों के पक्ष में हैं, जो काफी पैसे वाले हैं, जबकि सामुदायिक रेडियो का समर्थन करने वाली सिविल सोसाइटी के साधन कम शक्ति वाले और कम ख़र्चीले होते हैं। ये सामुदायिक रेडियो बहुत किफ़ायती बजट पर चलते हैं।

सामुदायिक रेडियो को कमोवेश राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार का समर्थन मिला है। गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ), सामुदायिक संगठनों ने इनका समर्थन किया है। हालांकि बाहरी समर्थन समाप्त होते ही सामुदायिक रेडियो की निरंतरता ख़तरे में पड़ जाती है। सामुदायिक रेडियो के लिए भारत सरकार ने नीति-निर्धारित करने में कई वर्ष लगाए। वर्ष 2005 में देश में सामुदायिक रेडियो स्टेशनों की स्थापना के लिए लाइसेंस देने का काम शुरू किया गया।

यहां पर यह उल्लेख करना ज़रूरी है कि भारत सरकार ने आखिरकार नवंबर 2006 में सामुदायिक रेडियो नीति को अनुमोदन प्रदान किया। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने ऐलान किया कि उसने नयी सामुदायिक रेडियो नीति के अनुसार देशभर में 4,000 सामुदायिक रेडियो केंद्र खोलने का फ़ैसला किया है। सामुदायिक रेडियो के पैरोकारों ने महसूस किया कि नवंबर 2006 में सामुदायिक रेडियो नीति के अनुमोदन से विकास में भागीदारी प्राप्त करने के सभी लक्ष्य ज़ल्दी-ज़ल्दी पूरे हो जाएंगे। सामुदायिक रेडियो को किसी समुदाय के सदस्यों द्वारा संचालित और स्वामित्व वाला रेडियो समझा जाता है और इसके लक्षण हैं आसान पहुंच, फ़ैसला करने और उत्पादन में भागीदारी, और लाभ न कमाने वाली श्रोता हितैषी अर्थव्यवस्था। इन केंद्रों का प्रबंधन उन लोगों के हाथों में होता है, जो इन्हें सुनते हैं और उनसे लाभ उठाते हैं (वाइसेज/यूएनडीपी 2004:2)। अगर इतिहास की तरफ ध्यान दें, तो सामुदायिक रेडियो का इतिहास पुराना नहीं है, हालांकि यह काफी बढ़ चुका है। सूचनाओं के अनुसार आज देशभर में 126 रेडियो स्टेशन संचालित किए जा रहे हैं और इनका प्रबंधन एनजीओ और शिक्षा संस्थानों के हाथों में है।

सामुदायिक रेडियो का विकास

सामुदायिक रेडियों के विकास में कई प्रकार की बाधाएं आईं। राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी के चलते आर्थिक-सामाजिक विकास में सामुदायिक रेडियो की भूमिका की आमतौर पर अनदेखी की गई है। यहां पर इस बात पर ज़ोर देना है कि अपने आप में सामुदायिक रेडियो न तो कोई लक्ष्य है और न ही सामाजिक विकास तक सबको पहुंचाने का कोई स्वतंत्र साधन। इसमें ज़मीनी स्तर पर तालमेल लाना होता है, पहल करनी होती है

और क्षमता निर्माण के साधन जुटाने पड़ते हैं। (वाइसेज/यूएनडीपी 2004:3)।

बाज़ार संचालित मीडिया में व्यापार और वित्तीय सीमाएं अन्य प्रमुख कारण हो सकते हैं, जिनसे सामुदायिक रेडियो का विकास धीमा रहा। निहित रूप से लाइसेंस की शर्तें उन रेडियो स्टेशनों के पक्ष में हैं, जो काफी पैसे वाले हैं, जबकि सामुदायिक रेडियो का समर्थन करने वाली सिविल सोसाइटी के साधन कम शक्ति वाले और कम ख़र्चीले होते हैं। ये सामुदायिक रेडियो बहुत किफ़ायती बजट पर चलते हैं। हालांकि इन्हें हर घंटे पांच मिनट के विज्ञापन देने की इज़ाजत है। लेकिन विज्ञापन से आने वाला राजस्व इनके लिए नाकाफ़ी साबित होता है।

ऐसा लगता है कि सामुदायिक रेडियो शहरी और ग्रामीण ग़रीबों दोनों के पक्ष में है। इसमें काफी तक़नीकी और कार्यक्रम संबंधी विशेषज्ञता की ज़रूरत पड़ती है। भले ही रेडियो प्रौद्योगिकी आसान बना दी गई हैं, इसीलिए कार्यक्रमों की विशेषज्ञता और तक़नीकी जानकारी की विशेषज्ञता ठीक समय पर और नियमित तरीक़े से उपलब्ध कराने की ज़रूरत पड़ती है ताकि सामुदायिक रेडियो को विस्तारित और प्रोत्साहित किया जा सके।

यहां पर नीचे पांच सामुदायिक रेडियो संगठनों की चर्चा की जा रही है, जो देश के विभिन्न भागों में चल रहे हैं। इन अध्ययनों से सामुदायिक रेडियो की क्षमता का पता चलेगा और ज़ाहिर होगा कि विकास में वह कितनी सशक्त भूमिका निभाते हैं। यहां पर तर्क़ दिया जा सकता है कि भारत जैसे विशाल देश में जहां कई भाषाएं बोली जाती हैं और लोगों के क्षेत्रीय/सांस्कृतिक आधार में विभिन्नता है, को स्थानीय लोगों की ज़रूरत के अनुकूल बनाना होता है।

इस संदर्भ में ऐसा जान पड़ता कि सामुदायिक रेडियो सबसे अच्छा विकल्प प्रस्तुत करते हैं, जिनके ज़रिये लोगों और रेडियो स्टेशनों के बीच दोतरफा संवाद कायम हो सकता है और समुदाय के सदस्य देश और दुनिया के अन्य लोगों के साथ विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। इससे देश की राजनीतिक और लोकतांत्रिक व्यवस्था को मज़बूत बनाने में सहायता मिलती है, क्योंकि यहां की नौकरशाही बहुत बड़ी है।

कुंजल पंजे कचजी (कच्छ क्षेत्र के सारस और बगुले)

कुंजल पंजे कचजी सामुदायिक रेडियो ने गुजरात के भुज स्थित आकाशवाणी से वर्ष 2001 में प्रसारण शुरू किया। यह रेडियो प्रसारण उन महिलाओं की महत्वाकांक्षाओं, रचनात्मकता और एक महिला संगठन-कच्छ महिला विकास संगठन से संबंधित है, जो विकास के लिए काम कर रही हैं। कुंजल पंजे कचजी रेडियो प्रसारण कच्छ क्षेत्र के गांवों में अधिकांश लोगों द्वारा सुना जाता है और गुजरात के अन्य जिलों में भी सुनाई पड़ता है। यह प्रसारण कच्छी भाषा में होता है जो गुजरात की एक बोली है। प्रसारण में लोक अभिव्यक्तियों को इस्तेमाल किया जाता है जो कच्छ क्षेत्र में लोकप्रिय है। इसके लिए रिपोर्टर और रेडियो कलाकार स्थानीय समुदाय से चुने जाते हैं। यह सामुदायिक रेडियो स्थानीय मुद्दों पर बहुत अच्छे कार्यक्रम तैयार करते हैं। स्थानीय समस्याओं को उठाया जाता है और उनके समाधान प्रस्तुत किए जाते हैं। स्थानीय समुदाय इस कार्यक्रम के उत्पादन का एक अभिन्न अंग है। इस कार्यक्रम के लिए महिलाएं भी उपयुक्त जानकारी देती हैं जो विचारों और अनुभवों के आदान-प्रदान के रूप में होता है।

कुंजल पंजे कचजी मूल रूप से एक प्रायोजित कार्यक्रम है, जिसका अनेक बाहरी सरकारी एजेंसियां भी समर्थन करती हैं। इसमें महिला नेतृत्व और सुशासन, बालिकाओं को शिक्षा का अधिकार, कन्या भ्रूण हत्या, नव विवाहिताओं को दहेज के लिए परेशान करने, महिलाओं द्वारा आत्महत्या और अप्राकृतिक मृत्यु, महिलाओं पर सिर्फ़ पुत्र पैदा करने के लिए दबाव डालने, महिला मृत्युदर और मातृ स्वास्थ्य जैसे विषय शामिल हैं।

नम्मा ध्वनि (हमारी आवाज़)

नम्मा ध्वनि सामुदायिक रेडियो कर्नाटक के कोलार जिले के बउगरपेट तालुका के बुधिकोटे समुदाय का भागीदारी प्रयास है। यह देश का पहला सामुदायिक रेडियो स्टेशन होने का दावा करता है। नम्मा ध्वनि के कार्यक्रम बुधिकोटे में बनाए जाते हैं। बुधिकोटे में एक संसाधन केंद्र भी है, जिसमें कंप्यूटर सुविधा सामुदायिक रेडियो से जोड़ दी गई है (एंथनी, 2004:4)। पहले अनुमान लगाया गया था कि लगभग 236 अतिरिक्त केवल टेलीविजन वाले परिवार नम्मा ध्वनि के कार्यक्रम सुन सकते हैं। तब से कोशिश यह की गई है कि अन्य क्षेत्रों में भी यह कार्यक्रम उपलब्ध कराया जा सके (नायर 2007 http:ictpr.nic.in/nammadhwani/2jul.htm)। नम्मा ध्वनि की पहुंच बढ़ाने के उद्देश्य से लाउडस्पीकर पर तीन अन्य गांवों में शुरू किया गया। इस काम में स्थानीय संसाधन केंद्रों का सहयोग लिया गया। इससे नम्मा ध्वनि की आय बढ़ी।

नम्मा ध्वनि के 35 स्व सहायता समूह बुधिकोटे में और इसके आसपास काम कर रहे हैं। नम्मा ध्वनि के श्रोता अधिकांश ग़रीब और निरक्षर महिलाएं हैं, जिनके पास सूचना तक पहुंचने के अन्य साधन नहीं हैं। अधिकांश महिलाएं इस रेडियो प्रसारण को समूह में सुनती हैं।

मंदाकिनी की आवाज़

मंदाकिनी की आवाज़ एक सामुदायिक रेडियो है, जिसकी शुरुआत एशिया डेवलपमेंट सेटेलाइट रेडियो सर्विस द्वारा उत्तराखंड के गढ़वाल क्षेत्र के कुछ चुनिंदा गांवों में की गई। इस रेडियो प्रसारण के बाद श्रोताओं में सामूहिक चर्चा होती है, जिसका संचालन विशेष रूप से प्रशिक्षित ग्रामीण नेता करते हैं। कार्यक्रम में महत्वपूर्ण मुद्दे उठाए जाते हैं। वाइस ऑफ मंदाकिनी को सामुदायिक रेडियो लाइसेंस प्राप्त है।

वाइस ऑफ मंदाकिनी नदी घाटी के श्रोताओं तक पहुंचता है जो गढ़वाल क्षेत्र के अलग-थलग गांवों में रहते हैं। इस समय मंदाकिनी की आवाज़ के 10 हज़ार श्रोता हैं और इनकी संख्या बढ़ रही हैं। ये सामुदायिक रेडियो उत्पादन केंद्र धनाज गांव में स्थित है और इसे सामुदायिक मीडिया केंद्र कहा जाता है। नवंबर, 2006 से यहां कार्यक्रम तैयार करने के सभी उपकरण और सुविधाएं जुटा ली गई हैं और यह पूरी तरह से काम कर रहा है। इसे आईपीडीसी/यूनेस्को की सहायता से चलाया जा रहा है।

नम्मा ध्वनि की तरह मंदाकिनी की आवाज़ को दूर-दूर तक पहुंचाने के लिए अनेक स्थानीय केबल टेलीविजन तंत्रों ने इसके प्रसारण को कम्युनिटी रेडियो कार्यक्रमों के तौर पर देना शुरू कर दिया है। इस तरह से बड़ी संख्या में केबल टेलीविजन कनेक्शन

रखने वाले परिवार मंदाकिनी की आवाज़ सुनने लगे हैं। इसके अलावा सामुदायिक सदस्यों ने कई क्षेत्रों में रेडियो भी वितरित किए हैं, जिससे इन कार्यक्रमों की समाज के ग्रामीण क्षेत्रों में पहुंच बढ़ गई है।

एक से ज़्यादा तरीक़े से मंदाकिनी की आवाज़ में बाहरी रूप से ग्रामवासियों में एक नया विचार प्रस्तुत किया है। गैर-सरकारी संगठनों ने इस कार्यक्रम द्वारा प्रसारित सूचनाओं के महत्व की सराहना की है। इसकी अवधारणा का गांवों ने स्वागत किया है और इसके प्रति ठोस उत्साह दिखाया है (सिंह 2007:39)। शुरुआती रिपोर्ट में कहा गया कि ग्रामवासी इस सामुदायिक रेडियो के कार्यक्रमों में उस क्षेत्र विशेष के विषयों से ज़्यादा जुड़े थे। उन्होंने उन बातों की ज़्यादा परवाह नहीं की जो आकाशवाणी द्वारा स्थानीय गांवों की ज़रूरतें पूरी करने के लिए प्रसारित की जाती हैं। लोगों ने इस बात की बहुत सराहना की कि एक सामुदायिक रेडियो मंच उनकी ज़रूरतें पूरी कर रहा है... उनके विचारों और अभिमत को वाणी दे रहा है और सीधे-सीधे सूचना के अधिकार जैसे अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों के बारे में चेतना पैदा कर रहा है (सिंह 2007:39)। ग्रामवासी चाहते थे कि यह सामुदायिक रेडियो सुशासन में पारदर्शिता लाने का एक महत्वपूर्ण साधन बने (सिंह 2007:39)।

केलू सखी (सुनो सखी)

केलू सखी (सुनो सखी) इस सामुदायिक रेडियो की शुरुआत नवंबर 2006 में की गई। यह ऐसा सामुदायिक रेडियो प्रसारण परियोजना थी, जिसका प्रारंभ बंगलुरु के आईटी फार चेंज, महिला समाख्या कर्नाटक (भारत सरकार द्वारा महिला सशक्तीकरण के लिए चलाया जा रहा ज़मीन से जुड़ा एक संगठन) और कॉमनवेल्थ एजुकेशनल मीडिया सेंटर फॉर एशिया, नयी दिल्ली द्वारा संयुक्त रूप से संचालित किया जाता है।

केलू सखी रेडियो ब्रॉडकास्ट का उद्देश्य है उन निरक्षर ग्रामवासी महिलाओं तक सूचना और ज्ञान पहुंचाना और उन्हें शिक्षित करना। इसकी अधिकांश श्रोता कर्नाटक की महिला समाख्या की सदस्य होती हैं। कर्नाटक महिला समाख्या हर गांव में स्थापित एक सूक्ष्म ऋण संबंधी ग्रामीण समूह है। इसके कार्यक्रमों में महिला शिक्षा, स्वास्थ्य, राजनीतिक संस्थान और क्षमता निर्माण/आत्मनिर्भरता प्रदान करने वाले कार्यक्रम होते हैं, जिन्हें महिला समाख्या ने अपना विकास लक्ष्य बनाया हुआ है।

पिछले दिनों से इसकी एक उत्पादन प्रक्रिया और उत्पादन टीम विकसित कर ली गई है। सहभागी सदस्य इनके सक्रिय सदस्य हैं। आईटी फार चेंज के सदस्य ही संसाधन पुरुष बनते हैं। वह ही उन विषयों का चुनाव करते हैं जिन पर कार्यक्रम बनाए जाने हैं। कार्यक्रम को तैयार करने की जिम्मेदारी प्रमुखत: आईटी फार चेंज की है जिसके लिए 20 महिला समाख्या सदस्यों को प्रशिक्षित किया गया है। इन लोगों को कार्यक्रम निर्माण प्रक्रिया और निर्माण कार्यक्रमों की अच्छी जानकारी है।

शहरी रेडियो ऐक्टिव

रेडिया ऐक्टिव बंगलुरु का सामुदायिक रेडियो है जिसकी शुरुआत 2007 में की गई। समाज की प्रगति और कल्याण की परंपरा को आगे बढ़ाने को ध्यान में रखते हुए जैन ग्रुप ऑफ इंस्टीट्यूशन ने इसका समारंभ किया। जैन ग्रुप ऑफ इंस्टीट्यूशन में लगभग 35 शिक्षा संस्थाएं शामिल हैं, ये सभी सामुदायिक विकास और प्रगति के लिए काम करते हैं। रेडियो एक्टिव बंगलुरु की जनता को शिक्षित करने का काम करता है और स्वास्थ्य, पर्यावरण विकास, वैज्ञानिक चेतना, सामाजिक मुद्दों जैसे अन्य विषयों पर सूचनाएं प्रसारित करता है ताकि वह अपने श्रोताओं को शिक्षित कर सके। हालांकि कि रेडियो एक्टिव के अपने श्रोताओं का एक आधार है लेकिन उन्हें किसी भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर परिभाषित नहीं किया जा सकता। इसके सदस्य श्रोता क्लब के सदस्य भी हैं और कार्यक्रम भी तैयार करते हैं। ताज़ा सूचना के अनुसार यह साढ़े 13 घंटे प्रति सप्ताह का प्रसारण कर रहा है और इस सामुदायिक रेडियो ने दो रेडियो जॉकी नियुक्त किए हैं। रेडियो एक्टिव ने इन दिनों कई प्रायोजित कार्यक्रम भी शुरू किए हैं, जिनसे अतिरिक्त राजस्व मिलता है। यह रेडियो कार्यक्रम क़चरा प्रबंधन और आवारा कुत्तों के प्रबंधन जैसे विषयों पर होते हैं।

निष्कर्ष

ऊपर जिन पांच सामुदायिक रेडियो संगठनों की चर्चा की गई है उनमें से किसी की शुरुआत सामुदायिक रेडियो के रूप में नहीं हुई थी। वह आंशिक रूप से ही सामुदायिक रेडियो कहे जा सकते हैं। अत: कहा जा सकता है कि भारत में सामुदायिक रेडियो की शुरुआत अभी होनी बाकी है। ऐसे सामुदायिक रेडियो जो स्थानीय जनता की सूचना आवश्यकताएं पूरी करें। उम्मीद की जाती है कि निकट भविष्य में जैसे ही भारत सरकार सिविल सोसाइटी को आसानी से लाइसेंस देना शुरू करेगी, देश में सामुदायिक रेडियो की लोकप्रियता बढ़ेगी। ऊपर जिन पांच रेडियो संगठनों का जिक्र किया गया है। उन्हें सिर्फ़ बाहर से निरंतरता का आश्वासन था। इसीलिए यह ज़रूरी हो गया है कि सामुदायिक रेडियो को निरंतरता प्रदान की जाए। सामुदायिक रेडियो शहरी और ग्रामीण दोनों प्रकार के श्रोताओं को खासतौर से महिलाओं को विकास लक्ष्यों की जानकारी देते रहे हैं।

सामुदायिक रेडियो एक प्रक्रिया है और यह सामाजिक, राजनीतिक रूप से अलग-थलग रहकर नहीं बढ़ सकती। सामुदायिक रेडियो सिर्फ़ कार्यक्रम बनाकर उन्हें प्रसारित करना ही नहीं है, इसके लिए किसी सामुदायिक रेडियो को सूचनाएं तैयार करने और उन्हें ग्रहण करने के लिए लोगों को तैयार करना पड़ता है। सामुदायिक रेडियो किसी कॉलेज कैंपस में अड़ोस-पड़ोस के गांवों का समूह बनाकर उन्हें विकसित करने जैसा है। ज़मीनी स्तर की हक़ीक़त में बहुत बड़ी खाई के बावजूद सामुदायिक रेडियो भविष्य में और बढ़ेगा। यह सिर्फ़ समय की बात है। सामुदायिक रेडियो का विस्तार धीरे-धीरे लेकिन पक्के तौर पर हो रहा है। अनेक सामुदायिक रेडियो शुरू होंगे और ख़त्म हो जाएंगे। लेकिन उनसे ज़्यादा संख्या में दुबारा स्थापित किए जाएंगे। ज़रूरत इस बात की है कि हम सिविल सोसाइटी को इस मौके से फायदा उठाने के लिए तैयार होने का वक्त दें ताकि इस माध्यम का और सार्थक तरीक़े से और उसी तरह से इस्तेमाल हो सके, जैसा हम चाहते हैं। ❑

(लेखक अहमदाबाद के बोपाल स्थित तालीम रिसर्च फाउंडेशन के निदेशक हैं। यह लेखक दो अप्रकाशित शोधपत्रों पर आधारित है, जिन्हें जून 2010 में सिंगापुर में आयोजित 19वें एएमआईसी सम्मेलन में प्रस्तुत किया गया था। यह सम्मेलन सामुदायिक रेडियो विषय पर नयी दिल्ली के इग्नू में भी 29-30 सितंबर, 2008 को प्रस्तुत किया गया।

ई-मेल : cbinodeagrawal@gmail.com)

ग्रामीण विकास की धुरी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया

● कुलदीप शर्मा
डी.डी. बंसवाल

तीसरे विश्व के देशों की अग्रिम पंक्ति में पहले स्थान पर खड़े भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है- कृषि और कृषि से जुड़ी 70 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्र में बसी हुई है।

यह एक अकाट्य सत्य है कि भारत स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग पंद्रह वर्षों तक खाद्यान्न मोर्चे पर विफल होता रहा। बिगड़े मौसम, कृषि शोध के अल्प ज्ञान और सीमित प्राकृतिक बंधनों के कारण देश में भीषण अकाल की स्थिति तक पैदा हुई। मगर छठे दशक में भारतीय कृषि का कायाकल्प हुआ और हमने हरित क्रांति कर अन्न आत्मनिर्भरता के युग में कदम रखा। इसके पीछे यों तो कई कारण गिनाए जा सकते हैं। मसलन बेहतर बीज, सिंचाई सुविधाएं, नयी कृषि प्रौद्योगिकियां आदि। मगर बात जहां आकर टिकती है, वह यह है कि आखिर यह कृषि ज्ञान प्रयोगशाला की चारदीवारी से निकल सही समय पर, सही भाषा लिए इसके उपयोगकर्ता किसानों तक पहुंचा कैसे? प्रकाशित सामग्री की बात की जाए तो वह एक शिक्षित किसान को याद करती थी। मगर जिस देश में लंबे समय तक किसान अशिक्षित हों वहां उन तक इस विधा का पहुंचना तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता। तब एक सशक्त माध्यम सामने आया और वह था इलेक्ट्रॉनिक मीडिया।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में अब तक के अंगों में सबसे सशक्त अंग रेडियो है। इसमें दो राय नहीं कि इसकी पहुंच तीव्र और प्रभावी रही है। घर-घर तक ही नहीं खेत, चौपाल, खलिहानों तक पहुंच रखने वाले इस माध्यम द्वारा ध्वनि के सहारे कृषि पत्रकारिता को नया बल मिला है।

देश में रेडियो का इतिहास स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व वर्ष 1927 में पहली बार नियमित प्रसारण प्रारंभ हुआ। चूंकि इसकी शुरुआत मुंबई और कोलकाता में हुई थी अतः इस पर शहरी प्रभाव काफी पड़ा, कालांतर में यह ग्रामीणों की पसंद बना और ग्रामीण कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी जाने लगी। इसी के साथ रेडियो प्रसारण में कृषि पत्रकारिता की शुरुआत हुई। रोचक बात यह भी थी कि प्रसारण का कार्यभार एक निजी संस्था को सौंपा गया। कंपनी ने शीघ्र ही देशभर में न केवल अपना प्रसारण पहुंचाया, अपितु 1719 रेडियो सेट्स भी पहुंचाए। बाद में इसका कार्यभार स्वयं सरकार ने ले लिया और प्रसारण कार्य 'इंडियन स्टेट ब्रॉडकास्टिंग सर्विस' के नाम से प्रारंभ हुआ। आम जनता के बीच रेडियो की ललक और उपयोगिता को देखते हुए देश में प्रसारण केंद्रों की संख्या बढ़ाने की योजना बनाई गई। इस शृंखला में वर्ष 1934 में नयी दिल्ली में रेडियो स्टेशन की स्थापना हुई और विधिवत् प्रसारण प्रारंभ हुआ। भारत में रेडियो प्रसारणों की समीक्षा करने और उन्हें और अधिक प्रभावी बनाने हेतु तत्कालीन सरकार द्वारा ब्रिटेन की प्रसारण संस्था ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन से विचार-विमर्श किया गया। वस्तु स्थिति जानने और विचार को मूर्तरूप देने के लिए इस संस्था के एक अनुभवी अधिकारी नियोनेल फील्डेन को वर्ष 1935 के दौरान बुलाया गया। फील्डेन ने स्थिति और मांग को देखते हुए न केवल विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की, अपितु प्रसारण सेवा का नाम भी बदलने की अनुशंसा की। इस तरह से भारतीय प्रसारण सेवा का नाम पहली बार वर्ष 1961 में 'ऑल इंडिया रेडियो' रखा गया। इस तरह से पुनर्गठित भारतीय प्रसारण सेवा की लोकप्रियता और बढ़ने लगी। इसे विशेषकर समाचार सेवा के लिए जाना जाने लगा। प्रारंभ में इस संस्था को स्वायत्ता नहीं मिली थी। इसके अलावा यह उद्योग और श्रम विभाग के अंतर्गत कार्य करता था, जिसे बाद में संचार विभाग को सौंप दिया गया। 'ऑल इंडिया रेडियो' की लोकप्रियता में वर्ष 1939 के दौरान द्रुतगति से वृद्धि हुई चूंकि इस वर्ष द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ हो गया था, अतः आम जनता युद्ध समाचार जानने के लिए आतुर रहती थी। 'ऑल इंडिया रेडियो' इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था। तत्काल युद्ध समाचार प्रसारित करने के कारण लोगों में रेडियो के प्रति जिज्ञासा बढ़ी। यही कारण था कि मात्र दो वर्ष में भारत में रेडियो सेट्स की संख्या एक लाख के लगभग जा पहुंची। इसके अलावा भारत के स्वतंत्रता आंदोलन की तीव्रता ने भी रेडियो की मांग बढ़ाई जहां एक ओर ब्रिटिश सरकार जनता से अपील का माध्यम रेडियो बनाए हुए थी, वहीं कहीं-न-कहीं छुटपुट ख़बरें भारत के स्वतंत्रता आंदोलन, अंग्रेजी सरकार के साथ भारतीय नेताओं की वार्ता आदि के समाचार भी प्रसारित होते रहते थे।

भारत को जब पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हुई उस समय तक यहां नौ प्रसारण केंद्र स्थापित हो चुके थे। परंतु जब देश का विभाजन हुआ तो इनमें से तीन पाकिस्तान के हिस्से में आए और छह भारत में रह गए। शीघ्र ही स्वतंत्र भारत में इसके महत्व को समझा गया और उपयोगिता और मांग को देखते हुए इसके केंद्रों की संख्या और प्रसारण अवधि को बढ़ा दिया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में ही केंद्रों की वृद्धि का प्रावधान रखा गया। इसके बाद प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में केंद्रों की संख्या बढ़ाने का प्रावधान रखा गया और लक्ष्य को कमोवेश पूर्ण भी किया गया।

रेडियो और कृषि पत्रकारिता

स्वतंत्रता के लगभग डेढ़ दशक बाद तक भारतीय किसान मौसम की तुनकमिज़ाजी सहता रहा। उस पर खेती के अधक़चरे ज्ञान

के कारण खाद्यान्न मोर्चे पर पिटता रहा। इसलिए यह आवश्यक था कि खेती-बाड़ी के वैज्ञानिक ज्ञान को किसानों तक पहुंचाया जाए। हालांकि कृषि वैज्ञानिक किसानों के खेतों तक सीधे भी पहुंचे, कृषि मेले, किसान गोष्ठी, किसान वैज्ञानिक कार्यशाला आदि के आयोजन भी हुए, परंतु रेडियो को माध्यम बना कृषि की बात पहुंचाने को बल मिला। इसी दिशा में रेडियो पर नियमित कृषि कार्यक्रम प्रसारित करने की योजना बनाई गई। इसी दौरान ऑल इंडिया रेडियो को 'आकाशवाणी' नाम भी दिया गया जो कृषि कार्यक्रमों के विस्तार के लिए सार्थक शब्द बनकर आया।

कृषि प्रधान देश कहे जाने वाले भारत देश में अन्न की कमी और सूखे, बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं के प्रभाव को देखते हुए देशभर में केंद्र सरकार द्वारा अधिक अन्न उपजाओं कार्यक्रम की शुरुआत की गई एक तरह से यह जन आंदोलन था जो जन-जन तक भोजन पहुंचाने की बात करता था। चूंकि आंदोलन राष्ट्रीय स्तर पर चलाया जा रहा था, अतः इसके लिए रेडियो एक महत्वपूर्ण सूचना माध्यम के रूप में सामने आया। वर्ष 1940 के अंत तक आकाशवाणी के सात केंद्रों पर 'रेडियो फार्म फोरम' की स्थापना हुई महत्वपूर्ण बात यह थी कि प्रारंभ में ही कृषि के इस मंच की लोकप्रियता बढ़ी। किसानों ने कृषि की नयी जानकारी पाकर खेती के तौर-तरीक़ों में सुधार की सोची और कृषि वैज्ञानिकों की सलाह पर अमल भी किया। इधर प्रसारण से जुड़े अधिकारियों ने कृषि प्रसारण की आवश्यकता और उपयोगिता को पहचाना। परिणामस्वरूप कृषि कार्यक्रमों को विस्तार दिया गया। वर्ष 1952 में देश में ग्राम विकास की सामुदायिक विकास योजना आई तब यह सोचा गया कि रेडियो के कृषि कार्यक्रमों को विस्तार दिया गया। वर्ष 1952 में देश में ग्राम विकास की सामुदायिक विकास योजना आई तब यह सोचा गया कि रेडियो के कृषि कार्यक्रमों को केवल जानकारी तक ही सीमित न रखा जाए वरना यह बोझिल हो जाएंगे। अतः पहली बार इस बात की आवश्यकता महसूस हुई कि कृषि कार्यक्रम को संपूर्ण ग्रामीण विकास कार्यक्रम का रूप दिया जाए, साथ ही आकाशवाणी के इस कृषि कार्यक्रमों को रोचक बनाने के लिए लोकगीतों का सहारा लिया जाए। इसी सोच को मूर्तरूप देते हुए वर्ष 1952 के अंत तक कृषि कार्यक्रमों का रूप बदलकर ग्रामीण विकास कार्यक्रम हो गया। इसके अंतर्गत कृषि के नियमित कार्यक्रम तो रहे ही इसके अलावा ग्राम स्वास्थ्य, मनोरंजन, कृषकों के पत्रों के उत्तर, कृषि वार्ताओं आदि की भी शुरुआत की गई। कृषि कार्यक्रमों के इस नये स्वरूप को ग्रामीण जनता ने तो सराहा ही, शहरों में बसी गांव की माटी से जुड़ी जनता भी कृषि कार्यक्रमों को सुनने लगी। इसके पीछे लोकगीतों की विशेष भूमिका रही। इस बात को कार्यक्रम निष्पादकों ने पहचाना और इसे एक माध्यम बना ग्रामीण कार्यक्रमों की लोकप्रियता बढ़ाई इससे देश में विशेषकर उत्तर भारत के रेडियो श्रोताओं की संख्या बढ़ी। कृषि संबंधी सूचनाओं के बीच-बीच में लोकगीतों का समावेश जहां रोचकता बनाए रहता था, वहीं सूचना भी सहज पहुंच जाती थी। इस विधा को और विस्तार देने के लिए लोककथाओं, लोक-संगीत, लोक विधा आदि का समावेश भी किया गया। उदाहरणतः हिमाचल प्रदेश की नाटी, किरियाला, उत्तर प्रदेश की नौटंकी, आल्हा, राजस्थान का कालबेलिया आदि ने रेडियो के कृषि कार्यक्रमों में जान फूंक दी। लोग चाव से इन कार्यक्रमों को सुनते, उन्हें फिर से अपनी सोंधी माटी की महक मोहने लगी। इसका रोचक पहलू यह रहा कि कृषि वैज्ञानिकों की बात किसानों तक पहुंचने लगी। कृषि वार्ताओं का आयोजन नये रूप में आया। किसानों को नयी कृषि जानकारियां विस्तृत रूप में दी जाने लगीं। इसके लिए किसानों के पत्र भी आमंत्रित किए जाने लगे ताकि वह कृषि से जुड़ी अपनी समस्याएं, आशाएं, इच्छाएं मात्र पोस्टकार्ड पर लिख भेजें और रेडियो के माध्यम से कृषि वैज्ञानिकों से अपने समाधान प्राप्त करें। 'पूछताछ' शीर्षक से कृषि प्रसारण इतना लोकप्रिय हुआ कि ग्रामीण श्रोता रेडियो को अपना बड़ा हितैषी मानने लगे। उन्हें कृषि वैज्ञानिक अपने साथी लगने लगे। इसका रोचक उदाहरण यह है कि श्रोता अपनी निजी समस्याएं, शादी-ब्याह के निमंत्रण-पत्र भी कृषि कार्यक्रमों के निष्पादकों तक भेजने लगे।

भारतीय कृषि प्रसारणों की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए और विकास से जुड़ी हुई सहयोगी विदेशी संस्थाओं में भी सहयोग देना प्रारंभ किया। इनमें खाद्य एवं कृषि संगठन, यूनेस्को जैसी संस्थाएं उल्लेखनीय हैं। वर्ष 1956 में कनाडा के 'रेडियो लिसनर्स ग्रुप' को आधार बनाते हुए सहयोगी संस्था यूनेस्को द्वारा 'रेडियो रूरल फोरम' की रूपरेखा तैयार की गई। प्रारंभ में इसका आयोजन महाराष्ट्र के पुणे जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में किया गया। इसके अंतर्गत 144 गांवों को चिह्नित किया गया। गांव प्रधान की मदद से 'ग्रामीण चर्चा मंडल' की स्थापना हुई इसकी प्रत्येक इकाई के संचालन के लिए एक संयोजक होता था इसके अलावा एक सचिव तथा विषय का विशेषज्ञ होता था। इस परियोजना को कार्यरूप देने हेतु गांवों में संस्था के प्रतिनिधि रेडियो अधिकारियों के साथ जाकर पहले प्रधान से संपर्क करते और पंद्रह-बीस ऐसे किसानों को चुनते जो जागरूक होते तथा चर्चा करते एवं प्रतिक्रिया देने की सामर्थ्य रखते। चौपाल में खेती कर ऐसे किसानों को सप्ताह में दो बार ग्रामीण कार्यक्रमों को सुनाया जाता, इसके बाद बैठक प्रारंभ होती जिसमें विकास योजना के जिला स्तर का एक अधिकारी, विषय विशेषज्ञ, गांव का प्रधान और रेडियो से जुड़े कर्मचारी होते थे। रेडियो ग्रामीण मंच के श्रोता कार्यक्रम सुनने के बाद उसके स्वरूप पर चर्चा करते थे। इसके अलावा वह अपनी प्रतिक्रिया भी देते थे कि वह इसमें और क्या चाहते हैं, तथा क्या स्पष्ट नहीं हुआ। इस परिचर्चा में सब बड़े उत्साह से भाग लेते थे और आपसी विचार-विमर्श करते। इसे और भी आकर्षक बनाने के लिए विषय विशेषज्ञ को बुलाया जाता। किसान भाई सीधे कृषि वैज्ञानिकों से बात करते, उनसे जवाब-सवाल करते, तत्काल अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त करते। ग्रामीण चर्चा मंच की रिकॉर्डिंग कर उसे रेडियो से प्रसारित भी किया जाता था। इससे एक तो श्रोताओं को पूरे वार्तालाप की जानकारी मिलती थी, दूसरे वह भी इस बात के लिए प्रोत्साहित होते कि उनके यहां भी इस प्रकार का ग्रामीण चर्चा मंच स्थापित हो। इस तरह से यूनेस्को की इस परियोजना को भारी सफलता मिली, वहीं आकाशवाणी के कृषि कार्यक्रमों की लोकप्रियता बढ़ी। देखा जाए तो इस तरह से ग्रामीण चर्चा मंच को माध्यम बनाते हुए रेडियो ने श्रोताओं और विशेषज्ञों को आमने-सामने ला दिया। कृषि प्रसार की यह

सबसे प्रभावी और सटीक पद्धति है। इतना ही नहीं यह परियोजना अन्य देशों के लिए एक आदर्श बनी। बाद में पाकिस्तान में भी इसी आधार पर परियोजना चलाई गई।

भारत में रेडियो के ग्रामीण चर्चा मंच ने निरक्षर और अर्द्धसाक्षर ग्रामीणों में भी कृषि ज्ञान की ज्योति प्रज्ज्वलित की। रोचक बात यह भी थी कि कृषकों के अलावा मजदूरों ने भी इसमें बढ़-चढ़कर भाग लिया। परियोजना के अंतर्गत विभिन्न टोलियों को आपस में भी मिलवाया गया। उनके ज्ञान को एक-दूसरे में बांटने के लिए प्रोत्साहित भी किया गया। इस तरह से संपूर्ण समूह ने कृषि का जो ज्ञान अर्जित किया था, वह आपस में हस्तांतरित हुआ। कुछ मंचों ने एक-दूसरे से नया ज्ञान भी प्राप्त किया। परियोजना की सफलता का आकलन टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज द्वारा किया गया और इसे ग्रामीणों में अत्यंत उपयोगी पाया गया। इस तरह से रेडियो ने कृषि पत्रकारिता को नया रूप दिया। किसान, कृषि वैज्ञानिक और कृषि पत्रकार के बीच एक अद्भुत सामंजस्य स्थापित हो गया। इससे मौलिक कृषि पत्रकारिता सामने आई कृषि अनुसंधान के जनक कृषि वैज्ञानिकों से कृषि पत्रकार सीधी बात कर उनके शोध किसानों तक पहुंचाने लगे जो अंततः उपयोगकर्ता थे। इस तरह से रेडियो के कृषि कार्यक्रमों ने भारत में कृषि पत्रकारिता को बहुत कम समय में पुष्ट किया और उसके स्पष्ट परिणाम सामने आए।

टेलीविजन

कृषि वैज्ञानिकों द्वारा किए गए शोध कृषक या कृषि से जुड़ी संस्था द्वारा अनुकरणीय सफलता की गाथा अथवा कृषि से जुड़ी किसी भी जानकारी को कृषक समुदाय तक पहुंचाने के लिए दूरदर्शन आज एक सशक्त साधन है। देश में अपनी स्थापना के साथ ही दूरदर्शन ने विज्ञान और उसकी विविध शाखाओं से संबंधित विषयों पर प्रभावी कार्यक्रम प्रस्तुत किए।

भारत में दूरदर्शन की स्थापना वर्ष 1959 को देश की राजधानी दिल्ली में हुई। वर्षों कार्यक्रम नियमित तक नहीं थे और न ही प्रसारण अवधि पर्याप्त थी। यह स्थिति पांच वर्ष तक बनी रही। प्रारंभ में विज्ञान, कृषि, पर्यावरण जैसे विषयों को स्थान तो दिया गया मगर इसके लिए कोई नियमित निर्धारित कार्यक्रम नहीं थे। राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर के समाचारों में कृषि को उजागर किया गया। कार्यक्रमों की बढ़ती लोकप्रियता और आवश्यकता को देखते हुए वर्ष 1965 से दूरदर्शन का नियमित प्रसारण प्रारंभ हुआ। इसी शृंखला में 1972 में मुंबई में, 1973 में श्रीनगर, अमृतसर और कोलकाता में दूरदर्शन केंद्रों की स्थापना हुई और प्रसारण कार्य प्रारंभ हुआ। इन केंद्रों की क्षेत्रीय स्तर पर बढ़ती मांग को देखते हुए वर्ष 1975 में दक्षिण भारत में मद्रास और उत्तर भारत में लखनऊ केंद्र की स्थापना हुई।

वर्ष 1975 के मध्य में कृत्रिम उपग्रह की स्थापना के साथ ही भारत में दूरदर्शन विस्तार में नया अध्याय जुड़ा। इस वर्ष दिल्ली केंद्र की देखरेख में 'उपग्रह प्रसारण एकक' की स्थापना हुई जिसकी सहायता से एक बड़े क्षेत्र में न केवल सामान्य कार्यक्रम बल्कि कृषि आधारित कार्यक्रमों को भी प्रसारित किया गया। इसके बाद वर्ष 1982 में जब एशियाई खेलों की शुरुआत भारत में हुई तो दूरदर्शन प्रसारण को फिर विस्तार मिला। इस दौरान देश के विभिन्न भागों में बीस कम शक्ति के ट्रांसमीटर स्थापित किए गए जिनको अंतरिक्ष में स्थापित कृत्रिम उपग्रह से जोड़ा गया। इस नयी और प्रभावी तक़नीक की मदद से देश के बड़े क्षेत्र में दूरदर्शन के कार्यक्रम प्रसारित किए गए।

भारत में दूरदर्शन की लोकप्रियता विश्व के किसी भी देश की तुलना में तीव्रता से बढ़ी। देश में दूरदर्शन को प्रसार का एक सशक्त और प्रभावी माध्यम बनाते हुए तत्कालीन सरकारों द्वारा ठोस क़दम उठाए गए। इस दिशा में वर्ष 1983 में इन्सेट-1 बी नामक भारतीय उपग्रह का अंतरिक्ष में स्थापित किया जाना एक उल्लेखनीय क़दम था। दूरदर्शन विस्तार के लिए इस दौरान एक विशिष्ट योजना बनाई गई जिसके अंतर्गत 45 ट्रांसमिशन केंद्र संचालित किए गए। इसका प्रभाव यह हुआ कि मात्र डेढ़ वर्ष में ट्रांसमीटर्स की संख्या दो सौ जा पहुंची। इस तरह से देश की 70 प्रतिशत जनता दूरदर्शन के कार्यक्रम देखने लगी। इस सफलता से ही प्रभावित होकर प्रतिदिन एक ट्रांसमीटर लगाने की योजना बनी। परिणामस्वरूप देशभर में दूरदर्शन कार्यक्रमों का विस्तार हुआ।

कृषि प्रधान देश भारत की आवश्यकताएं घरेलू उत्पाद तथा आर्थिक विकास कृषि पर ही आधारित है। स्वतंत्रता के तत्काल बाद इस बात को समझा गया और इसके विकास की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किए गए। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने दूरदर्शिता दिखाते हुए इस बात को समझा था और स्पष्ट तौर पर कहा था कि 'सब कुछ इंतजार कर सकता है मगर कृषि नहीं।' इस बात को ही ध्यान में रखते हुए दूरदर्शन में कृषि कार्यक्रमों को विशिष्ट स्थान देने की सोची गई। इसका कार्यान्वयन वर्ष 1966 में कृषि सेवा से प्रारंभ हुआ। इस सेवा के अंतर्गत 26 जनवरी, 1967 को 'कृषि दर्शन' नामक कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। विधिवत् कार्यक्रम 2 फरवरी से प्रसारित हुआ, जिसकी प्रसारण अवधि मात्र दस मिनट थी। सायं सात बजे से सात बजकर दस मिनट तक प्रसारित इस कार्यक्रम में विशुद्ध कृषि की बातें ही बताई जाती थीं। यह कार्यक्रम केवल स्टूडियो बेस यानी एक बंद कमरे में ही हुआ करते थे। यहीं दृश्य और श्रव्य आधारित कृषि कार्यक्रम तैयार किए जाते और उन्हें प्रसारित किया जाता। कार्यक्रम की बढ़ती लोकप्रियता और आवश्यकता को देखते हुए इसका प्रसारण बढ़ाकर सप्ताह में तीन दिन, फिर चार दिन और पांच दिन और छह दिन भी किया गया मगर बाद में पांच दिन कर दिया गया।

जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि वर्ष 1975 में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के सहयोग से 'सेटेलाइट इंस्ट्रकशनल टेक्नोलॉजी एक्सपेरीमेंट' यानी साईट कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। यह कार्यक्रम पहली अगस्त, 1975 को शुरू किया गया और छह राज्यों के 2,400 गांवों में उपग्रह की सहायता से कृषि के कार्यक्रम दिखाए गए। दिल्ली दूरदर्शन द्वारा 'उपग्रह दूरदर्शन समन्वय समिति' का गठन किया गया जिसने इसकी पहुंच और प्रभाव को जांचा और रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट के अनुसार 'एटीएस-6 उपग्रह द्वारा प्रसारित दूरदर्शन के कार्यक्रमों ने गांवों में ऐसी लोकप्रियता हासिल की कि लोग मीलों चलकर कृषि कार्यक्रम देखने आते थे। ❑

(लेखक कुलदीप शर्मा, कृषि ज्ञान प्रबंधन निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नयी दिल्ली में पूर्व निदेशक के पद पर रह चुके हैं एवं लेखक डी.डी. बंसवाल प्रसारण भवन आकाशवाणी, दिल्ली में कार्यक्रम अधिशाषी हैं।)

भारत में लोक सेवा प्रसारण और विज्ञापन

● विकास चंद्र

हर लोकतंत्र में एक सार्वजनिक प्रसारण सेवा होती है। दर्शकों और श्रोताओं का मनोरंजन या अन्य कार्य तो निजी चैनलों के माध्यम से भी हो सकता है, मगर सूचना प्रदान करना, लोगों को शिक्षित करना और उनका स्वस्थ मनोरंजन करना ये तीनों ही काम एक सार्वजनिक सेवा प्रसारण के माध्यम से ही ठीक ढंग से हो सकता है। सार्वजनिक कोष से चलने वाली राष्ट्रीय प्रसारण सेवाएं विश्व के अधिकतर देशों में प्रसारण क्षेत्र का मुख्य हिस्सा हैं। कुछ देशों में सार्वजनिक प्रसारण सेवा को सूचना का अनौपचारिक, आधुनिक और विश्वसनीय माध्यम मानकर पुरजोर मदद की जाती है। इसे ऐसे माध्यम के रूप में देखा जाता है, जो गुणवत्ता के बल पर प्रतिष्ठा बनाए हुए हैं।

एक सशक्त वैकल्पिक माध्यम के रूप में इन राष्ट्रीय प्रसारण सेवाओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। मुनाफ़े पर आधारित प्रसारण के क्षेत्र में आज राष्ट्रीय प्रसारकों की उपस्थिति ज़्यादा ज़रूरी प्रतीत हो रही है। भारत में यह कार्य प्रसार भारती के माध्यम से होता है। प्रसार भारती भारत की लोक प्रसारण सेवा है। रेडियो प्रसारण के लिए आकाशवाणी तथा टेलीविजन प्रसारण के लिए दूरदर्शन, इसके दो प्रमुख घटक हैं। विज्ञापन प्रसारण के लिए एक राष्ट्रीय नेटवर्क के रूप में आज भी दूरदर्शन और आकाशवाणी देश के लगभग क्षेत्रफल तक पहुंचने वाला सबसे बड़ा नेटवर्क है। यही वज़ह है कि राष्ट्रीय स्तर एवं महत्व की सूचनाओं एवं विज्ञापनों के लिए सार्वजनिक सेवा प्रसारण का अलग महत्व है।

विज्ञापन : ऐतिहासिक परिदृश्य

भारत में विज्ञापन कार्य को व्यावसायिक दिशा देने के लिए सन् 1922 में मुंबई में पहली विज्ञापन एजेंसी खोली गई और बाद में जाकर और भी कई छोटी-छोटी विज्ञापन एजेंसियां खुलीं, लेकिन बड़े पैमाने पर पहली भारतीय एजेंसी सन् 1930 में नेशनल एडवर्टाइजिंग एजेंसी के नाम से स्थापित हुई। इसके बाद मद्रास (अब चेन्नई), कलकत्ता (अब कोलकाता), आदि जैसे अनेक नगरों में विज्ञापन का जाल फैलने लगा। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान सरकार ने क्रिएटिव पब्लिक यूनिट नामक अपनी एक इकाई को विज्ञापन का काम सौंप दिया। बाद में जाकर इसका नाम बदलकर एसोसिएटेड एडवर्टाइजिंग एजेंसी रख दिया गया। देश की आजादी के बाद इसी विभाग का नाम विज्ञापन एवं दृश्य प्रचार निदेशालय (डीएवीपी) हो गया। डीएवीपी का मुख्य कार्य सरकारी कार्यक्रमों, योजनाओं एवं उपलब्धियों का विज्ञापन करना है।

विज्ञापन प्रसारण और उपभोक्ता

विज्ञापन शब्द के उच्चारण करते ही हमारे मन में रोज सुबह से शाम तक दिखाई देने वाले विज्ञापनों की छवि बन जाती है। आज विज्ञापन हर तरफ छाया हुआ है। यही वज़ह है कि इसे चाह कर भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है। विज्ञापन उपभोक्ता और उत्पादक के बीच एक पुल का काम करता है। किसी उत्पाद या सेवा के बारे में जानकारी देकर विज्ञापन हमें उसे ख़रीदने की दिशा में प्रेरित करता है। विज्ञापन में कई प्रकार के अर्थ छिपे होते हैं। विज्ञापनों में यह जानना आवश्यक होता है कि वह किस वर्ग को संबोधित है। उसी अनुरूप विज्ञापनों की भाषा, शैली भी होती है। विज्ञापनों में अक्सर सुझाव देने वाले शब्दों का अधिक इस्तेमाल किया जाता है।

विज्ञापन में प्रयुक्त होने वाले रंगों का भी अपना अलग महत्व होता है। हर रंग कुछ अलग अर्थ का संप्रेषण करता है। ध्वनि, लय और प्रकाश की कलात्मकता उसमें निहित अर्थों का बोध कराती है। जब हम टेलीविजन एवं रेडियो पर प्रसारित विज्ञापनों की बात करते हैं तो उसमें अन्य प्रमुख तत्वों अर्थात् संवाद एवं ध्वनि प्रभाव आदि की भी अपनी विशेषता होती है। इस प्रकार किसी विज्ञापन में मजा होता है, व्यंग्य होता है, आत्मविश्वास होता है, प्रकृति के साथ संबंध होता है, पारिवारिक प्रगाढ़ता होती है, कामुक आकर्षण होता है, रोमांच होता है और सबसे बड़ी बात कि उसकी अपनी एक सुंदरता होती है। यही वज़ह है कि हर कोई सहज ही विज्ञापनों के साथ संबंध बना लेता है।

विज्ञापन और टीआरपी का खेल

विज्ञापन एजेंसियां आज विज्ञापन के निर्धारण के लिए टैम (टेलीविजन ऑडियंस मीजरमेंट) रेटिंग का सहारा लेती हैं। टैम ने क़रीब आठ से नौ हज़ार सेटटॉप बॉक्स शहरी क्षेत्रों में लगाए हैं। हालांकि इसके पीपुल मीटरों की संख्या और भी बढ़ाई जा रही है। गांवों में सेटटॉप बॉक्स न के बराबर हैं। यही कारण है कि गांवों में सेटटॉप बॉक्स के ऑपरेटिंग की जितनी कास्ट आती है, टैम को मीडिया हाउस से उतनी कास्ट मिलती नहीं।

एक सेटटॉप बॉक्स की ऑपरेटिंग पर तक़रीबन तीस हज़ार रुपये का ख़र्च आता है। जिन कंपनियों को पीपुल मेजरमेंट डाटा लेना होता है, वे टैम को इसकी क़ीमत अदा करते हैं। इसी रेटिंग के आधार पर कार्यक्रमों की लोकप्रियता तय होती है और फिर इन कार्यक्रमों के लिए मीडिया प्लानर विज्ञापन को प्रमोट करते हैं। शहरी इलाक़ों के साथ-साथ दूरदर्शन की पहुंच गांवों में भी ज़्यादा है। मगर दिक्क़त यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी सेटटॉप बॉक्स जैसी व्यवस्था नहीं पहुंच पाई है। ऐसे में मीडिया विशेषज्ञों ने अपनी राय जताई है कि सरकार को दूरदर्शन के लिए अपने स्तर पर इस तरह की व्यवस्था करनी चाहिए ताकि अधिक मात्रा में विज्ञापनदाता दूरदर्शन की ओर भी रुख करते रहें।

विज्ञापन प्रसारण और युवा

विज्ञापन, हमारे अंदर मौजूद उत्तेजक तत्व को जगाता है। तभी जाकर हम किसी सेवा या उत्पाद को ख़रीदने की दिशा में अग्रसर होते हैं। विज्ञापन में सैद्धांतिक तौर पर किसी-न-किसी आदर्श को पेश किया जाता है, जिससे युवा वर्ग सबसे ज़्यादा प्रभावित होता दिखाई दे रहा है। युवा दर्शकों में प्रतिस्पर्धा की भावना जगाने का काम विज्ञापनों के ज़रिये किया जाता है। उनके अंदर इस भावना को भरने की कोशिश की जाती है कि यदि आपके पास अमुक वस्तु नहीं है तो आप कुछ मिस कर रहे हैं। यही वज़ह है कि विज्ञापन युवाओं को एक साधारण व्यक्ति की भूमिका से निकालकर पर्फेक्ट पर्सनैलिटी बनाने की दिशा में अग्रसर करता है।

लोक सेवा प्रसारण और विज्ञापन

सार्वजनिक सेवा प्रसारण के लिए भी विज्ञापन की आवश्यकता होती है। आज के इस भूमंडलीकरण और आर्थिक प्रतिस्पर्धा के युग में विज्ञापन, राजस्व कमाने का एक प्रमुख ज़रिया बन चुका है। ऐसे में सार्वजनिक सेवा प्रसारक भी पीछे नहीं रह सकते। यही कारण है कि इस ग्लोबल होती दुनिया में दूसरों के मुक़ाबले दमदारी के साथ और पूरी जिम्मेदारी निभाते हुए भारत जैसे एक बड़े देश के लोक प्रसारक को अपनी महत्ता बनाए रखने में विज्ञापन बहुत मददगार साबित हो रहा है।

रेडियो : भारत में विज्ञापन प्रसारण की शुरुआत रेडियो प्रसारण से होती है। भारत में रेडियो सेवा का प्रारंभ 1927 में हुआ। 1936 में इसका नाम ऑल इंडिया रेडियो कर दिया गया और आज़ादी के पश्चात् 1957 में हिंदी प्रसारण सेवा का नाम आकाशवाणी रखा गया। 3 अक्टूबर, 1957 को आकाशवाणी ने अपनी विविध भारती सेवा आरंभ की। चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) के दौरान 1967 में आकाशवाणी ने एक महत्वपूर्ण फ़ैसला लेते हुए अपनी व्यावसायिक सेवा आरंभ कर दी। सबसे पहले बंबई, पूना और नागपुर स्टेशनों पर विविध भारती सेवा में विज्ञापन प्रसारित किए गए।

सन् 1967 से विविध भारती पर विज्ञापन प्रसारण सेवा की शुरुआत हुई। इसके बाद से ही देश में विज्ञापनों के लिए सार्वजनिक सेवा प्रसारण के दरवाज़े खोल दिए गए। उस दौरान विज्ञापनदाताओं को विविध भारती एक मात्र ऐसा चैनल लगता था, जिसके ज़रिये वे देश के कोने-कोने तक पहुंच सकते थे। वास्तव में प्रायोजित कार्यक्रमों का इतिहास विज्ञापन प्रसारण सेवा के आने के बाद से ही शुरू हुआ। इसके अंतर्गत बिनाका गीतमाला, एस कुमार्स का फ़िल्मी मुक़दमा, मोदी के मतवाले राही, सेरेडॉन के साथी, इंस्पेक्टर ईगल, जैसे कई रेडियो कार्यक्रम उतने ही लोकप्रिय थे, जितने कि आज के टीवी धारावाहिक। आज भी विज्ञापनदाता अपनी वस्तुओं और सेवाओं के प्रचार के लिए विविध भारती का सहारा लेते हैं। साथ ही विज्ञापनदाता फिल्मों के प्रचार के लिए भी विविध भारती को एक बेहतर माध्यम मानते हैं।

दूरदर्शन : भारत में टेलीविजन प्रसारण की शुरुआत 15 सितंबर, 1959 को हुई। दूरदर्शन ने देश में सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन, राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने और वैज्ञानिक सोच को गति प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान किया है। सार्वजनिक सेवा प्रसारक होने के नाते इसका उद्देश्य अपने कार्यक्रमों के माध्यम से जनसंख्या नियंत्रण और परिवार कल्याण, पर्यावरण की सुरक्षा और पारिस्थितिकी संतुलन, महिलाओं, बच्चों और विशेषाधिकार रहित वर्ग के समाज कल्याण उपायों को रेखांकित करना है। साथ ही इसका उद्देश्य देश की सांस्कृतिक विरासत और खेलों को बढ़ावा देना भी है। दूरदर्शन पर पहला विज्ञापन 1 जनवरी, 1976 को किया गया। चंदा कमिटी की सिफ़ारिशों को लागू करते हुए 1 अप्रैल, 1976 को दूरदर्शन को आकाशवाणी से अलग कर दिया गया। आरंभ में दूरदर्शन पर स्थिर तस्वीरों की मदद से ही विज्ञापन बनाए जाते थे। बाद में जाकर विज्ञापन निर्माण के लिए वीडियो और फिल्म की मदद ली जाने लगी। इस प्रकार धीरे-धीरे दूरदर्शन पर विज्ञापनों की संख्या में दिनोंदिन वृद्धि होने लगी और एक समय ऐसा भी आया जब आकाशवाणी के एक कमरे से शुरू हुए दूरदर्शन को उससे भी ज़्यादा विज्ञापन मिलने लगे। भारतीय टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले पहले धारावाहिक हम लोग भी एक प्रयोजित कार्यक्रम था। इस धारावाहिक के प्रायोजक मैगी नूडल्स (नेस्ले) था। 'हमलोग' की सफलता से पहले विज्ञापनादाता भारतीय टेलीविजन को आशंका की दृष्टि से देखते थे लेकिन मैगी नूडल्स को 'हमलोग' का प्रयोजक बनने के बाद भारतीय बाज़ार में जो सफलता मिली उसने सब कुछ बदल कर रख दिया। इससे दूरदर्शन पर विज्ञापनों की आय बढ़ने लगी। विज्ञापनों की संख्या बढ़ने से टेलीविजन कार्यक्रम निर्माताओं को बड़ा संबल मिला। इस प्रकार माहौल में बदलाव आता गया और एक के बाद एक कर के नये धारावाहिक बनने लगे। टेलीविजन के आकर्षण का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि 'हमलोग' की सफलता के बाद अनेक नामी-गिरामी फ़िल्मकार टेलीविजन के लिए कार्यक्रम बनाने के लिए तैयार हो गए।

एक समय दूरदर्शन को विज्ञापन प्रसारण के लिए दर्शकों का कोपभाजन भी बनना पड़ता था। बात नब्बे के दशक की है। उस समय दूरदर्शन पर एक कार्यक्रम आता था- गुलदस्ता। दर्शकों की प्रतिक्रियाओं और उनके खतों के जवाब वाले इस कार्यक्रम में एक शिकायत आम होती थी कि चित्रहार, फिल्म और रंगोली के बीच दूरदर्शन इतना विज्ञापन दिखाता है कि दर्शकों को बोरियत होने लगती है। तब हर बार दूरदर्शन को एक सार्वजनिक सेवा प्रसारक होने के नाते सफाई देनी पड़ती थी कि आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विज्ञापनों की उतनी ही ज़रूरत होती है, जितनी कि दर्शकों के मनोरंजन के लिए कार्यक्रम दिखाने की।

प्रसार भारती और विज्ञापन संहिता

विज्ञापन सिर्फ़ शिक्षित ही नहीं करता, बल्कि लोगों का मनोरंजन भी करता है। लेकिन मूल रूप से देखा जाए तो शिक्षा या मनोरंजन विज्ञापन का गौण उद्देश्य है। उसका मूल उद्देश्य लोगों को किसी वस्तु या सेवा के क्रय के लिए राजी करना है। इसी क्रम में विज्ञापन कई प्रकार के हथकंडे अपनाता है। उसका अंतिम लक्ष्य दर्शकों को उपभोक्ता बनाना है। भारत में सार्वजनिक सेवा प्रसारण के तहत वस्तुओं और सेवाओं के लिए विज्ञापन प्रसारित किए जाते हैं, परंतु इन्हें एक विस्तृत विज्ञापन-संहिता के तहत स्वीकार किया जाता है। सिगरेट, तंबाकू उत्पादों, शराब व अन्य मादक पदार्थों के विज्ञापन सार्वजनिक सेवा प्रसारण के लिए स्वीकार नहीं किए जाते। ❑

(लेखक शोधार्थी हैं।

ई-मेल : chandravikash7@gmail.com)

आकाशवाणी के सामाजिक सरोकार

● करुणा शंकर दूबे

आजकल जब भारत में सार्वजनिक सेवा प्रसारण के विषय में कोई चर्चा हो तो बहस छिड़ जाती है कि यह सेवा निजी चैनलों की अपेक्षा पिछड़ी हुई है, अविकसित है। यह बात कुछ हद तक किसी रूप में सच हो सकती है, सभी के मूल्यांकन का आधार अलग-अलग होता है, चर्चा का क्षेत्र उद्देश्यपरक होना चाहिए इसके लिए हमें सोच बनानी चाहिए, काम करना चाहिए और मूल अवधारणा समाज के विकास का होना चाहिए, राष्ट्रीयता का होना चाहिए, राष्ट्रीयता की सोच में विषय के आकलन का होना चाहिए, प्रतिष्ठा या किसी के चरित्र हनन का नहीं होना चाहिए अन्यथा भविष्य में हमारे सामने मानक की कमी पड़ जाएगी। प्रसारण ऐसा सार्वजनिक हो कि समाज में कहीं भी कोई विषाद न हो, उत्तेजक, जोर-जोर से भड़काऊ शैली में किया गया प्रसारण विद्रोह करा सकता है। मर्यादित समाज की स्थापना के मानकों में उत्तेजक शब्द के स्थान पर विनम्रता, उपयुक्तता और काल, परिस्थिति के अनुरूप भाव की प्रधानता ही सार्वजनिक सेवा प्रसारण है।

इस प्रसारण की शुरुआत वर्ष 1920 से हुई किंतु वर्ष 1927 से भारतीय प्रसारण सेवा का अस्तित्व मान्य है। 8 जून, 1936 को आल इंडिया रेडियो (एआईआर) का नाम सार्वजनिक सेवा के रूप में प्रकाश में आया, जो विश्वसनीय है। वर्ष 1957 में आकाशवाणी हिंदी में नामांकित हुई विगत वर्षों में लोकतंत्र की कड़ी को मजबूत करने और जनमत को बढ़ाने का प्रयास रेडियो प्रसारण की सबसे बड़ी सफलता की कड़ी में से एक है इसकी खेल कमेंट्री ने वसुधैव कुटुंबकम् का जो प्रतिमान प्रस्तुत किया वह एक उत्कृष्ट कार्य रहा है। जिससे पूरा विश्व परस्पर एआईआर से सहज ही जुड़ गया, और इसका मूल उद्देश्य 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' सार्थक हुआ।

15 सितंबर, 1959 को दूरदर्शन के अस्तित्व में आने पर आकाशवाणी पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा किंतु वर्ष 1982 के एशियाई खेल भारत में होने और उसके अनुप्रसारण (रिले) के लिए देशभर में ट्रांसमीटर लगने के कारण श्रोता एवं दर्शक वर्ग बने, श्रोताओं को दर्शक भी बनना पड़ा। 18 मई, 1988 को नागपुर में एक हज़ार किलोवाट के एआईआर ट्रांसमीटर के बाद राष्ट्रीय चैनल की शुरुआत की गई।

परिवर्तन की अवधारणा समय की मांग होती है, आकाशवाणी ने समय की मांग को देखते हुए अपने में परिवर्तन किया और गुणवत्तापरक सेवा प्रसारण के साथ उपयोगी सेवा शुरू की। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय का यह विभाग सामाजिक सरोकारों और राष्ट्रीय कार्यों के साथ-साथ सरकार की नीतियों के साथ जनता के बीच सदैव सक्रिय रहा। जनमत की विचारधारा को जन-जन तक एआईआर पहुंचाती रही, आज भी भारत की 70 प्रतिशत से ज्यादा जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास कर रही है, जहां रेडियो प्रसारण सेवा है लोग इसी से प्रतिदिन सूचना, शिक्षा और मनोरंजन पाते हैं। उनके लिए इस प्रसारण सेवा से ध्वनि धुन बनकर पहुंचती है, स्वर-व्यंजन, गीत-संगीत, वार्ता, कविता, कहानी, नाटक बनकर अलग-अलग आयु वर्ग के बीच प्रातः से रात्रि तक सेवा देते रहते हैं।

अब तो इस सेवा प्रसारण के विविध चैनल आकर्षक विकल्प रूप में है जो समाज को जड़ता से मुक्त कर सक्रियता की ओर ले जा रहे हैं। रेडियो की कृषि क्रांति ने 'रेडियो राइस' के नाम से धान की प्रजाति ही बना दी।

जागरुकता राष्ट्र प्रगति के लिए आवश्यक है। रेडियो शासन-प्रशासन की प्रगति को प्रशस्त करने और जनाधार के लिए विस्तृत जानकारी देता है, क्योंकि यह उस आबादी के साथ होता है, जहां अशिक्षा और अंधविश्वास है, कृषि ही जीवन का आधार है। स्वास्थ्य, शिक्षा, संगीत के सहारे विकास का प्रसारण, सार्वजनिक सेवा की अनुपम भेंट है, जो रेडियो से हमेशा मिलती रही है। एआईआर के स्टॉक केरेक्टरों ने अपने रमई काका, बहरे बाबा, जुगानी भइया, अंबे भौजी, बतासा बुआ जैसे किरदारों से उन्हें समाज में अलग व्यक्तित्व का बना दिया जिन्होंने समाज में अस्पृश्यता निवारण, शिक्षा की अलख जगाने के लिए जैसे महत्वपूर्ण जनजागरण के सफल प्रयास किए।

वर्ष 1997 में प्रसार भारती बोर्ड के गठन के बाद सार्वजनिक सेवा प्रसारण ने अभिव्यक्ति का स्वरूप परिवर्तित किया और मुखरता के साथ जबाबदेहीपरक बातों पर कार्यक्रमों की शुरुआत की। फोन-इन-कार्यक्रम के माध्यम से श्रोता अपने विचार, भाव, समस्या-समाधान सब कुछ जानने और प्राप्त करने लगे। वर्ष 1982 की दूरदर्शन क्रांति से रेडियो सेवा ने सजीव प्रसारण में जन सहभागिता की अनूठी मिसाल प्रस्तुत की और मोबाइल फोन पर सीधा संवाद अतीत के रेडियो ब्रिज कार्यक्रम से भी ज्यादा प्रभावी बनाया, इससे पूर्व की परंपरा चिट्ठी-पत्री कार्यक्रम अब फोन-इन में तब्दील हो गये। यहां तक कि फोन घुमाइये गाना सुनते जाइये जैसे कार्यक्रम भी चलने लगे। समाज की समस्याओं को दूर करने के लिए बड़े-बड़े विशेषज्ञ स्टूडियों में खुद-ब-खुद आकर चाहे सूचना का अधिकार हो या मनरेगा में जॉब कार्ड की जानकारियां घर बैठे श्रोताओं को

देने लगे। यह सजीव सेवा प्रसारण समाज को जोड़ती हैं विश्वास की परंपरा की सुदृढ़ करती है। भारत निर्माण के जागरुकतापरक कार्यक्रमों से समाज की तरक्क़ी हुई और प्रसारण सेवा भी सुदृढ़ हुआ। जल-जमीन और आदमी की समस्या को लेकर 'किसानवाणी' के माध्यम से प्रतिदिन अनेक प्रारूप में कार्यक्रम प्रसारित हो रहे है यह दूसरी कृषि क्रांति की दस्तक है, जो इसी जागरुकता का परिणाम है कि सूखा-बाढ़ आदि के बाद भी देश में अन्न की कमी नहीं है।

देश से पोलियो की लगभग समाप्ति हो चुकी है, अन्य बीमारियों से निजात के लिए 'स्वस्थ भारत' कार्यक्रम द्वारा नित्य प्रति जानकारी दी जा रही है, क्योंकि जागरुकता ही समाधान है।

आज दुनिया में मीडिया का सबसे बड़ा उपयोग जन-धन को हानि से बचाना है, भोपाल त्रासदी के समय रेडियो ने सबसे पहले निरंतर सूचना द्वारा लाखों जीवन को सुरक्षित रखा। सुनामी त्रासदी में इसकी भूमिका सराही गई, चिकित्सक मरीजों के उपचार के लिए ब्लड ग्रुप की खोज के लिए सबसे पहले रेडियो का सहारा लेते हैं। खोये हुए व्यक्तियों को खोजने के लिए राज्यों के पुलिस विभाग द्वारा प्रत्येक एआईआर केंद्रों पर एसओएस द्वारा सूचनाएं प्रसारित करवाई जाती है। राज्य सरकार के अन्य विभाग भी एआईआर का सहयोग लेते हैं। बेरोज़गारों को रोज़गार की जानकारी दी जाती हैं। परीक्षा निरस्तीकरण अगली परीक्षा की जानकारी भी विश्वविद्यालय और संस्थान इसी सेवा से प्रसारित कराते हैं।

सर्वधर्म समभाव की अवधारणा से आराधना, राष्ट्रीय भाव से देशगान क्षण-प्रतिक्षण घटित घटनाओं की जानकारी के लिए समाचार इसी सेवा से सुलभ है। समाचार सेवा प्रभाग की देश में 45 क्षेत्रीय समाचार इकाइयां हैं, जो प्रादेशिक स्तर पर समाचार प्रसारित करती हैं, अब तो भाषा और बोली के समाचार होने लगे है, जो 24 घंटे समाचार प्रसारण में सन्नद्ध हैं।

आज भारतीय प्रसारण सेवा दुनिया का सबसे बड़ा नेटवर्क है, कंप्यूटरीकृत रिकार्डिंग प्रसारण के क्षेत्र में यह बहुत तेज़ी से आगे बढ़ रहा है, देश के 80 केंद्र डिजीटाइज्ड हैं, शेष केंद्रों पर कार्य प्रगति पर है।

एआईआर के प्राइमरी चैनल या मीडियम वेब पर फ़िल्म संगीत कम प्रसारित होते हैं, इस कारण गीत संगीत को बढ़ावा देने के लिए विविध भारती चैनल 3 अक्टूबर, 1957 को मुंबई से आरंभ किया गया, डायरेक्ट टू होम सर्विस हो जाने से डीटीएच युक्त टीवी सेट पर मीडियम वेव, शार्ट वेव, एफएम के साथ विविध भारती सुना जा सकता है।

समय की मांग को देखते हुए एआईआर, एफएम से रेडियो प्रसारण का व्यापक प्रभाव और महत्व है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता है। चलती हुई ट्रेन, ऑटो, बस या कुछ भी हो, एकाकी जीवन में भी मोबाइल फोन में रेडियो क्रांति ने तो बस लोगों के जीवन में अपना घर बसा लिया है। देश की 23 भाषाओं के साथ 146 बोलियों में प्रसारण देने का कार्य एआईआर ही कर रही है। अब एआईआर एफएम की निजी एफएम चैनलों के चटखारों के साथ कार्यक्रम प्रस्तुति ने श्रोताओं को अपनी ओर रिझाने के लिए एक प्रयास शहरी क्षेत्रों में अवश्य किया हैं किंतु आज उन चैनलों के पास न कोई स्थिर भाषा है न उसका व्याकरण है कार्यक्रम में बात कहां से शुरू होगी और कहां पर विराम लेगी, उसका पता प्रस्तोता को ही नहीं होता है।

अंकुशविहीन सवार की स्थिति में कार्यक्रम को चलाना कितना घातक होता है या समाज को यह प्रसारण किस दिशा में ले जाएगा यह तो आने वाले समय के चिंतक लोग ही जान सकेगें, परंतु समस्या निजी चैनलों पर लोक-लुभावने शब्दों में छिपे राजस्व अर्जन की तक़नीक होती है उनके द्वारा स्थानीय जन समाज के बोली से कोई सरोकार नहीं होता उनका तारतम्य शहर की बेलगाम भागती-दौड़ती जनता के बीच होता है उन्हें खेत के किसान की, कल-कारखानों के श्रमिक की, कामकाजी महिला, शहरी महिला, ग्रामीण महिला के कार्यक्रम की नहीं होती है जबकि सार्वजनिक सेवा प्रसारण नारी सम्मान, सशक्तीकरण के प्रति विश्वसनीय भाव से प्रसारक का कार्य करता है। बच्चों के लिए तो बाल सभा से लेकर बाल प्रसारण दिवस भी आयोजित करता है, विकलांग जनों के लिए विशेष श्रोता वर्ग कार्यक्रम का प्रसारण नियोजित करता है, बुजुर्गों की विधिवत् प्रसारण से सम्मान प्रतिष्ठा की सेवा जारी है युवाओं के लिए तो खास नियमित कार्यक्रम है। सभी वर्गों की विचारधारा का प्रसारण ही सार्वजनिक सेवा प्रसारण है यह रेडियो ही करता है जहां मैदानी क्षेत्रों में इसकी पहुंच है वहीं पर्वतीय और समुद्रपारीय क्षेत्रों में भी पहुंच के लिए शार्टवेव सेवा प्रसारण नेपाली, कुमांऊनी, गढ़वाली आदि भाषाओं से लोगों को जोड़ रही है। स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर राष्ट्रपति महोदय के संदेश सायं 7.00 बजे और 15 अगस्त को लाल किले के प्राचीर से प्रधानमंत्री महोदय का संबोधन देशवासी वर्षो से सुनते आये हैं। इस मर्यादा को बनाए रखने के लिए आकाशवाणी महानिदेशालय महानिदेशक के अधीन सभी केंद्र निर्देशानुसार कार्य करते हैं, विकास योजनाओं का प्रचार करना सफल उद्यमी से भेंट कर जनता के बीच उनका प्रसार-प्रचार कर अन्य को सफलता के सोपान तक पहुंचाना इसी माध्यम का कार्य है आपात काल के दौरान आपदा के दौरान, विशेष सूचनाएं, विशेष कार्यक्रम', स्थानीय कार्यक्रम की सूचना नियोजित किए जाते हैं। एफएम चैनल तो रेल आवगमन सूचना, शहर की यातायात सूचना भी देते हैं, जिससे समाज में जागरुकता आती है।

स्वायत्त होने के साथ-साथ अर्थोपार्जन भी आकाशवाणी का आवश्यक कार्य है। इसका उद्देश्य कार्यक्रम को प्रभावित करना नहीं है। प्रायोजित कार्यक्रमों के लिए केंद्रीय विक्रय एकांश मुंबई और विज्ञापन प्रसारण सेवा केंद्रों के माध्यम से कार्य किया जाता है, जो एक आचार-संहिता के अंतर्गत ही प्रसारित कार्यक्रमों को नियोजित करता है। सभी कार्यक्रमों के प्रसारण की विशेषता यह होती है कि समाज की प्रत्येक ईकाई इसके लिए महत्वपूर्ण है उसके महत्व को आंकते हुए उसके योग्य प्रसारण को संवारा जाता है। उसकी उद्देश्यपरक विशेषता, गीत, संगीत, भाषा, बोली को ध्वन्यांकित कर आम जनता को लाभान्वित कराने हेतु जीवन जीने की कला का प्रारूप उनके मन-मस्तिष्क में प्रवाहित किया जाता है। समाज की मुख्यधारा में बने रहने के लिए निरंतर जागृत किया जाता है साथ ही अनुबंधनात्मक आर्थिक लाभ से प्रतिभा को समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। जिसका प्रतिफल रेडियो क्लब तथा

(शेषांश पृष्ठ 60 पर)

किवदंती से करिश्मे तक आकाशवाणी

● रमेश चंद्र शुक्ल

विज्ञान की प्रगति के परिप्रेक्ष्य में बहुत कम ऐसे क्षेत्र हैं जहां इतनी उन्नति हुई हो, जितनी प्रसारण के क्षेत्र में। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ होते-होते जनसंचार ने जिस भवन की नींव रखी, आधी शताब्दी होते-होते वह भव्य प्रासाद में परिवर्तित हो गया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक इस बात को कोरी कल्पना ही माना जाता था कि कोई व्यक्ति दूर के एक स्थल पर बोले और उसकी वाणी को बिना तार या किसी सीधे संबंध के दूसरी जगह पर सुना जा सके। भारतीय धर्मशास्त्रों में ऐसी परिकल्पना के लिए 'आकाशवाणी' शब्द का प्रयोग होता था, जो मात्र ईश्वर या देवताओं द्वारा प्रेषित वाणी थी।

किंवदंती है कि द्वापर युग में मथुरा नगरी में यदुवंशी राजा शूरसेन राज्य करते थे। एक बार मथुरा में शूर के पुत्र वसुदेव जी विवाह करके अपनी नवविवाहिता पत्नी देवक की पुत्री देवकी के साथ घर जाने के लिए रथ पर सवार हुए। उग्रसेन का पुत्र कंस अपनी बहन का स्वयं रथ हांकने लगा। विदाई के समय वर-वधू के मंगल के लिए एक ही साथ शंख, तुरही, मृदंग और दुंदुभियां बजने लगीं। मार्ग में जिस समय घोड़ों की रास पकड़कर कंस रथ हांक रहा था, उसी समय आकाशवाणी हुई :

''पंथ प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीवाक्!
अस्यास्त्वामष्टमों गर्भो हन्ता यां वहसेखबुध''

(*श्रीमद्भागवत्पुराण* - 10/01/34)

(अर्थात अरे मूर्ख! जिसको तू रथ में बिठाकर लिए जा रहा है, उसकी आठवें गर्भ की संतान तुझे मार डालेगी)

कौन जानता था कि कलियुग में एक करिश्मे के रूप में आकाशवाणी अमीर-ग़रीब, पापी-पुण्यात्मा या आस्तिक-नास्तिक सबके लिए आम बात हो जाएगी। भारत सरकार ने रेडियो-प्रसारण को पारंपरिक कल्पना से जोड़कर 'आकाशवाणी' का महिमामय संबोधन दिया है।

विश्व पटल पर रेडियो की विकास यात्रा उन्नीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिकों द्वारा किए गए प्रयोगों से प्रारंभ होती है तथा यह पूरे विश्व में वैज्ञानिकों को चमत्कारिक प्रयोगों से जोड़ती हुई आज तक की यात्रा तय करती है। सन् 1892 में अमरीका के मर्रे शहर में बिना तारों के रेडियो के प्रसारण का प्रयोग किया गया था। जिसे अमरीका के वैज्ञानिक रेजीनाल्ड फैशनडेन ने किया था।

डॉ. डी. ली फास्ट ने सन् 1906 ई. में एक ऐसे वैक्यूम ट्यूब का अविष्कार किया जिससे ध्वनि का प्रसारण संभव हो सका। सर्वप्रथम अमरीका में ही सन् 1912 में वायरलेस को रेडियो की संज्ञा दी गई। अमरीका के पिट्सबर्ग में सन् 1920 में प्रसारण केंद्र स्थापित किया गया परंतु 23 जनवरी, 1920 को चेम्सफोर्ड से मारकोनी कंपनी ने सर्वप्रथम रेडियो प्रसारण किया। प्रसारण का नियमित स्वरूप बीबीसी द्वारा सन् 1920 में शुरू किया गया।

अन्य देशों की भांति भारत में भी कुछ निजी कंपनियों ने प्रसारण प्रारंभ किया था। 'बॉम्बे क्लब' ने अपना प्रथम प्रसारण जून 1923 में किया था। 'मद्रास रेडियो क्लब' ने 40 वॉट के ट्रांसमीटर द्वारा 31 जुलाई, 1924 से प्रसारण शुरू किया। बाद में 200 वॉट के ट्रांसमीटर से प्रतिदिन सांयकाल ढाई घंटे का प्रसारण किया जाने लगा, लेकिन कुछ दिन बाद आर्थिक तंगी के कारण 'मद्रास रेडियो क्लब' ने प्रसारण बंद कर दिया।

व्यवस्थित प्रसारण की शुरुआत 'इंडियन ब्रॉडकास्टिंग कंपनी' ने 1927 में की। 23 जुलाई, 1927 में बंबई (अब मुबंई) तथा अगस्त 1927 ई. में कलकत्ता (अब कोलकाता) से प्रसारणों की शुरुआत हुई। 'इण्डियन ब्रॉडकास्टिंग कंपनी' की आर्थिक तंगी के कारण मार्च 1930 ई. में बंद हो गई। जनता की मांग को देखते हुए सरकार ने अप्रैल 1930 में 'इंडियन स्टेट ब्रॉडकास्टिंग सर्विस' की स्थापना कर बंबई और कलकत्ता दोनों ही केंद्रों का अधिग्रहण कर लिया। आर्थिक कठिनाइयों के कारण सरकार भी इसे ज़्यादा दिनों तक नहीं चला सकी और 10 अक्तूबर, 1931 में 'इंडियन स्टेट ब्रॉडकास्टिंग सर्विस' को बंद करने का आदेश दे दिया गया, परंतु आंदोलन, प्रदर्शन व प्रतिवेदनों को देखते हुए सरकार ने 23 नवंबर 1931 ई. को अपना आदेश खुद करके पुनः इंडियन स्टेट ब्रॉडकास्टिंग सर्विस' शुरू कर दी।

सन् 1934 ई. के पश्चात् प्रसारण सुविधाओं में वृद्धि हुई। बीबीसी के इलेक्ट्रिकल इंजीनियर लियोन फील्डेन को प्रसारण का प्रथम नियंत्रक बनाया गया। 01 जनवरी, 1936 को दिल्ली रेडियो स्टेशन का उद्घाटन हुआ तथा 08 जून 1936 को रेडियो का नाम 'ऑल इंडिया रेडियो' तत्कालीन वायसराय लार्ड लिनलिथगो द्वारा दिया गया। तत्पश्चात् अनेक शहरों में रेडियो केंद्रों की स्थापना की गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय पूरे देश में नौ केंद्र थे। जिनमें छह भारत में रहे– दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, मद्रास, लखनऊ और तिरूचिरापल्ली तथा तीन पाकिस्तान में चले गए– लाहौर, पेशावर और ढाका। सरदार बल्लभभाई पटेल देश के प्रथम सूचना एवं प्रसारण मंत्री बने।

स्वतंत्रता के पश्चात् प्रसारण क्षेत्रों में विकास के लिए हर पंचवर्षीय योजना में योजनाबद्ध तरीक़े से क़दम उठाए गए जिससे पूरे देश में आकाशवाणी केंद्रों का जाल-सा फैल गया। सन् 1957 ई. में रेडियो सीलोन

की तरह श्रोताओं के मनोरंजन के लिए भारत में 'विविध भारती' सेवा प्रारंभ किया गया। इसी वर्ष 'ऑल इंडिया रेडियो' का नाम 'आकाशवाणी' कर दिया गया। सन् 1967 ई. में विज्ञापन प्रसारण सेवा की शुरुआत हुई। 30 अक्तूबर, 1984 ई. को प्रथम लोकल रेडियो स्टेशन (एलआरएस) की शुरुआत नागरकोइल (तमिलनाडु) में हुई। 18 मई, 1988 को 'नेशनल चैनल' का प्रारंभ हुआ। 23 नवंबर, 1997 से 'प्रसार भारती' ने काम करना शुरू कर दिया और आज आकाशवाणी 'प्रसार भारती' के अधीनस्थ कार्यरत एक संस्था है।

आकाशवाणी जनसंचार का एक सशक्त माध्यम है। बाज़ारवाद व उपभोक्ता संस्कृति के होते हुए भी आकाशवाणी ने अपने स्तर व गरिमा से समझौता नहीं किया है। आकाशवाणी को अपनी क्षमता व प्रसार शक्ति के महत्व को समझते हुए लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप निरंतर अपने आप को चलते रहने की प्रक्रिया से गुज़रना पड़ रहा है। यह निर्विवाद रूप से सभी मानते हैं कि सूचना व समाचार पहुंचाने के क्षेत्र में आकाशवाणी सबसे आगे है। कारगिल हो या भुज आकाशवाणी की प्रभावशाली भूमिका को सबने जाना व समझा है।

आकाशवाणी को अपने श्रोताओं से शुरू से ही एक आत्मीय संबंध रहा है। उसका श्रोता गांव में रहने वाला, खेत-खलिहान में काम करने वाला, सड़कों पर रिक्शा चलाने वाला, फैक्टिरियों व कारखानों में मज़दूरी करने वाला, बसों व ट्रकों को चलाने वाला, अस्पतालों में सेवा-सुश्रुषा करने वाली नर्सें, गांव-कस्बों में कार्यरत समाज सेविकाएं, स्कूल में पढ़ने वाले छात्र और पढ़ाने वाले अध्यापक हैं। यानी अपने खून-पसीने पर जिंदा रहने वाला कामकाजी वर्ग है। आकाशवाणी का श्रोता बंगलों-कोठियों में रहने वाला स्वकेंद्रित सुख-सुविधा सम्पन्न वर्ग भले ही न हो, पर आम आदमी उसका श्रोता है और वह ही उसकी शक्ति भी है। उसी को लक्षित करते हुए यदि आकाशवाणी उसकी अभिव्यक्ति बनेगी तो जन-जन से जुड़ने में उसे कोई नहीं रोक सकेगा। ❑

(लेखक आकाशवाणी से संबद्ध तथा मीडिया संबंधी पुस्तकों के लेखक हैं।
ई-मेल : ramesh Chandra shukla 1955@gmail.com)

(पृष्ठ 58 का शेषांश)

झुमरी तलैया और लहरपुर जैसे गांव लोगों की जुबान पर सहज ही याद हो आते हैं। यह सेवा प्रसारण की उपलब्धि ही है। समाज को एकाकार करने की अलख जागने का सत्प्रयास एआईआर की महती भूमिका रही है, उसने व्यष्टिवादी परंपरा को समष्टिवादी परंपरा में बदलने का सफल प्रयास किया और व्यवस्था अनुकूल रही, सार्वभौमिक आकाशवाणी ने नये प्रतिमान बनाये। अतीत को सहेजने का प्रयास कार्यक्रम प्रत्यंकन एवं विनिमय सेवा (आर्काइवल) के माध्यम से आरंभ कर दिया। सहजने को बहुत कुछ है। बहुत कुछ सहेजा जा चुका है। भविष्य को सहेजने का प्रयास नयी प्रतिभाओं के हाथ है, जिन्हें खोजना इस सेवा का लक्ष्य है, जिसमें एआईआर निरंतर प्रयत्नशील रहती है।

मर्यादित प्रसारण और राजस्व अर्जन परस्पर जनसहभागिता और जनहित के प्रसारण के लिए एक संतुलित प्रयास का महान लक्ष्य भारत सरकार की अनूठी संकल्पना रही है और उसे साकार रूप देने में प्रसार भारती बोर्ड कृत संकल्प है। सामाजिक और मानववादी वातावरण का सृजन ही सेवा प्रसारण का उद्देश्य है। वृक्ष लगाने से छाया मिलती है, फल मिलता है, वातावरण मधुर होता है, किंतु उसकी पुष्टि के लिए उसको भी कुछ चाहिए उसमें राजस्व अर्जन जोड़ना खाद पानी देना जैसा होता है यह वर्तमान में भी पारंपरिक रूप में जनता की सेवा के लिए सर्वत्र, सहज, सुलभ और बोधगम्य प्रसारण में सतत् प्रयत्नशील है। ❑

(लेखक रेडियो प्रसारण माध्यम के जानकार आकाशवाणी लखनऊ में कार्यरत उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखण्ड राज्य के कार्यक्रम समन्वयक हैं।
ई-मेल : kdubey306@gmail.com)

योजना

आगामी अंक

अगस्त 2013

योजना का अगस्त 2013 का अंक **समावेशी लोकतंत्र** पर **विशेषांक** होगा।
इस अंक का मूल्य होगा मात्र ₹ 20 ।

सितंबर 2013

योजना का सितंबर 2013 का अंक **सबके लिए शिक्षा** पर केंद्रित होगा।
इस अंक का मूल्य होगा मात्र ₹ 10 ।

दूरदर्शन–महत्वपूर्ण तथ्य

दूरदर्शन ने 15 सितंबर, 1959 को एक छोटे ट्रांसमीटर और अस्थायी स्टूडियो से दिल्ली में प्रयोग के तौर पर प्रसारण शुरू किया। नियमित और दैनिक आधार पर ट्रांसमिशन 1965 में ऑल इंडिया रेडियो के हिस्से के रूप में प्रारंभ हुआ। टेलीविजन सेवा का विस्तार 1972 में मुंबई और अमृतसर में किया गया। 1975 तक देश के केवल 7 शहरों में टेलीविजन सेवा उपलब्ध थी और दूरदर्शन देश में एकमात्र टेलीविजन सेवा प्रदाता था।

1 अप्रैल, 1976 को टेलीविजन सेवाएं रेडियो से अलग की गई। अंततः 1982 में एक राष्ट्रीय टेलीविजन प्रसारणकर्ता के रूप में दूरदर्शन की स्थापना हुई। दूरदर्शन पर सबसे पहले कृषि दर्शन कार्यक्रम दिखाया गया। इसकी शुरुआत 26 जनवरी, 1967 को हुई थी और यह भारतीय टेलीविजन पर दिखाया जाने वाला अब तक का सबसे लंबा कार्यक्रम है। 1982 में ही रंगीन टेलीविजन का भारतीय बाज़ार में पदार्पण हुआ। इसकी शुरुआत 15 अगस्त, 1982 को तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर राष्ट्र के नाम संदेश के प्रसारण के साथ हुई। इसके बाद 1982 में ही दिल्ली में हुए एशियाई खेलों को दूरदर्शन पर प्रसारित किया गया। आज भारत की 90 प्रतिशत से अधिक आबादी तक दूरदर्शन (डीडी नेशनल) के कार्यक्रम उपलब्ध हैं, जो करीब 1,400 टेरिस्ट्रियल ट्रांसमीटरों के नेटवर्क के जरिये प्रसारित किए जाते हैं। टीवी कार्यक्रमों के निर्माण के लिए देश में दूरदर्शन के करीब 46 स्टूडियो हैं।

वर्तमान में दूरदर्शन 21 चैनल संचालित कर रहा है। इनमें दो अखिल भारतीय चैनल- डीडी नेशनल और डीडी न्यूज, 11 क्षेत्रीय भाषा उपग्रह चैनल (आरएलएससी), 4 स्टेट नेटवर्क्स (एसएन), 1 अंतर्राष्ट्रीय चैनल, एक डीडी स्पोर्ट्स चैनल और दो चैनल राज्यसभा टीवी और लोकसभा टीवी है जो संसदीय कार्यवाहियों का सीधा प्रसारण करते हैं।

डीडी नेशनल

राष्ट्रीय अखंडता को बढ़ावा देने और एकता एवं भाईचारे की भावना पैदा करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय कार्यक्रम इस चैनल पर प्रसारित किए जाते हैं। दर्शकों की संख्या की दृष्टि से यह देश का नंबर एक चैनल है। डीडी नेशनल पर मनोरंजन, सूचना और शिक्षा के मिले-जुले स्वस्थ कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। इस सेवा के कार्यक्रम टेरिस्ट्रियल मोड में प्रातः साढ़े पांच बजे से देर रात तक उपलब्ध होते हैं। सेटेलाइट मोड में डीडी नेशनल के कार्यक्रम चौबीसों घंटे उपलब्ध रहते हैं। इस मिश्रित लोकसेवा चैनल का प्रसारण समय इतना विविध है कि यह अलग-अलग समय पर अलग-अलग दर्शकों की ज़रूरतें पूरी करता है।

सभी प्रमुख राष्ट्रीय कार्यक्रम इस चैनल पर प्रसारित किए जाते हैं, इनमें गणतंत्र दिवस परेड, स्वतंत्रता दिवस समारोह, राष्ट्रीय पुरस्कार वितरण समारोह, राष्ट्रपति और प्रधानमंत्रियों के राष्ट्र के नाम संबोधन, संसद के संयुक्त अधिवेशन में राष्ट्रपति का अभिभाषण, महत्वपूर्ण मुद्दों पर संसदीय बहस, रेलवे और आम बजट का सीधा प्रसारण शामिल है।

लोकसभा और राज्यसभा में प्रश्नकाल, चुनाव परिणाम और विश्लेषण, शपथ ग्रहण समारोह, राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री की विदेश यात्राओं और महत्वपूर्ण विदेशी अतिथियों की भारत यात्राओं को डीडी नेशनल पर कवर किया जाता है। ओलंपिक, एशियाई खेल, भारत की भागीदारी से संबंधित क्रिकेट टेस्ट और एक दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय मैच और अन्य महत्वपूर्ण खेल मुक़ाबले भी इस चैनल पर दिखाए जाते हैं।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू), विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) केंद्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान (सीआईईटी) और राज्य शिक्षा प्रौद्योगिकी संस्थान (एसआईईटी) जैसे विविध स्रोतों के योगदान से शैक्षिक कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। इसके अलावा बहुत से प्रायोजित कार्यक्रम भी प्रसारित होते हैं जैसे टर्निंग प्वाइंट, प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम, टेरा क्विज और भूमि (पर्यावरण कार्यक्रम), महिला, जनजातीय मामलों और अन्य लोक सेवा कार्यक्रमों का प्रसारण भी नियमित रूप से होता है।

डीडी न्यूज का शुभारंभ नवंबर 2003 में हुआ। यह देश में एक मात्र टेरिस्ट्रियल समाचार चैनल है जिसके कार्यक्रम देश की करीब आधी आबादी तक पहुंचते हैं।

डीडी न्यूज से आधा घंटे का एक द्विभाषी (अंग्रेजी और हिंदी) गतिशील कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। इसके अलावा दिन-रात समाचार बुलेटिन, व्यापार, खेल, स्वास्थ्य, कला और संस्कृति को कवर करते हुए अनेक कार्यक्रम नियमित रूप से दिखाए जाते हैं जो 23 क्षेत्रीय समाचार इकाइयों (आरएनयूज) के नेटवर्क के जरिये देशभर में प्रसारित होते हैं। सम-सामयिक विषयों पर परिचर्चाएं दिखाई जाती हैं। एक प्रतिबद्ध डिजिटल सेटेलाइट न्यूज गैदरिंग सिस्टम के अंतर्गत सेटेलाइट फोन और वीडियो फोन जैसे हाइटेक उपकरण डीडी न्यूज के लिए उपलब्ध हैं। डीडी न्यूज की अपनी एक वेबसाइट www.ddinews.gov.in है, जो हर रोज दो घंटे के लिए बुलेटिन प्रसारित करने के अलावा दिनभर की घटनाओं के आधार पर विभिन्न समाचार आइटमों का ब्यौरा प्रस्तुत करती है।

पूर्वोत्तर क्षेत्र के समाचारों की फीड देने के लिए प्रतिबद्ध एसएनजी केंद्रों में शिलांग, इंफाल, कोहिमा, ईटानगर, अगरतला और आइजोल शामिल हैं।

सौजन्य : प्रसार भारती

प्रकाशक व मुद्रक : ईरा जोशी, अपर महानिदेशक (प्रमुख) द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए ब्रजबासी आर्ट प्रेस लिमिटेड, ई-46/11, ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेस-2, नयी दिल्ली-110 020 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003 से प्रकाशित। वरिष्ठ संपादक : रेमी कुमारी

jft-l-Mh,y ¼,l½-05/3231/2012-14
Reg. No. D.L.(S)-05/3231/2012-14 at RMS, Delhi
23 tu] 2013 dk idkf'kr • 29-30 tu] 2013 dk Mkd }kjk tkjh

Licenced under U (DN)-55/2012-14
vkj-,u-vkb- 951/57
R.N.I. 951/57

कोड नं. 862 मूल्य : ₹ 335/-

साथ में निःशुल्क पुस्तिका
सार संग्रह

प्रतियोगिता परीक्षाओं में सफलता

एक सम्पूर्ण वार्षिक संदर्भ ग्रंथ के साथ

भारतीय अर्थव्यवस्था का अतिरिक्तांक बहुत उपयोगी है.
—अरविंद कुमार सिंह
उत्तर प्रदेश पी.सी.एस. परीक्षा, 2010 में प्रथम स्थान

मैंने सामयिक एवं अर्थव्यवस्था के लिए प्रतियोगिता दर्पण तथा इसके अतिरिक्तांक पढ़े थे. ये पत्रिकाएं समसामयिकी की तैयारी में योगदान देती हैं.
—विवेक कुमार मिश्र
उत्तर प्रदेश प्रशासनिक सेवा, 2010 में द्वितीय स्थान

English Edition Code 800 • ₹ 340/-

मैंने भारतीय अर्थव्यवस्था का अतिरिक्तांक पढ़ा और उपयोगी पाया. —वंदना
सिविल सेवा परीक्षा, 2012 में आठवाँ स्थान

विशेष रूप से अर्थव्यवस्था का अतिरिक्तांक अत्यन्त उपयोगी है. —डॉ. मनीष कुमार बंसल
सिविल सेवा परीक्षा, 2012 में 40वाँ स्थान

अर्थव्यवस्था वाला अतिरिक्तांक सर्वाधिक उपयोगी है. समसामियिकी के लिए मैं काफी हद तक प्रतियोगिता दर्पण वार्षिकी पर आश्रित होता था. —सोमेश मिश्र
सिविल सेवा परीक्षा, 2012 में 53वाँ स्थान

प्रतियोगिता दर्पण के अर्थव्यवस्था अंक ने, भारतीय अर्थव्यवस्था की तैयारी करने में मेरी बहुत सहायता की. मुझे विशेषकर बैंकिंग सेक्टर, पंचवर्षीय योजना तथा सामयिक योजनाओं सम्बन्धी अंश पसंद आए. —प्रिंस धवन
सिविल सेवा परीक्षा, 2011 में तीसरा स्थान

Code No. 790 ₹ 325.00

कोड नं. 791 मूल्य : ₹ 299.00

मैंने अर्थव्यवस्था के अतिरिक्तांक का उपयोग समय के सदुपयोग के लिए किया.
—प्रियंका निरंजन
सिविल सेवा परीक्षा, 2012 में हिन्दी माध्यम से सर्वोच्च स्थान

मुख्य आकर्षण

* भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं * महत्वपूर्ण आर्थिक शब्दावली * भारत की जनगणना 2011 के महत्वपूर्ण आँकड़े * राष्ट्रीय आय, कृषि, उद्योग, मुद्रा, बैंकिंग, परिवहन, संचार, विदेशी व्यापार एवं विदेशी ऋण आदि के अद्यतन आँकड़े * आर.बी.आई. की नवीन मौद्रिक एवं साख नीति * 2013-14 का केन्द्रीय बजट एवं रेल बजट * आर्थिक समीक्षा 2012-13 * विदेशी व्यापार नीति 2009–14 * भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाएं * भारत में संचालित रोजगारपरक एवं निर्धनता निवारण कार्यक्रम * प्रमुख केन्द्रीय मंत्रालयों के नवीनतम प्रतिवेदनों पर आधारित महत्वपूर्ण अध्ययन सामग्री * सामयिक आर्थिक विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ * महत्वपूर्ण बहुविकल्पीय प्रश्न.

आपके नजदीकी प्रमुख बुक स्टालों पर उपलब्ध

प्रतियोगिता दर्पण
Fax : (0562) 4053330
2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा–282 002 फोन : 4053333, 2530966, 2531101
ब्रांच ऑफिसेस : दिल्ली फोन : (011) 23251844/66, हैदराबाद फोन : (040) 66753330, पटना फोन : (0612) 2673340
E-mail : care@pdgroup.in
To purchase online log on to www.pdgroup.in

YH-84/2013